कुण्डली चक्र

(सामाजिक उपन्यास)

वृन्दावनलाल वर्मा

मयूर-प्रकाशन, झांसी

प्रकाशक—
सत्यदेव वर्मा, बी. ए. एल-एल. बी.
मयूर प्रकाशन, झांसी.

मयूर-प्रकाशन में
द्वितीयावृत्ति—१९५९
मूल्य—२ रुपया २५ नये पैसे

मुद्रक:—
रामसेवक खड्ग
स्वाधीन प्रेस, झांसी ।

परिचय

अजितकुमार और पूना के सम्बन्ध की घटनायें, जो इस उपन्यास में लिखी गई हैं, सच्ची हैं; परन्तु थोड़े से हेर-फेर के साथ लिखी गई हैं। पैलू और वृद्धा से सम्बन्ध रखने वाली 'प्रेत-बाधा' की घटना भी सत्य है; और हाल ही की है। अजितकुमार जिस पात्र का प्रतिबिम्ब है, वह अभी जीवित है। रतन अब नहीं है ललितकुमार सदृश चरित्र समाज में मिल सकते हैं, है वह कल्पित व्यक्ति। यही बात शिवलाल के लिये भी कही जा सकती है। भुजबल अभी संसार में है—कुछ सुधरे हुए रूप में, परन्तु यह नहीं मालूम कि उसने दूसरा विवाह किया या नहीं। भुजबल से सम्बन्ध रखने वाली एक-आध घटना सत्य है, अधिकांश कल्पित हैं।

वृन्दावनलाल वर्मा

-

कुण्डली चक्र

[१]

ललितसेन की आयु तीस वर्ष के लगभग हो गई थी, परन्तु उसने अपना विवाह न किया था। माता-पिता छुटपन में ही साथ छोड़ गये थे। एक बहिन थी, विवाह उसका भी न हुआ था, यद्यपि पन्द्रह-सोलह वर्ष की हो चुकी थी। स्वयं अध्ययन की धुन में लगा रहता था, और बहिन को भी खूब पढ़ाने में अनुरक्त था। विवाह को वह बहुत जरूरी काम नहीं मानता था।

इतिहास और दर्शन-शास्त्रों से उसको प्रेम था। परन्तु योरपीय और भारतीय दर्शन-शास्त्रों के अनियत अध्ययन ने उसके मन के एक खिचड़ी सिद्धान्त की सृष्टि कर दी थी। उसकी धारणा हो गई थी कि निर्बल-दुर्बल व्यक्ति जीवित रहने की पात्रता नहीं रखता; उसका नाश को प्राप्त हो जाना आवश्यक और उचित है। आर्य-दर्शन-शास्त्र पर उसकी बहुत श्रद्धा नहीं थी, किन्तु वह जाति पांति के सिद्धांत को मानता था।

परन्तु उसके सिद्धांत संसार की मुठभेड़ के संपर्क में न आये थे। लोगों में उठता बैठता बहुत कम था। संसार के कटु अनुभवों का उसको सामना बहुत ही कम करना पड़ा था। स्वाभिमानी था, और बोल का जरा कड़ुआ, इसलिये लोग उसमें कभी-कभी उद्धतपने की जरा दीर्घ मात्रा का आभास अनुभव किया करते थे।

उसका निवास नयागांव छावनी में था, जो झांसी से पूर्व-दक्षिण की ओर करीब साठ मील है। बस्ती में व्यवसाय था, प्रमोद था, और थी ललितसेन के सिद्धांतों के प्रति जनता में उपेक्षा। वह भी इन 'अपढ़-कुपढ़ या अर्द्धदग्ध' लोगों के मन में शंकाओं को उत्पन्न करके समाधान करते फिरने का आकांक्षी न था।

परन्तु उसकी बहन, जिसका नाम रत्नकुमारी था, और जिसे वह प्यार से रतन कहकर पुकारता था, उसकी विनीत श्रोता थी।

वह अपने भाई को बृहस्पति से बढ़कर प्रकांड पण्डित और उसकी दृढ़ता को अश्वमेध करने वालों से बढ़कर पराक्रम-पूर्ण समझती थी शास्त्रों के वचन—चाहे भारतीय हों, चाहे योरपीय—उसके लिये बहुत प्रभाव न रखते थे; परन्तु भाई का आदेश उसके लिये सब कुछ था।

उसने ललितसेन से प्यार पाया था, विद्या पाई थी, और अब आदर पाने का समय आ रहा था।

दर्शन-शास्त्र की उलझनों को विलक्षण खण्डन-मण्डन से प्रतिपादित करना हिन्दुओं के लिये नई बात नहीं है। चाहे जिस तरह का सिद्धांत मानने वाला हो, परन्तु जाति-पांति के भीतर बना रहे, फिर उसके सिद्धांतवाद से किसी को कुछ झगड़ा नहीं। नयागांव छावनी के जो लोग ललितसेन से परिचित थे, और उसके सिद्धांतों का ऊँच-नीच नहीं समझते थे, उसकी गिनती बकवादियों में करते थे। इससे अधिक और कोई कृपण भाव उसके प्रति उन लोगों के जी में न था।

मकानों, दूकानों और बंगलों के किराये की आय से घर-गृहस्थी का खर्च मजे में चलता था, इसलिये दर्शन-शास्त्र के मनन करने और अपने मनन के गूढ़ फलों को परिचितों के सामने रखने के लिये यथेष्ट अवकाश था। यदि उसके अनिच्छा-पूर्ण श्रोताओं के पास उतना समय न था, तो उसमें ललितसेन का कोई दोष न था। निर्बलों या असहायों को दान देना वह प्रकृति के नियम के विरुद्ध समझता था, और उसकी परिभाषा दान की थी—निर्बलों का विनाश, जिसमें सहस्रों वर्ष

की दान-परिपाटी-सदृश भ्रमपूर्ण वात के लिये रत्ती-भर स्थान न था। यद्यपि निर्बलों के विनाश-कार्य को उसने हाथ में कभी न लिया था, तो भी लोग उसको वेखटके कंजूस कहते थे। वैसे चरित-सम्बन्धी और वातों में लोग कभी उस पर उँगली नहीं उठाते थे। और, शायद इसी 'कंजूसी' के कारण उसकी शास्त्र-चर्चा का प्रभाव किसी पर न पड़ता था।

[२]

एक दिन ललितसेन अपनी बैठक में बैठा था। किवाड़ खुले थे। वहाँ से पश्चिमोत्तर दिशा में आलीपुरा-रियासत की पहाड़ियों को देख-देखकर सोच रहा था कि आग के ठण्डे होने पर गरम धुआँ हुआ, गरम धुएँ की भाप, भाप का पानी, पानी से मिट्टी, मिट्टी से पहाड़ और कृमि-कीट तथा उनसे मनुष्य वने, परन्तु आग में जीव के परमाणु भी मौजूद रहे होंगे या नहीं, आग कहाँ से वनी होगी, और क्यों वनी होगी, इस प्रश्न का ठीक-ठीक उत्तर नहीं मिलता था। उसने थोड़ी देर सिर खपाने के वाद निश्चित किया कि परमाणु को अग्नि नष्ट नहीं कर सकती। परमाणु अग्नि-रूपी रहे होंगे। इस खोज पर वह प्रसन्न हुआ, परन्तु पास में सुनने वाला कोई न था। इसलिये वहिन को वुलाया।

रतन आई। पढ़ी-लिखी थी। भाई विलायती शास्त्रों का पारङ्गत था, इस पर भी रतन ने अपना वुन्देलखण्डी पहनावा न छोड़ा था। रंग उसका नाम के अनुरूप था। कुछ लम्वी थी, परन्तु सुडौल। आँखें वड़ी वड़ी, चेहरा गोल, नाक सीधी और कुछ छोटी।

रतन को ललित ने विठलाकर अपनी गवेषणा सुनाई। कभी वह आश्चर्य प्रकट करती थी, कभी हर्ष, परन्तु स्वीकार सव तर्क को कर लिया। किन्तु ललित के स्वयं उठाये हुये प्रश्न को कि पृथ्वी आरम्भ में अग्नि-पिण्ड क्यों थी, रतन न समझ सकी; और न ललित उसको समझा सका।

इतने में सादे, किन्तु स्वच्छ कपड़े पहने एक युवक बैठक में आया। कोई भी हिन्दोस्तानी किसी हिन्दोस्तानी के घर की पहली बैठक में प्रवेश करना अपना हक समझता है, इसलिये वहां बेरोक-टोक चला आया, रतन उसको देखकर भीतर चली गई। ललित को इस मनुष्य के आने पर खीझ नहीं हुई। थोड़ी देर के लिये मनन और अन्वेषण करने वाली इंद्रिय को विश्राम मिला। युवक की आयु बीस वर्ष के लगभग होगी, रंग सांवला था, नाक सीधी जरा लंबी। माथा ऊँचा और आंखें साधारण। क़द न लम्बा न नाटा। शरीर हृष्ठ-पुष्ट जैसे किसी उद्यान में व्यायाम करके आया हो। देखते ही ऐसा भान होता था कि युवक रूपवान या सुन्दर आकृति का है, परन्तु बारीकी से देखने पर भास होता था कि स्थिर निष्कपट नेत्रों में विश्वास और लगन का लावण्य है, और पतले होठ तथा भरा हुआ मुंह कभी-कभी हास के कोलाहल क्षेत्र बन जाते होंगे।

परस्पर अभिवादन के बाद ललित ने पूछा—'आप कहां से आये? कैसे आना हुआ?'

युवक ने उत्तर दिया—'मैं ललितपुर का रहने वाला हूं। इसी साल बी० ए० पास किया है। सुना था कि यहाँ के स्कूल में मास्टरी की जगह खाली है। प्रार्थना-पत्र भेजा था, उसका कुछ उत्तर न मिला। और कहीं नौकरी न मिलती देख उत्तर की अधिक प्रतीक्षा किये बिना ही यहाँ चला आया। आने पर मालूम हुआ कि स्थान भर गया। मैंने सोचा है, घरू पढ़ाई का काम करके निर्वाह करूंगा। एक छोटा-सा काम मिल भी गया है। आपके पास सहायता के लिये आया हूं।'

'सहायता? किस तरह की?' ललितसेन ने जरा रुखाई के साथ कहा।

'आपके यहाँ कोई ट्यूशन है?'

'है भी और नहीं भी है।'

'मैं दो घण्टे समय दे सकता हूं।'

'क्या लेंगे ?'

'बीस रुपये।'

'आप कुछ गायन-वादन जानते हैं ?'

'थोड़ा-सा।'

'सिखला सकते हैं ?'

'जी हां। उसी दो घण्टे के समय में।'

'अच्छी बात है। मेरी बहिन रतनकुमारी है। हम लोग उसको रतन कहकर बुलाया करते हैं। हिन्दी पढ़ी है। थोड़ी अंगरेजी भी जानती है। यहां के स्कूल में लड़कियों के पढ़ाने का प्रवन्ध न देखकर घर पर ही पढ़ाया है। आप उसको अंगरेजी पढ़ायें, और गायन-वादन सिखलायें। आपका धार्मिक विश्वास क्या है ?'

'ईश्वर में विश्वास है। इससे अधिक और क्या कह सकता हूं ?'

'आप विकास सिद्धान्त को मानते हैं ?'

'जी हां।'

'विकास-सिद्धान्त में ईश्वर की तो कोई गुन्जाइश नहीं।'

'मेरे विकास-सिद्धान्त में है।'

'आप किसी ईश्वरीय पुस्तक में विश्वास करते हैं ?'

'जी हां, वेदादि ग्रन्थों में।'

'तब मेरे यहां ट्यूशन का काम आपको कठिन जान पड़ेगा। हम लोग यह सब पचड़ा नहीं मानते। ये पुरानी कितावें हर एक धर्म में पाई जाती हैं, और सब उनको ईश्वर-कृत मानते हैं। मैं भी समझता हूँ कि किसी युग के लिये ये पुस्तकें उपयुक्त रही होंगी, परन्तु अब उनके लिये स्थान अजायब-घर में होना चाहिये। मेरी बहिन भी इसी सिद्धान्त को मानती है।'

'मुझे किसी के धार्मिक विश्वास से कोई प्रयोजन नहीं। मैं तो साहित्य, इतिहास इत्यादि पढ़ा दिया करूंगा, और जो कुछ थोड़ा-सा गायन-वादन जानता हूं, वह बतला दिया करूंगा।'

'परन्तु जिस दिन आप अपने धार्मिक विश्वासों का झमेला रतन के सामने धरकर बैठेंगे, उस दिन मुझे आपको यहां पर और अधिक दिन रखने में कुछ कठिनाई मालूम होगी। यदि आपको बहस का शौक हो, तो यह मर्ज मुझे भी बहुत है। या तो मैं आपको अपने सिद्धांत के अनुकूल बना लूंगा या मैं आपका कायल हो जाऊंगा।'

'मुझे समय और स्थान बतला दिया जाय।'

इस पर ललितसेन ने बैठक से पीछे लगे हुये एक हवादार साफ-सुथरे कमरे को बतलाया। समय सवेरे आठ से दस तक नियुक्त हुआ।

ललितसेन ने रतन को बुलाया और कहा—'कल से तुमको यह महाशय अंगरेजी पढ़ायेंगे, और गाना-बजाना भी सिखलायेंगे। आठ बजे से दस बजे तक काम होगा।'

रतन ने सावरण-सी चितवन से अपने भावी अध्यापक की ओर देखकर कहा—'बहुत अच्छा।'

अध्यापक के वहां से चले जाने के पहले ललितसेन ने कहा—'मैंने आपका शुभ नाम नहीं पूछ पाया।'

अध्यापक ने कहा—'मेरा नाम अजितकुमार है।'

'आप कहां ठहरे हैं?'

'बिलहरी में कुम्हरेड़ी नाले के उस पार, किनारे एक सम्बन्धी के मकान में।'

[२]

बिलहरी छावनी से करीब कोस-भर उत्तर की ओर है। अजितकुमार मन-ही-मन प्रसन्न ललितसेन के मकान से घर गया। कुम्हरेड़ी का पुल पार करके घर पहुंचा, परन्तु उसको मार्ग न खला। बीस रुपये की एक ट्यूशन रात के समय की थी, और बीस रुपये की सवेरे हो गई। दोपहर का समय अध्ययन और विश्राम के लिये तथा संध्या का समय घूमने-टहलने के लिये। घर पर कोई था नहीं, जिसकी चिन्ता हो।

दूसरों की कृपालुता से बी० ए० पास कर लिया था, आवश्यकतायें थोड़ी थीं, विवाह हुआ नहीं था, और न मन में लोभ था। यदि इस बीच में स्कूल में कोई जगह खाली हो गई, तो आशा थी कि एक ही ट्यूशन रखकर अध्यापन-कार्य करता रहूँगा। परन्तु उसको हर्ष था, नये विद्यार्थी की सुपात्रता पर। संगीत का प्रेमी था, इसलिये शिक्षण के प्रातःकालीन कार्य-क्रम में उसका भी स्थान देखकर उसको बहुत सन्तोष था।

दिवाली हुये अभी कुछ ही दिन हुये थे। ठंड नहीं पड़ती थी, परन्तु गरमी भी बिलकुल न थी। प्रातःकाल की रश्मियां मृदुल और सुहावनी थीं, और श्यामा तथा हरियल के निरन्तर नाद बहुत श्रुति-मधुर। अजित कुमार दूसरे दिन सवेरे ही तैयार होकर छावनी के लिये निकल पड़ा, और धीरे-धीरे टहलता हुआ ठीक समय पर ललितसेन के घर जा पहुंचा। ललितसेन मिला, परन्तु रतन कमरे में अभी न आई थी। आज ललितसेन के स्वर में मिठास अधिक थी। बोला—'रतन को घर का कोई काम-काज नहीं करना पड़ता है, परन्तु कुछ आलसिन है। वह आती ही होगी। मैं भी थोड़ी देर में आता हूँ।' ललित वहां से चला गया।

अजितकुमार कमरे की चीजों को आंखों से टटोलने लगा। सादगी और स्वच्छता थी। बनावट या तड़क-भड़क की बहुलता न थी। कोने में एक हारमोनियम रक्खा हुआ था, अजित ने सोचा—मैं तो हारमोनियम बजाना जानता ही नहीं हूँ। शायद यह ट्यूशन जितनी शीघ्रता के साथ मिली, उतनी ही शीघ्रता के साथ हाथ से निकल भी जायगी।

उसको थोड़ी ही देर बैठना पड़ा होगा कि रतन कुछ पुस्तकें लिये हुये आ गई। सीधी-भोली लड़की मालूम पड़ती थी। आंखों में जरा संकोच था।

अजितकुमार ने स्त्रियों की संगति कभी न की थी, इसलिये जरा अचकचाया। एक बार उसकी ओर देखा, फिर इधर-उधर ताकने लगा! जैसे भाग खड़े होने की प्रेरणा मन में उदय हुई हो।

रतन ने कोमल कंठ से बारीक स्वर में कहा—'मैंने थोड़ी-सी अंगरेजी भैया से पढ़ी है। आप किस पुस्तक से आरम्भ करेंगे?'

अजित का संकोच कुछ कम हुआ। बोला—'मैं आपकी पुस्तकों को देखकर अभी बतलाता हूँ।' पुस्तकें उलट पुलटकर उसने उनमें से एक को आरम्भ के लिये चुन लिया। फिर पूर्वपठन के विषय में थोड़ी देर बात हुई। इतने में ललितसेन आ गया। उसका चेहरा खिला हुआ था, और बर्ताव में रुखाई न थी। बोला—'आपने विद्यार्थी के पूर्व-पाठ को समझ लिया होगा। अभी बहुत कम अंगरेजी जानती है। परन्तु कुशाग्र है, शीघ्र पाठ्य-विषय पर अधिकार कर लेगी।'

'मेरी भी ऐसी ही कल्पना है।' अजित ने कहा।

ललित ने पूछा—'इसका गाना अभी आपने नहीं सुना?'

अजित ने उत्तर दिया—'नहीं तो।' और संकोच से जरा सिकुड़ गया।

ललित ने रतन को उत्साहित करते हुये कहा—'हारमोनियम उठाकर अपनी एक चीज मास्टर साहब को सुनाओ रतन।'

रतन की आंखों की सरलता जाती रही, उसने संकोच के मारे गर्दन फेर ली, और फिर हँसने लगी। बोली—'मुझे तो कुछ नहीं आता?'

ललित मानने वाला न था। बोला—'तब क्या खाक सीखोगी? अध्यापक से लाज करना विद्या से परङ्मुख होना है।'

मालूम नहीं, इस आदेश से उसका संकोच कम हुआ या नहीं, परन्तु उठकर हारमोनियम ले आई, और पहले तो उस पर उँगलियां फेरती रही, फिर भाई के अनुरोध पर उसने भैरवी की एक हिन्दी-गजल सुनाई। थोड़ा-सा गाकर बाजा रख दिया, और बोली—'मास्टर साहब, आप बजाकर गाइये।'

'मैं हारमोनियम बजाना नहीं जानता।' अजितकुमार ने अपने को मन में कोसकर कहा—'आप स्वर दें तो गा सकता हूँ।'

ललितसेन ने आश्चर्य के साथ कहा—'आप हारमोनियम बजाना नहीं जानते, तब आप सिखलायेंगे क्या ?'

'गाना जानता हूँ। गाने वाला बाजा सहज ही सिखला सकता है।' अजित ने कलेजे को कड़ा करके उत्तर दिया।

ललितसेन बोला—'मेरी ऐसी राय नहीं है।'

'हारमोनियम' मेरा प्राणान्त करके रहेगा। अब यह कहते ही हैं कि ट्यूशन न बनेगी, अजित ने सोचा।

ललितसेन ने कहा—'रतन थोड़ा-बहुत बाजा बजा सकती है, जैसा कि आपने स्वयं देख लिया होगा। गाना जानने वाला बाजा न बजाकर भी शिष्य को सिखला सकता है। यह करामात अभी मुझे देखने को बाकी है। शायद ऐसा हो सकता हो, क्योंकि एक सितारिये को हारमोनियम सिखलाते हुये सुना है। परन्तु ट्यूशन की एक शर्त में संशोधन करना पड़ेगा।'

अजित ने सोचा कि वज्र टूटा, परन्तु आशा का तार बिलकुल खंडित न हुआ था। ललित की ओर प्रश्न-सूचक दृष्टि से देखने लगा।

ललितसेन ने कहा—'आपको फीस पन्द्रह रुपये मिलेंगे।'

अजित ने समझा कि उद्धार हुआ। बोला—'मुझे स्वीकृत है।' रतन दूसरी ओर देखने लगी।

ललितसेन ने कहा—'तब आप आज से अपना काम आरम्भ करिये। मैं यहाँ थोड़ी देर बैठकर आपका पाठ-क्रम देखूँगा।' फिर हँसकर बोला—'और अन्त में आपका गाना भी सुनूँगा।'

अजित ने पाठन आरम्भ कर दिया, अन्त में उसने जयदेव की एक अष्ट-पदी सुनाई। ललित ने धैर्य के साथ सुना। समाप्त होने पर कहा—'यह क्लिष्ट गायन रतन को न सिखाया जाय, और न आपको यहां इस तरह के गायन करने की कोई गरज है। आप तो सहज-सरल गान सिखलाया कीजिये।'

[४]

जैसे दिन निकलते देर नहीं लगती, उसी तरह रतन को अंग्रेजी पढ़ने और गाना सीखने में विलम्ब न हुआ। ललितसेन के मकान से बिलहरी में कुम्हरेड़ी के किनारे वाला अजितकुमार का मकान दूर पड़ता था। ट्यूशन के लिये छावनी आने-जाने में जो समय लग जाता था, वह अजित को खटकने लगा। मासिक वृत्ति की कमी पर उसका ध्यान न जाता था, परन्तु मार्ग के समय और श्रम का ख्याल करके वह छावनी में एक किराये के मकान में आ गया। अब शिक्षण का काम सिवा एक विमल आनन्द के और कुछ न रहा।

दो घण्टे के समय का कभी-कभी व्यतिक्रम होने लगा। कभी ढाई घण्टे, कभी तीन और कभी कभी साढ़े तीन। परन्तु उत्तरोत्तर हारमोनियम और गायन पर गुरु और शिष्य, दोनों की रुचि बढ़ती गई। ललितसेन का पाठ के समय बैठे रहना धीरे-धीरे कम हो गया, और किसी-किसी दिन तो बिलकुल ही नहीं आता था।

एक दिन ललित अपनी बैठक में बैठा हुआ एक उलझन में पड़ा हुआ था। उलझन दार्शनिक कम थी, सांसारिक अधिक। एक किरायेदार ने कई महीने से किराया नहीं दिया था। रकम ज्यादा थी। उसका तबादला होने वाला था। रुपया किस तरह जल्दी वसूल हो, यही उसके मनन का जटिल विषय था। भीतर के कमरे में कण्ठ और हारमोनियम गूँज रहे थे। इस समय उसको दोनों बुरे लगे। भीतर जाकर कहा—'बाजा बन्द करो, बहुत बज गया। अब कोई पुस्तक पढ़ो। थोड़ी देर में फिर बजा लेना।'

रतन ने कुछ तिनक कर कहा—'मैं आसावरी की एक मनोहर ठुमरी सीख रही थी। तुमने तो बड़ा गड़बड़ किया भैया।'

ललित का असन्तोष रतन के सरल उलहने से कम हो गया। बोला—'अच्छा, थोड़ी देर में फिर उसको शुरू करना। अभी बाबू अजितकुमार अंग्रेजी पढ़ायेंगे।'

रतन हठ-पूर्वक बोली—'वहुत तो पढ़ ली। अभी हाल हारमोनियम ही रहने दो।'

अजितकुमार ने ललित की अरुचि देखकर रतन से कहा—'आज के लिये इतना ही बस है। अंग्रेजी पढ़ लो, कल फिर देखा जायगा।'

रतन ने मान लिया, और कुछ उदास होकर हारमोनियम वन्द कर दिया। पुस्तक हाथ में ले ली।

ललित ने कहा—'थोड़ी देर किताब पढ़ने के वाद फिर हारमोनियम सीखना। मास्टर साहव, वह ठुमरी पूरी सिखलाकर जाइयेगा।'

अजितकुमार ने कोई एतराज नहीं किया। भविष्य की आशा ने रतन के खेद को हटा दिया, और वह आग्रह के साथ ग्रन्थ-पाठ में लग गई। ललितसेन बैठक में आ गया। बैठा ही था कि दो भले मानस आये, एक की अवस्था उतरने को थी, दूसरे की चढ़ने को। पहले व्यक्ति के चेहरे पर चिंताओं की रेखायें थीं, और व्याधियों का इतिहास अंकित था। सोती हुई सी आंखों की तली में सहसा प्रवर्तन छिपा मालूम पड़ता था। दूसरे व्यक्ति की २३-२४ वर्ष की आयु होगी। सतेज नेत्र, दृढ़ ओष्ठ-संपुट और सुडौल आकृति। परन्तु कभी कभी आंखें नीची होकर वायें-दायें देखने लगती थीं।

ललित ने इन लोगों से आने का कारण पूछा।

अधेड़ व्यक्ति ने कुछ कहने के लिये होठ पर पहले जीभ डाली, और सम्भला था कि युवक बोला—'इनका नाम बावू शिवलाल है। मऊरानीपुर में रहते हैं। कई मौजों में आपकी जमीदारी है। कुछ बरसों से फौजदारी और दीवानी मुकद्दमे लड़ते-लड़ते ऋण हो गया है। साहूकार चाहते हैं कि या तो वह अपनी जमीदारी में से कुछ भाग उनको वेच दें, या रुपया इकट्ठा इसी समय दे दें। कुल रुपया इसी समय देने का सवाल नहीं है। दो वरस से मैं आपकी जमीदारी का मुन्तजिम हूँ। वहुत सम्भाला, परन्तु रुपया इकट्ठा नहीं हो पाता है। आप सजातीय हैं, इसलिये हम लोग आप के पास दौड़े आये हैं।'

'कितने रुपये की जरूरत है?' ललितसेन ने पूछा।

'दस हजार से काम चल जायेगा।' चतुर मैनेजर ने विश्वासपूर्वक उत्तर दिया।

ललितसेन कुछ सोचने लगा।

मैनेजर जानता था कि अधिक सोच-विचार ऐसे समय काम-काज का शत्रु होता है। बोला—'ब्याज आप जो कुछ उचित समझें, ले लें। क्योंकि हमारा रुपया आपके घर में जायेगा, तो हम समझेंगे कि हमारे घर में ही रहा।'

ललित ने कहा—'आप साहबान का परिचय मुझको अभी तक नहीं मिला।'

मैनेजर बोला—'मैंने कहा न कि आपका नाम बाबू धिवलाल है। बड़े जमींदार हैं। मेरा नाम भुजबल है। पता लगने पर हम लोगों से आपकी कुछ दूर की रिश्तेदारी भी निकल आयेगी। मैं मऊ-सहानियां में ब्याहा था। घर के लोगों का देहान्त हो गया है। ससुराल में मेरी सास और एक साली है। शायद उस घर से आपका भी कोई दूर का नाता है।'

परिचय की यह लम्बी सूची ललित को बहुत पसन्द न आई। जमींदारी का पूरा हाल, आय इत्यादि और जमींदार तथा मैनेजर के व्यक्तित्व से परिचित होना चाहता था। बात न बढ़ाने की इच्छा से बोला—'मेरे पास इस समय इतना रुपया नहीं है।'

तब धिवलाल ने कहा—'हमारे बाबू साहब ने जो कुछ कहा है, वह सही है। आपको हम दो रुपया सैकड़ा मासिक ब्याज देने को तैयार हैं।'

'परन्तु मेरे पास दो पैसा रुपया माहवारी पर भी देने के लिये या तैयार नहीं है।' ललितसेन ने कुछ तीक्ष्णता के साथ कहा—'बड़ा अचम्भा है कि इतनी बड़ी जमींदारी होते हुऐ भी सब कहां विलीन हो गया।'

भुजबल थकने वाला व्यक्ति नहीं मालूम होता था। बोला—'आपको गुणियों के आदर की भी प्रवृत्ति बहुत व्यय में डाल चुकी है। शायद ही कोई गायक-वादक या कवि ऐसा हो, जो आपकी दानशीलता से उपकृत न हुआ हो।'

'ओह! मैं इन पिशाचों को पास नहीं फटकने देता।' ललित ने अभिमान के साथ कहा—'कवि और भिक्षुक दो समानार्थवाची शब्द हैं। संसार एक दिन दोनों को ग्रस जायगा।'

इतने में हारमोनियम पर कण्ठ की ध्वनि, कभी दो की और कभी एक की सुनाई पड़ने लगी। मीठा स्वर सभी को अच्छा लगता है। शिवलाल के कान तो बरसों से इसी में ओत-प्रोत हो रहे थे। बहुत रोक-थाम करने पर भी जीभ पर काबू न रख सका। बोला—'कैसा अच्छा कण्ठ है। बिलकुल स्वर में डूबा हुआ।'

भुजबल को भीतर से आने वाले मधुर गान के साथ ललित की अवहेलना बेमेल मालूम पड़ी। परन्तु उसने कोई मत प्रकट नहीं किया। ललित को शिवलाल की अनाधिकार चर्चा खटकी। परन्तु हाल में ही जो अवहेलना प्रकट कर चुका था, इसलिये कुछ कहने के लिये विवश हुआ। रुखाई के साथ बोला—'मेरी बहिन को सङ्गीत से प्रेम है। उसको एक मास्टर अंग्रेजी और गायन-वादन सिखलाते हैं। वे ही यह सब शोर कर रहे हैं।'

भुजबल ने प्रतिवाद करते हुये कहा—'शोर नहीं है साहब, बड़ी अच्छी विद्या है।'

शिवलाल ने और रंग देकर कहा—'कृष्ण भगवान् ने स्वयं इसको अपनाया था। इसके बिना तो जिन्दगी का लुत्फ नहीं।'

ललित बोला—'होगा। मुझे इन बातों से कुछ मतलब नहीं, और न मुझे इस विषय की आलोचना सुनने का समय है; मेरे पास रुपये नहीं हैं, यह मैं कह चुका हूं। और कोई काम है?' शिवलाल इस

वाक्य का अर्थ समझ गया। सोती हुई आंखें सजग-सी हो गई, परन्तु चुप रहा।

भुजवल ने भी अवगत कर लिया कि समय अधिक वार्तालाप के लिये अनुकूल नहीं है नम्रता-पूर्वक बोला—'और कुछ काम नहीं है। हम लोग फिर कभी उपस्थित होंगे। यदि तब तक हमको रुपया और कहीं से न मिला और आपको सुभीता हो गया, तो उस समय तय कर लेंगे। आपका बहुत वक्त खराब किया, माफ कीजियेगा।' इसके बाद दोनों वहां से चले गये। ललित ने मन में कहा—'एक गंवार है, दूसरा कुछ मार्जित रुचि का मनुष्य है।'

बाहर निकलकर शिवलाल भुजवल से मुक्त-कंठ होकर बोला—'बड़ा घमंडी है। बात-बात में ऐंठ टपकती है। यह बहिन को क्या नाचने-गाने में निपुण बना रहा है, जो मास्टर रखकर गलेबाजी सिखलाता है?'

भुजबल ने तेज निगाह से दोनों कंधों की ओर आंखें घुमाकर और सब दिशाओं को सुरक्षित देखकर कहा—'चुप रहिये, चुप रहिये। इसी को ठीक करके रुपया लेना होगा। और कहीं तो मिलता ही नहीं है।'

'मैं कभी यहां न आऊँगा।' शिवलाल ने दृढ़ता के साथ अपना निश्चय प्रकट किया—'दूसरों को दो कौड़ी का और अपने को करोड़ का आदमी समझता है! तुम्हें आना हो, तो भले ही चले आना।'

भुजवल ने कहा—'मैं आपको यहां न लाऊँगा। अकेले ही जो करना होगा, करूँगा।'

'मधुर कण्ठवाली किस तरह की स्त्री है; कभी देखने को मिल जाय, तो आंखें ठण्डी करूँ।'

इतने में भुजवल की दृष्टि जरा आगे जाने वाले राहगीर के सड़क पर छोड़े गये एक रुपये पर पड़ी। रुपया गिरने की आवाज भुजवल ने सुन ली थी, परन्तु वह राहगीर अपने किसी ध्यान में ऐसा मग्न था कि अपनी कमर में से खिसककर गिरने वाले रुपये की खनखनाहट न सुन

सका। रुपये को गिरा देखकर भुजबल ने अपनी चाल जरा धीमी कर दी, राहगीर बढ़ा चला गया!

जहां रुपया पड़ा था, भुजबल उस स्थान पर जाकर ठिठक गया। चारों ओर ताककर उसने वह रुपया उठा लिया।

शिवलाल यह विचित्र व्यापार देखकर बोला—'क्या कर रहे हो? कुछ समझ में नहीं आता।'

भुजबल ने बिना किसी संकोच के उत्तर दिया—'अपना रुपया उठाने के लिये खड़ा हो रहा था।' और जेब में उस रुपये को मजे में डाल लिया।

'तुम्हारा रुपया!' शिवलाल ने आश्चर्य के साथ कहा—'वह तो उस राहगीर का था, बुलाकर दे दो।'

'वह तो दूर निकल गया।' भुजबल बोला—'सरकारी सड़क पर पड़ी हुई संपत्ति पर किसी का इजारा नहीं होता। जिसको मिल जाय, उसी की होती है।'

'क्या ऐसा कानून है?' शिवलाल ने पूछा।

'जी हाँ, ऐसी ही है।' भुजबल ने उत्तर दिया।

शिवलाल बोला—'जब तुम कहते हो, तो ऐसा ही होगा, क्योंकि अंग्रेजी कानून में बड़ी-बड़ी अजीब बातें भरी पड़ी हैं!'

भुजबल वहाँ से शीघ्र चला गया। उसको विश्वास न था कि सड़क पर और आने-जाने वाले लोग उसके साथ कानून की इस व्याख्या पर सहमत होंगे।

[५]

भुजबल उन लोगों में से न था, जो घास को थोड़ी देर भी अपने पैरों तले उगने देते हों। उसने ललितसेन की बैठक से मास्टर के हारमोनियम और किसी बारीक गले वाली के स्वर को सुना था। मास्टर

बाहर का है, और स्त्री भीतर की। अवश्य ही मास्टर कोई ऐसा व्यक्ति है, जिस पर ललित का विश्वास है। जब विश्वास है, तब उसकी चलती भी खूब होगी। तब उसकी खोज करनी चाहिये। खूब सोचने विचारने के बाद भुजबल इस नतीजे पर पहुंचा।

नयागांव छावनी कोई बड़ा नगर नहीं है। चौड़े-चौड़े खुले हुये मार्ग लगभग सम्पूर्ण बस्ती में हैं। गलियां बहुत ही कम हैं, और रहने वालों का पता आसानी से लगाया जा सकता है।

भुजबल ने मास्टर अजितकुमार का पता लगा लिया, और उसके विषय में पूछ-ताछ भी कर ली।

जब उसके पास भुजबल पहुंचा, वह कुछ पढ़ रहा था। आवभगत के बाद भुजबल ने अन्दाजा लगाना शुरू किया कि किस तरह आदमी से काम निकालना है।

बोला—'आप क्या बहुत दिनों से यहां हैं?'

'नहीं तो, दो या ढाई महीने हुये हैं। आपने कैसे कष्ट किया?'

'दर्शनों की लालसा से चला आया हूं। हमारी जाति में बहुत कम ग्रेजुएट हैं। जब मैंने आपकी विद्वत्ता की तारीफ सुनी, मिलने की प्रबल इच्छा हो उठी!'

'आपका निवास स्थान कहां है?'

'मैं मऊरानीपुर के पास के एक गांव लहचूरा का रहने वाला हूं। शायद हमारी आपकी कोई रिश्तेदारी भी होगी। वहां मऊ-सहानियां में मेरी ससुराल है। आपका ब्याह हो गया है?'

सजातियों को इस तरह के वार्तालाप का हक-सा होता है, इसलिये अजितकुमार को अन्तिम प्रश्न पर आश्चर्य नहीं हुआ। भुजबल की सुन्दर आकृति आकर्षक थी, और वाणी मिठास भरी। केवल उसकी आंख की कोर की परिवर्तनशीलता उसके जी में भली नहीं लगी। परन्तु मन में कोई विरुद्ध भाव खड़ा नहीं हुआ।

अजितकुमार ने उत्तर दिया—'हर्ष की बात है कि सज्जन से भेंट हो गई। आपका आना यहां कैसे हुआ ?'

भुजबल ने सोचा—'अभी सङ्कटापन्न भूमि पर पैर नहीं रखना चाहिये।' बोला—'मऊ-सहानिया में ससुराल है। वहीं के लिये आया था। एक भद्र पुरुष, जो मऊरानीपुर की तरफ के बहुत बड़े जमीदार हैं, और अपनी जाति ही के हैं, यहां आये हुये हैं, उनका कुछ काम था। उनके कारण मैं भी रुक गया। अभी यहीं बना हूं। जब तक रहूँगा आप से मिलने का सौभाग्य मिलता रहेगा।'

'आपसे मिलकर बड़ा हर्ष हुआ। आपको साहित्य से कुछ प्रेम है ?'

'जी हां, साहित्य और सङ्गीत, दोनों से मैंने एन्ट्रेंस तक अङ्गरेजी की शिक्षा पाई है, और हिन्दी मातृभाषा ही ठहरी, सो उसके बहुत से ग्रन्थ नजर से गुजरे हैं।'

'हिन्दी में आपने किस विषय का अनुशीलन अधिक किया है ?'

'काव्य का अधिक किया है। जिसे खड़ी बोली कहते हैं, उसकी कविता मुझे पसन्द नहीं है। क्या करूँ, रुचि के ऊपर वश नहीं चलता। उसमें ब्रजभाषा की ललक या चटक नाममात्र को नहीं है।'

'मुझे भी खड़ी बोली की कविता से बहुत प्रेम नहीं है। शायद उसका कारण यह है कि मैंने सिवा कुछ पत्र-पत्रिकाओं के उस बोली के ग्रन्थ नहीं पढ़े।'

'अभी साहब, उसे किसी से सुनिये, तो ऐसा मालूम पड़ता है, मानो कङ्कड़ बरसा रहा हो।'

'ब्रजभाषा की कविता में आपको कौन कवि सबसे अधिक हृदयग्राही जान पड़ता है ?'

'कवि तो ब्रजभाषा के मेरे लिये सभी आराध्य हैं। सभी को थोड़ा बहुत खूब पढ़ा है। परन्तु विषय नायिका भेद ब्रजभाषा में खूब कहा गया है। गजब कर दिया है।'

अजित जरा सोचने लगा।

... न कहा—'विहारी और पद्माकर का लालित्य मुझे बहुत चुभता है।'

'मुझे तुलसी और सूर बहुत मनमोहक जान पड़ते हैं।'

'वे तो महात्मा हैं।' भुजवल ने बड़ी गम्भीरता के साथ कहा—'कवियों की श्रेणी में नहीं हैं, ऋषि हैं।'

आत्मसन्तोष की हँसी हँसकर अजित बोला—'सो तो आप ठीक ही कहते हैं।'

विषय को रङ्ग देने की गरज से भुजवल ने कहा—'वेचारी खड़ी बोली में यह सब कहां से आ सकता है ? व्रजभाषा की कविता में एक-एक छन्द के सौ-सौ अर्थ लगा लीजिये। यह पांडित्य खड़ी बोली में कहां से भरा जायेगा ? ऐसा सम्भव होता, तो महात्मा तुलसीदास जी खड़ी बोली में ही रामायण की रचना न करते ?'

'आपने कोई धर्म ग्रन्थ पढ़े हैं ?' अजित ने पूछा।

'जी हां !' भुजवल ने तुरन्त उत्तर दिया—'धर्म तो अपना प्राण ही है। विना धर्म-ग्रन्थ पढ़े तो जीवन का निर्वाह ही नहीं हो सकता। इस असार संसार में भवसागर से पार उतारने वाले तो धर्म ग्रन्थ ही हैं। मैंने रामायण, महाभारत, श्रीमद्भागवत इत्यादि ग्रन्थ पढ़े हैं। इन सव का सार है—परोपकार करो, पराये के लिये अपना प्राण तक छोड़ दो।'

अजित ने कहा—'आप विलकुल ठीक कहते हैं। हिन्दू धर्म का सम्वाद संसार के लिये यही है—किसी को सताओ मत, त्याग का तप करो, और किसी के विश्वास का निरादर मत करो।'

इस विषय में भुजवल का मन लग रहा था, परन्तु तो भी उसे एक जमुहाई आने को हुई। उसे उसने तुरन्त रोक लिया।

वोला—'धर्म का विषय वहुत गहरा है। हमारे यहां के ऋषियों ने जो रत्न खोज निकाले हैं, उनकी आभा अभी तक ज्यों की त्यों बनी हुई है।'

अजित ने कहा—'इस ऋषि-मान्य देश में विचारक कर्मकर्ता भी हुये हैं। वे लोग जीवन में अपने सिद्धान्तों का कार्य-रूप में प्रतिपादन करते थे और बड़े बड़े राजाओं की राजनीति पर उनके आचार-व्यवहार का उनके सिद्धान्तों से बढ़कर अंकुश रहता था।'

अबकी बार भुजबल को जोर की जमुहाई आने को हुई। बड़ी कठिनाई से उसे दबा पाया। आलस्य का कारण शायद अच्छी तरह न समझकर भुजबल ने प्रसंग बदला। कहा, 'आपको तो संगीत-शास्त्र पर भी बड़ा काबू है। एकाध चीज होने दीजिये। यदि मेरी ढिठाई माफ की जाय, तो।'

वैसे शायद यह विचित्र-सी प्रार्थना अजितकुमार को खटकती, परन्तु बड़े विनीत और आकर्षक ढङ्ग से की गई थी, इसलिये इनकार करना असम्भव मालूम हुआ। बहुत दिनों बाद एक सजातीय नौजवान के साथ बातचीत करने का अवसर प्राप्त हुआ था। घड़ी भर के लिये नयेगांव का एकान्त जीवन—अध्यापन कार्य के समय को छोड़कर—भिन्नता के रसास्वादन से उत्तेजित हो गया।

'आप भी तो गाते होंगे?' अजित ने पूछा।

'जी हाँ, यों ही कुछ टिर-पिर।' भुजबल ने उत्तर दिया।

इस पर अजित हँसा। एक कोने में तम्बूरा रक्खा था। उठाकर मिलाने लगा। भुजबल ने भयभीत-जैसा भाव बनाकर कहा—'तम्बूरा पर पक्का गाना गाने की शक्ति तो मुझ में नहीं है। ठुमरी, गजल-वजल कुछ गा लेता हूं। सो उसे भी आपके सामने कहते डर मालूम होता है।'

'गजल भी तो गाना है, बहुत लोग गाते हैं।' अजित ने हँसकर कहा—'गाइये-गाइये। आपका गला बहुत सुरीला मालूम होता है।'

भुजबल ने गजल खूब मेहनत के साथ गाई। ध्रुवपद और ख्याल की गायकी पसन्द करने वाले को गजल कूड़ा-सी मालूम पड़ती है, परन्तु भुजबल का गला दानेदार था। गजल के विषय से अजित के मन में जो घिन पैदा हुई थी, उसे भुजबल के सुरीले गले ने हटा दिया। भुजबल ने मौका देखकर कहा—'आपने जगत-सागर की सैर की है?'

'जी हाँ, कई मर्तबा।' अजितकुमार ने उत्तर दिया - 'उसकी विशालता किसी सुपुप्त महत्ता का स्मरण दिलाती है। सुना है, मऊ सहानिया के पीछे एक झील और है।'

'आपने उसको अभी तक नहीं देखा ?'

भुजवल ने आश्चर्य के साथ कहा—'घूंघटवाली सुन्दरी की तरह पहाड़ों के बीच में वह विराजमान है। महाराज छत्रसाल की छतरी के पीछे। देखने योग्य है। एक दिन चलिये। जाकर पछताना न पड़ेगा।'

अजीत के जी पर भुजवल के आग्रह की छाप पड़ गई। बोला—'कल ट्यूशन से छुट्टी मिलेगी। यदि आपको अवकाश हो, तो चलिये।'

भुजवल ने उत्साह के साथ कहा—'अवश्य। आपकी साहित्य-चर्चा से मुझे विशेष लाभ होगा। यदि आपको कोई खास एतराज न हो, तो एक हारमोनियम लिये चलूँ। कल दिन-भर के लिये आनंद-मंगल का सामान हो जायगा।'

अजित बोला—'लिये चलिये। हारमोनियम से कोई खास नफरत नहीं है। आपकी सुरीली गजल ठुमरी तो उसी पर सोहेगी, वैसे भी मुझे तो एक जगह संगीत की शिक्षा इसी बाजे पर देनी पड़ती है।'

भुजवल को अटकल लगाने की जरूरत नहीं पड़ी। समझ गया, तो भी उसने पूछा—'किस जगह शिक्षा देनी पड़ती है ?'

आपस के व्यवहार का संकोच कुछ कम हो गया था, इसलिये अजित ने सरलता के साथ कहा—'यहाँ एक सुरुचि संपन्न रईस हैं। नाम बाबू ललितसेन है। अपने सजातीय हैं। उनकी बहिन को अँगरेजी के साथ-साथ संगीत की भी शिक्षा देता हूं।'

भुजवल ने विषय के एक अंश को टालते हुये कहा—'सुना है, बाबू ललितसेन के पास जैसा द्रव्य है, वैसी ही विद्वत्ता भी।'

'हाँ, सरस्वती और लक्ष्मी का ऐसा संयोग मैंने बहुत कम देखा है। उनका अधिकांश समय पुस्तकों के अवलोकन में जाता है। बहुत मननशील और चरित्रवान् हैं, दर्शन-शास्त्र पर उनकी खास रुचि है।'

भुजबल ने माथा सिकोड़कर कहा—'दर्शन-शास्त्र तो बड़ा गहन और दुर्बोध विषय है। व्यवहार कैसे हैं ?'

'बहुत स्वच्छ।' अजित ने स्पष्टता के साथ कहा—'परन्तु उन्हें हिन्दू-दर्शन पर कम श्रद्धा है।'

भुजबल ने आँख का कोना तिरछा करके कहा—'तो क्या जाति-पांति को नहीं मानते ?'

अजित बोला—'जाति-पांति तो मानते हैं, परन्तु शास्त्रीय सम्मति उनकी अनोखी है। वह योरपियन दर्शन के अनुयायी हैं।'

भुजबल ने हिम्मत करके कहा—'योरपियन दर्शन तो बड़ा लचर सुना गया है।'

'जी नहीं।' अजित ने कहा—'बहुत गम्भीर और मनोहर है।'

[६]

सप्ताह में अजितकुमार को अध्यापन-कार्य से एक दिवस का विश्राम मिला करता था। जिस दिन भुजबल के साथ उसकी बातचीत मऊ-सहानिया जाने के लिये पक्की हुई, उस दिन शनिवार था। नये लोगों के साथ नया स्थान देखने के आनन्द ने उसे जरा उद्विग्न कर दिया था। दूसरे दिन की अगवानी के लिये बेचैन तो नहीं हो रहा था, परन्तु मन में गुदगुदी काफी थी। उसका सन्ध्या-काल नित्य वायु-सेवन में बीता करता था, परन्तु इस विचार से कि दूसरे दिन वायु-सेवन के सिवा और कुछ करना ही नहीं है, उसने गांव के बाहर जाने को स्थगित कर दिया। सन्ध्या समय ललितसेन के यहां बिताने का निश्चय किया।

ठण्ड पड़ने लगी थी। भोजन करने के पश्चात् अलवाइन ओढ़कर ललित के मकान पर पहुंचा। ललित अपनी बैठक में टहल रहा था।

कुछ एकान्त-सेवियों को साथियों की अनिच्छा-सी रहा करती है, परन्तु भोजन के उपरान्त एकान्त-सेवी भी एकाध व्यक्ति के सहवास के विरुद्ध नहीं होते। अजित का आना उसे न खटका।

दोनों बैठ गये। बातचीत होने लगी। ललित ने कहा—'तो कल आप दिन-भर घूमेंगे? मैंने भी कई बार वे स्थान देखे हैं। अब तो जी भर गया, नहीं तो मैं भी चलता।'

अजित आग्रह के साथ बोला—'एक बार फिर सही। अच्छी चीज को बार-बार देखने से उसका गुण कम नहीं होता।'

'यह ठीक है। परन्तु मन ऊब उठता है। इसके सिवा मुझे कल एक आवश्यक काम भी है।' ललितसेन ने कहा—'आप अकेले ही जा रहे हैं, या कोई साथ?'

अजित ने उत्तर दिया—'भुजबल-नामक एक सज्जन मऊ-रानीपुर की तरफ के यहाँ आये हुये है। सुरुचि-सम्पन्न पुरुष मालूम होते हैं। उनकी ससुराल मऊ-सहानिया में है। उन्हीं के आमंत्रण पर जा रहा हूँ।'

ललित ने कहा—'यह नाम मैंने भी सुना है। शायद एक कार्य-वश हाल ही में मेरे पास एक सड़े-गले रईस के साथ आये थे।'

अजित ने हँसकर कहा—'आपके न्याय के अनुसार इस तरह का आदमी संसार में न रहने योग्य है, और न बच ही सकता है।'

'यही नहीं।' ललितसेन ने उत्साह के साथ कहा—'किन्तु ऐसे आदमी को संसार में अधिक दिनों बचने ही नहीं देना चाहिये। फोड़े-फुन्सी यदि शरीर में अधिक दिनों घर कर जायें, तो सारा शरीर सड़ जायगा।'

अजितकुमार ने पूछा—'तो क्या ऐसे लोगों को मार डालना या कहीं खपा देना चाहिये।'

ललितसेन ने ठंडक के साथ जवाब दिया—'यदि एक व्यक्ति को दूसरा अपनी इच्छा या सम्पति के पैमाने पर तौलकर मारना-काटना शुरू कर देगा तो समाज दूसरी तरह के अयोग्य व्यक्तियों से भरने लगेगा। मेरी राय में कानून ऐसा बनना चाहिये, जिसका दुर्बल-निर्बल; सड़े-गले व्यक्तियों का सम्पूर्ण नाश हो। कानून समष्टि-रूप में

समाज के एक बहुत बड़े भाग की सम्मति का सार है। समाज का बनाया हुआ ऐसा विधान किसी एक व्यक्ति या कुछ व्यक्तियों की मनमानी का छुरा नहीं बन पायेगा, और संसार शीघ्र गन्दगी से साफ हो जायगा।'

कुछ महीनों की संगति से अजित कुछ ढीठ हो गया था। इसलिये उसने एक प्रश्न और किया—'ऐसी दशा में अस्पतालों, अनाथालयों, वनिताश्रमों और इसी तरह की और संस्थाओं की कोई आवश्यकता नहीं रहेगी।'

ललित ने कहा—'इस विषय में मेरी सम्मति शंका-शून्य है। संसार को योग्य व्यक्तियों के रहने के योग्य बनाने के लिये और समाज की उत्तरोत्तर उन्नति के लिये यह आवश्यक है कि इस तरह की संस्थायें जितनी कम हों, उतना ही अच्छा है। इनके बिलकुल अभाव के पक्ष में नहीं हूँ। क्योंकि मनुष्य का सम्पूर्ण नाश तब तक नहीं करना चाहिये, जब तक उसमें उपादेय होने की योग्यता बाकी रहे। इस विषय के विशेषज्ञों की सलाह से कानून बनाकर योग्यता के पैमाने स्थिर कर लिये जाने चाहिये। जो उन पैमानों की तौल से गिर जाय, चाहे वह अनाथ हो, रोगी हो या स्त्री हो, तुरन्त कानून द्वारा निर्धारित साधन से खत्म कर दिया जाय। इन संस्थाओं से कष्ट की वृद्धि हुई है, समाज की निर्बलता कम नहीं हुई है।'

अजितकुमार की आत्मा किसी जोर-शोर के प्रतिवाद के लिये चंचल हो उठी।

बोला—'इस तरह के दर्शन-शास्त्र के व्यापार से पृथ्वी पर पहले किसी एक देश की सत्ता सर्वोपरि हो जायगी, और फिर एक योग्यतम व्यक्ति की। जो लोग किसी प्रकार बचे रहेंगे, वे उसी सत्ता के लुञ्ज-पुञ्ज भिखारी और दास बनकर रहेंगे। इस दर्शन में कोई आनन्द नहीं है। बड़ा क्रूर और कर्कश है।'

ललितसेन उत्तेजित होकर बोला—'इस सिद्धान्त को गाली दे देने ही से युक्ति का खातमा नहीं होता। प्रकृति के नियम अखण्डनीय हैं,

अमिट हैं, विना किसी विरोध के दिन-रात एक गति से चलने वाले हैं। हमने उन नियमों के विरुद्ध स्थितियों में आनन्द का आरोप कर रक्खा है, इसलिये सच्ची बात कान को खटकती है।'

अजितकुमार ने भीतर की आह को दबाकर मुस्कराहट के साथ कहा—'इस सिद्धांत के साथ जाति-पांति के भेद का मेल कहां खाता है?'

ललितसेन ने इस प्रच्छन्न व्यंग्य की परवाह न करके गम्भीरता के साथ कहा—'युक्ति से अयुक्ति पर फिसल पड़ना इसी को कहते हैं। 'योग्यतम के अवशेष' के सिद्धान्त के अनुसार मनुष्यों का वर्गीकरण स्वाभाविक है। इन सब जातियों या जातिवर्गों में जो योग्यतम होगी, दूसरों को मिटाकर अपना अस्तित्व कायम करेगी। जाति-पांति के भेद को मानने में मैं उसी प्राकृतिक नियम का आदर करता हूं। जो काले, गोरे या पीले के भेद से वर्गीकरण करते हैं, वे मूर्ख और अन्धे हैं। रंग का भेद अहंकार और मूर्खता से उत्पन्न हुआ है, जाति का भेद संसार की सहज स्वाभाविक प्रगति से। और, अन्त में यही सिद्धान्त विजयी भी होगा।'

अजित ने दृढ़ता के साथ कहा—'यह सिद्धान्त समाज को वर्बरता की चरम सीमा पर पहुंचाने वाला सिद्ध होगा। हिन्दुओं का 'सत्यम्, शिवम्, सुन्दरम्' का सिद्धान्त ही अन्त में संसार को वचायेगा।'

ललित ने भौहें सिकोड़ीं। फिर व्यंग्य की हँसी हँसकर बोला—'यह कवियों का-सा कूड़ावाद संसार को वचायेगा!' फिर बोला—'जाति-भेद तो हिन्दुओं का ही सिद्धान्त है जनाव!'

इतने में वहां रतन आ गई। बोली—'आज मास्टर साहब कैसे आये?' वहस की गरमी शान्त हो गई।

अजित ने कहा—'मैं कल मऊ-सहानिया सैर-सपाटे के लिये जाऊँगा। भाई साहब को वतलाने आया था।'

ललित की तर्क-बुद्धि भी शान्त हो गई थी। बोला—'रतन शायद आप से हारमोनियम पर कुछ गाना सुनना चाहती है।' दर्शन-शास्त्र की

कठोर वहस के वाद अजित ने गायन का प्रस्ताव सहर्ष स्वीकृत किया, और दरवारी कान्हड़े में कवीर साहव का एक पद खूव तवियत के साथ गाकर सुनाया। एक पंक्ति यह है—

'घूंघट के पट खोल री, तोहे राम मिलेंगे।'

गाते-गाते अजितकुमार पुलकित हो गया, और अंत में ऐसा मग्न हो गया कि आंखों में आंसू आ गये।

रतन भी प्रभाव से अपने को न वचा सकी।

ललितसेन स्तम्भित होकर रह गया। जव गाना समाप्त हुआ, वोला—'राग-रागिनियों के रहस्य न तो मुझे मालूम हैं, और न मेरी समझ में आते हैं, परन्तु आपका आज का गाना विचित्र मोह-पूर्ण मालूम पड़ा है। एक क्षण ऐसा जान पड़ा, मानो हवाई जहाज में वैठकर मन कहीं उड़ रहा हो।'

रतन ने कहा—'मुझे तो ऐसा भान हुआ, जैसे कहीं कुछ उजाला सा हो गया।'

पूर्व इसके कि अजितकुमार नम्रता-पूर्ण शब्दों में कृतज्ञता ज्ञापन करे, ललित ने कहा—'क्यों साहव, मुझे भी गाना आ सकता है?'

अजित ने उत्तर दिया—'अवश्य जरा कोशिश करनी पड़ेगी।'

'करूंगा' ललित ने निश्चय प्रकट किया। गाने के पश्चात् अजित को भासित हो रहा था, जैसे हृदय का कोई वड़ा वोझ उतर गया हो। जव चलने लगा, उसने देखा कि रतन की आंखों में एक आग्रह-सा था—कुछ उत्कण्ठा-सी और कुछ...लालसा-सी।

[७]

वड़े सवेरे एक तांगे से भुजवल और अजितकुमार मऊ-सहानिया गये। नयेगांव से दो कोस है। पहुंचने में देर न लगी।

फांटा और गोलावीर-नामक पहाड़ियों का जहां से सिलसिला शुरू हुआ है, वहीं पर मऊ-सहानिया स्थित है। छोटी-सी वस्ती है। खंडहरों

की भरमार है। प्राचीन काल में महिमावान् नगर था। अब वहां गौरव के लिहाज से महाराजा छत्रसाल का महल और उनकी छतरी-भर हैं। महल नगर के दक्षिण की ओर फांटा और गालावीर की पहाड़ियों को जोड़ता है। उससे बिलकुल सटी हुई दक्षिण की ओर एक झील है। वाहर से वस्ती, महल, झील कुछ भी नहीं दिखलाई पड़ते। केवल फांटा पहाड़ी के नीचे पश्चिम की ओर महाराजा छत्रसाल की छतरी दिखलाई पड़ती है।

छावनी से कुछ दूर निकलने पर अजितकुमार ने पूर्ववती पहाड़ियों के नीचे दाहनी ओर छतरी के महल चित्रपट लिखे हुये से देखे।

सूर्योदय हो आया था। दूर्वा पर ओश ढलक रही थी। वालरवि की किरणें हिम-कणों पर सुनहला जाल बिछाये हुये थीं। प्रकाश-पुंज में पक्षियों के स्वर स्नान कर रहे थे। दिशायें सुरीली गूंजों से पुलकित हो रही थीं। आकाश से एक महक सी वरस रही थी। छोटी-वड़ी दूर्वा में इधर-उधर दो-दो अंगुल के पौधे कहीं दूर्वा-दल की छाया में और कहीं दूर्वा-दल की झुरमुट के ऊपर छोटे-छोटे फूलों से लद से गये थे। शंखाहूली वड़े-वड़े कटोरीदार फूलों की तली में छोटे-छोटे मोती भरे फैली हुई थी। घास का मैदान दाहनी ओर पश्चिम से पूर्व तक, फांटा पहाडी के नीचे तक, वायु की हलकी लहरों का क्रीड़ास्थल वन रहा था। एक-एक कड़ी और एक-एक कण चमक रहा था। नीली-पीली चिड़ियां कभी दूर्वा को रौंदती और कभी फूलों को अपने पंखों की झकोरों से झुला देती थीं। महुआ, ऊमर, पीपल और नीम किसी रहस्यमयी कृपा से स्निग्ध हो रहे थे। कभी एक पत्ता दूसरे पत्ते की हरियाली की छाया में सो-सो सा जाता था, और कभी एक से फिसलकर दूसरे पत्ते पर किरणें विश्राम सा ले लेती थीं। गिलहरियां सूर्य की ओर मुख किये मानों किसी सम्वाद के सुनने के लिये एकटक-सी वैठी थीं। दूध जैसे उजले जल पक्षी झुण्ड वांधकर इधर-उधर उड़ रहे थे। श्यामा, बुलबुल, तीतर और डौंके अपनी धुन में मस्त थे, मानो किसी का आवाहन कर रहे

हों। प्रकृति के आनन्द का राज्य सा मालूम होता था। आनन्द में एक व्याकुलता सी थी। चुलबुलेपन में एक गम्भीर विषाद सा था। क्या किसी को ग्रास करने के लिये ? अथवा किसी अपूर्णता को संपूर्ण करने के लिये, किसी त्रुटि को प्रचुरता प्रदान करने के लिये ? इसी स्थान के पास, छावनी से एक कोस निकलने पर, डेरी की तरफ नयागाँव नामक ग्राम मिलता है।

सड़क के करीब आध मील भीतर पड़ता है। जहाँ से गांव के लिये रास्ता फूटी है, वहाँ छोटी-छोटी वृक्षाच्छादित पहाड़ियाँ हैं। एक का नाम तिदाई है, दूसरी का नाम नौरा। इन पहाड़ियों का मध्य स्थान हरे-भरे सघन पेड़ों से ढकी हुई छोटी-छोटी खोहों से भरा हुआ सा है। इनमें प्रायः घातक पशु बने रहते हैं। चढ़ाई कठिन है, और छिपाव के स्थान ढूँढ़ने पर ही मिल सकते हैं। तिदाई पहाड़ी सड़क से लगी हुई है। अजितकुमार ने उनके नीचे एक गाय बच्चे को दूध पिलाती देखी। अच्छा शकुन समझकर मन प्रसन्न हो गया। फिर पहाड़ी के मध्य स्थान की पल्लव-प्रच्छन्न खोहों का अनुमान किया।

हरित-भरित प्रकाशमय फूलों से लदा हुआ विस्तृत दूर्वादल-कुञ्ज, उसके पास खड़ी हुई एक गाय बच्चे को दूध पिला रही थी, और ऊपर किसी खोह में चुपचाप बैठा हुआ शायद कोई तेंदुआ या चीता उसे और बच्चे को खा जाने की घात में बैठा हो। जिस समय वह उन माँ-बेटे का वध करेगा, श्यामा और तीतर गाते रहेंगे; शङ्खाहूली के फूल की कटोरी की ओस नहीं सूखेगी; हरी दूर्वा बालरवि की किरणों के लिये पाँवड़े डालती रहेगी। प्रकृति में संगीत है, और उसी के गर्भ में वध भी। नन्हे-नन्हे फूलों की मुस्कान भी है, और तेंदुआ-चीते के नाखून और दांत भी ! श्यामा का गान है, और वध की जाने वाली गाय का चीत्कार भी !

अजित ने सोचा—'प्रकृति के सन्देश में वध नहीं है, संगीत है; मारना नहीं है, मर जाना है। वध पर संगीत की विजय होगी। सूर्य की किरणें आकाश से यही संवाद ला रही हैं।'

भुजवल से बोला—'प्रकृति त्याग को पुष्ट करती है, और निर्वलों की रक्षा के लिये सवलों के पास सूर्य द्वारा शक्ति भेजती है।'

भुजवल इस समय कुछ कम शास्त्रीय विषय में उलझ रहा था, इसलिये सुनकर दंग रह गया। बोला—'जी हां, ठीक है। मैं कुछ समझा नहीं।' तांगा दूर निकल जाने वाला था। उसे रोककर अजित उतर पड़ा। भुजवल ने कहा—'अभी मऊ गांव नहीं आया है। वहां तो नयागांव है।'

'पहले इस गाय को सङ्कट-स्थान से हटा दूं, तव मऊ चलूंगा।'

अजित ने कहा—'आप ठहरिये, मैं अभी आता हूं।'

भुजवल वोला—'वहां तो कोई संकट नहीं है।'

अजित ने कहा—'उस पहाड़ी के मध्य-स्थान में जो खोहें दिखलाई पड़ती हैं, अवश्य कोई तेंदुआ या चीता होगा। इस गाय को गांव की ओर भगा देने या ओर गायों में कर आने के वाद अभी लौटता हूं।' और डंडा लेकर अजितकुमार पहाड़ी के नीचे चला गया।

भुजवल ने मन में कहा—'कुछ सनकी-सा जान पड़ता है। किस-किस गाय को तेंदुये से वचायेगा? यहां तो तेंदुयें का उपद्रव नित्य की साधारण वात है। जान पड़ता है, एक दिन पिंजरापोल खोलेगा।' फिर सोचा—'अवश्य ही इसके द्वारा हमारा काम भी निकल जायगा। जरा-सी हिकमत में पिघलेगा।'

गाय को वहां से गांव की ओर भगाकर अजित थोड़ी देर में लौट आया।

भुजवल ने कहा—'आप वड़े दयावान् हैं। ऐसे ही लोगों के वूते संसार टिका हुआ है।'

अजित ने जरा लजाकर कहा—'यह तो एक साधारण-सा कर्तव्य है। दुष्टों का दमन और दुर्वलों की रक्षा प्रकृति के सौन्दर्य का आदेश है।'

किसी लम्वे व्याख्यान के खयाल से डरकर विना कुछ टोका-टाकी या टीका-टिप्पणी किये हुये भुजवल चुपचाप अजित को लिये हुये मऊ-सहानिया पहुंचा।

(८)

मऊ पहुंचने पर अजित ने भुजवल से ठहरने के स्थान के विषय में पूछा। उसने अपनी ससुराल के सामने तांगा ठहराकर कहा—'इसी जगह। यहां मैं व्याहा था।'

'था ?' अजित ने धीरे से कहा।

भुजवल ने आह भरकर कहा—'जी हां। मेरे घर के लोगों का देहांत हो गया।'

भुजवल की ससुराल में उसकी सास थी और साली—और कोई न था।

घर एक ओर फूटा पड़ा था। पौर समूची थी। आंगन लम्बा-चौड़ा और भीतर दो घर थे। एक कोने में नावदान था, और दूसरी ओर मिट्टी के घड़े और एक तांवे का कलसा रक्खा था। पौर से आगन और भीतर का सब सामान दिखलाई पड़ता था। घर में दो भैंसे थीं। उनके घी-दूध और दो-तीन वीघा मौरूसी जोत से मां-वेटी की गुजर चलती थी।

भैंस दुही जा चुकी थीं। सास चक्की पीस रही थी, और साली भैंसों का गोवर उठाकर कंडे पाथने की चिन्ता में थी।

भुजवल की साली का नाम पूर्णिमा था। वह उसकी मृत पत्नी से छोटी थी। १३-१४ वर्ष की हो जाने पर भी दरिद्रता के कारण अभी तक व्याह न हुआ था। घर पर थोड़ा-सा पढ़-लिख पाई थी। काम-काज के मारे वह अब वन्द हो गया था। लोग उसको पूना कहकर पुकारते थे।

पूना को कंडे पाथते देखकर भुजवल के आत्मसम्मान को, अजित के साथ होने के कारण, धक्का लगा। परन्तु पूना अपने वहनोई को पहचानते ही तुरन्त कंडे छोड़कर भीतर भाग गई, और इस तरह उसने भुजवल को भीषण आत्मग्लानि से वचा लिया।

असवाव और हारमोनियम लेकर भुजवल ने पौर में रख दिया। दोनों पौर के चवूतरे पर जा वैठे। पूना से समाचार पाकर उसकी सास

ने चक्की बन्द कर दी। पूना हाथ धोकर और सिर को खूब ढककर आंगन के द्वार के पास, भीत से चिपककर, खड़ी हो गई। बोली—'जीजाजू, अच्छी तरह से हो?'

भुजबल ने उत्तर दिया—'हां। तुम लोग मजे में हो?'

पूना ने कहा—'आपके दर्शन पाने से।'

भुजबल बोला—'भीतर कहो कि जल्दी खाना बनावें। छावनी से मास्टर साहब आये हैं। बड़े आदमी हैं।'

अजित ने घबराकर कहा—'ऐसा मत कहिये। मैं तो मामूली आदमी हूं। फिर जाति में कोई बड़ा या छोटा नहीं होता।'

पूना ने अजित को देखने के लिये सिर निकाला। अजित ने भी देख लिया।

'हिरनी के बच्चे सरीखी बड़ी-बड़ी आंखें, प्रभातकालीन गुलाब जैसा मुख और भोली अल्हड़ चितवन।

पूना और उसकी मां तुरन्त स्नान करके खाना बनाने लगीं। तब तक अजित और भुजबल जागतसागर-ताल पर स्नान करने गये।

छावनी से एक बाबू-वेश वाले का मऊ में आना कोई नई घटना न थी, फिर भी बहुत से लोग चकित-सी दृष्टि से अजित की ओर देखते थे। तांगे में आया था, इसलिये उन्हें विशेष कौतूहल था।

जगतसागर पर पहुंचकर भुजबल ने कहा—'छत्रपुर के महाराज जगतसिंह ने इस तालाब को सुधरवाया था, इसलिये उन्हीं के नाम पर जगतसागर कहलाता है।'

इस तालाब के किनारे और सीढ़ियों पर किसी प्राचीन मन्दिर के भग्नावशेष उखाड़-पछाड़कर इधर-उधर जड़ दिये गये थे। पुरानी मूर्तियां टूटी-फूटी फैली हुई पड़ी थीं। उत्तर की ओर एक प्राचीन विशाल मन्दिर का धुस्स बिखरा हुआ किसी भग्न-गौरव की याद दिला रहा था। शायद तालाब की मरम्मत में इस मन्दिर के पंजर से मदद ली गई थी। सीढ़ियों में एकाध शिला पर छोटा-मोटा लेख भी था, परन्तु तालाब के सुधारने

वाले धनी कारीगरों ने इन शिलालेखों के समय और स्थान की, मालूम होता है, कुछ परवा न की थी।

अजितकुमार ने कहा—'महाराज जगतसिंह के मरम्मत कराने के पहले भी तो यह विशाल तालाव रहा होगा। उस समय इसका क्या नाम था? इसका प्राचीन नाम क्यों वदल डाला गया?'

पुरातत्व में वहुत दखल न रखने के कारण भुजवल ने कोई उत्तर नहीं दिया। परन्तु पास खड़े हुये एक मऊ निवासी ने कहा—'पहले चाहे जो कुछ नाम रहा हो, परन्तु जब से महाराज जगतसिंह ने इसकी मरम्मत करा दी, तव से हम लोग जगतसागर ही कहते हैं। इतना जानते हैं कि यह ताल चन्देलों के समय का है।'

इस अन्तिम व्यवस्था पर फिर किसी को कहने के लिये कुछ गुञ्जाइश न रही।

भुजवल और अजित नहा-धोकर लौट आये। खाना अभी तैयार नहीं हुआ था। प्रभात-समीर ने भूख जाग्रत कर दी थी। घूमने के लिये दिन-भर की धूप अनुकूल न थी, इसलिये इस समय कहीं न जाकर अजित ने हारमोनियम उठा लिया।

भुजवल ने कहा—'जरूर-ज़रूर, आपका एक अलाप हो जाय।'

अजित बोला—'नहीं, आपकी एक ठुमरी।'

भुजवल ने हठपूर्वक कहा—'आपके अलाप की ही यह समय वाट जोह रहा है। अभी दस-ग्यारह वजे होंगे। कोई सवेरे की रागिनी होने दीजिये।'

अजित ने भुजवल का आग्रह मान लिया। गई रात जिस भाव के साथ गाया था, उसी भाव के साथ गाने की चेष्टा की, परन्तु वह भाव न आया, तो भी उसने अच्छा गाया। भुजवल ने वाह-वाह का ढेर लगा दिया।

पूना रसोई से उठ आई। छोटी-छोटी लड़कियां पूना के साथ पौर के द्वार के पास सिमट कर खड़ी हो गईं। जब गाना समाप्त हो गया,

एक लड़की ने पूना से पूछा—'जे को आयें ?'

पूना ने धीरे से कहा—'छावनी से रासधारी आये हैं। अथये कैं रास हुई है।'

अजित और भुजवल ने इस चरित्र-चित्रण को सुन लिया। अजित ने मन में कहा—'क्या प्रशंसा-पत्र मिला है। बड़ी फूहड़ मालूम होती है।'

भुजवल ने भीतर-ही-भीतर छटपटाते हुये सोचा—'गजब कर दिया इस छोकरी ने।' और किसी मिस से थोड़ी देर के लिये वाहर चला गया। लड़कियां हँसती हुई अपने-अपने घर भाग गईं।

[६]

भोजन परोसने में अजित ने पूना को यथासम्भव वारीकी के साथ देखा। जैसे प्रभात-कलिकाओं पर हिम-कणों की रोमावलि और सीताफलों पर प्रकृति की छिटकी हुई सफेद वुकनी की रेखायें उनके आन्तरिक अक्षुण्ण स्वास्थ्य का लक्षण है, वैसे ही पूना का ज्योतिर्मय मुख था।

अजित ने मन में कहा—'विभूतिमयी है, और साथ ही कुटिल भी। मुझे रासधारी कहती थी।' अजित के मन में वार-वार देखने की इच्छा न हुई, और न उसने देखा।

भोजन के उपरांत एक घड़ी-भर विश्राम करने के वाद दोनों आदमी पहाड़ियों और प्राचीन काल के खण्डहलों की सैर करते रहे। रात को लौटकर छावनी जाना था, और चले जाने के पहले अपनी सास से मिलना था। परन्तु अभी सन्ध्या होने में विलम्व था। दोनों महाराजा छत्रसाल के महलों को देखते हुये दक्षिण की ओर वाले वड़े लम्वे-चौड़े चवूतरे पर जा वैठे, जिससे झील में उतरने के लिये पक्की सीढ़ियाँ वनी हुई हैं। झील के दायें-वायें पहाड़ियाँ थीं और सामने विखरी हुई टौरियाँ। इन्हीं टौरियों में विगत काल का फाटक, दीवार और वस्ता धुस्सों के रूप में लुप्त-प्राय पड़ी हुई हैं। यहीं पर पहले महोवा (इतिहास-प्रसिद्ध महोवा नहीं)—नामक ग्राम था, जो अव हटकर, एक मील और दक्षिण की ओर वस गया है। सूर्यास्त नहीं हुआ था। फांटा पहाड़ के

ऊपर स्थित सिद्ध बाबा के मंदिर के शिखर पर किरणें उछलती हुई-सी मालूम पड़ती थीं। ठंडी हवा धीरे-धीरे चल रही थी। नीले जल में छोटी-छोटी लहरें उठ रही थीं। अस्ताचलगामी रवि की रश्मियाँ प्रत्येक लहर में विद्यमान मालूम होती थीं। जैसे स्वर्ण की बाल संपूर्ण झील में छितरा दी गई हो। ऊपर आभा की पतली-सी चादर और नीचे की तहें प्रकाश की टेढ़ी-मेढ़ी अलकों के पुञ्ज। कभी-कभी एकाध मछली की आँख विद्युत-समान चमककर तुरंत लोप हो जाती थी। लहरों की थपेड़ें अंतिम सीढ़ियों से टकरा-टकराकर एक निरंतर स्वर उत्पन्न कर रह थीं। जैसे जल-राशि किसी से कुछ कह रही हो।

कौए कांव-कांव करते हुये घोंसलों की ओर जा रहे थे, और दक्षिणवर्ती टौरियों के पीछे अनंत सन्नाटे को चीरकर कहीं से धुएँ की बारीक रेखायें गगन की ओर चढ़ रही थीं। वह धुआँ पहाड़ियों के किसी कोने में रहने वाले सीधे-सादे देहातियों के घरों के अलावों से उठ रहा था, और उनकी निर्बल अवस्था के आसरे का द्योतक था।

अजित ने कहा—'देहातों में शहरों की तरह का स्वार्थ भरा हुआ न होगा।'

भुजबल बोला—'स्वार्थ तो सभी जगह है। परोपकार-वृत्ति ही विरली चीज है।'

अजित ने कहा—'परन्तु स्वार्थ के ऊपर परोपकार की विजय हुई है, और होगी। स्वार्थ सिवा स्वार्थ के और किसी को जन्म नहीं दे सकता है।'

उस एकांत स्थान में, पहाड़ों की गोद में खेलने वाली स्पंदनमयी झील के पास बैठे हुये भुजबल के हृदय में भी झील के झर-झर शब्द की प्रतिध्वनि हुई, और मन के एक कोने में जल-विलासिनी किरणों के अलोक का प्रतिबिंब पड़ा।

उसने सोचा—'शिवलाल की कुछ जायदाद बेचकर ऋण चुका देना चाहिये। इधर-उधर रहन के झगड़े में और खपना व्यर्थ है।

परन्तु—परन्तु मेरे पल्ले इसमें बहुत कम पड़ेगा।' यह परन्तु झील की कल-कल से अधिक प्रखर था। बोला—'संध्या होना चाहती है। अँधेरा हो जायगा। लोग कहते हैं कि महलों में भूत-प्रेतों का निवास है। यह चाहे गलत हो। परन्तु अँधेरे में मार्ग का मिलना दुश्वार हो जायगा। चलिये। रात ही में हमको-आपको छावनी भी चलना है।'

अजित को उस एकांत स्थान का सौन्दर्य आनन्द प्रदान कर रहा था। उठने को मन न चाहा। परन्तु भुजबल ने जो आने वाले अँधेरे की चेतावनी दी थी, उससे उठना पड़ा। अतृप्त, सतृष्ण नेत्रों से एक बार मुड़कर केलिमयी झील को देखता हुआ चला गया।

घर पहुंचकर चलने की तैयारी होने लगी। ब्यालू करने के लिये आग्रह की जरूरत न पड़ी, क्योंकि भूख लग रही थी। गांवों में संध्या-समय भोजन जल्दी तैयार नहीं होता। ठहरना पड़ा। दुहनी होने के बाद दूध आँच पर रख दिया गया। पौर में मिट्टी के तेल का दिया जलाकर प्रकाश कर दिया। अजित और भुजबल कपड़े ओढ़कर बैठ गये।

(१०)

जब तक ब्यालू का समय आवे, भुजबल ने हारमोनियम छेड़ने का प्रस्ताव किया।

अजितकुमार ने पहले टाला-टूली की। पीछे साफ इनकार कर दिया। कहा—'थक गया हूँ, बिलकुल जी नहीं चाहता।'

भुजबल ने ख्याल किया कि भूख के आगे हारमोनियम की नहीं चल सकती।

इतने में एक छोटी लड़की ने अँधेरे में ही खड़े-खड़े भुजबल से पूछा—'जीजाजू, पों-पों नईं बजिहै का ?'

भुजबल ने उत्तर दिया—'नईं बजिहै, टूट गओ वौ तो।'

लड़की बोली—'हूँ ऊँ—रासधारी तो बैठे हैं अबै।'

इतने थोड़े समय में रासधारी के नाम से मशहूर हो जाने पर अजित को विवश बड़े जोर की हँसी आई। भुजबल क्षुब्ध हो गया। लड़की को डराने-धमकाने लगा। और छोटी-छोटी लड़कियाँ-लड़के जमा हो गये। शोरगुल और हँसी का तूफान खड़ा हो गया। प्रतिकार न कर पाने के कारण भुजबल को भी हँसी आ गई।

व्यालू तैयार हो गई थी। पूना ने दरवाजे के पास खड़े होकर बुलाया।

अजित ने मन में कहा—'यही कुटिल सौंदर्य मेरे इस नामकरण का कारण है।'

व्यालू करने के बाद अजित पौर में आ बैठा। भुजबल अपनी सास से बिदा मांगने भीतर रह गया।

सास लम्बा घूँघट काढ़कर पास आ बैठी। उसकी छाया में पीछे पूना सिमटकर जम गई।

उनकी सास ने कुशल-क्षेम पूछने के बाद कहा—'काम कैसा क्या चला जाता है ?'

जामाता भुजबल ने सहज दम्भ के साथ उत्तर दिया—'खूब अच्छा है गङ्गाजी की कृपा से। हमारा जमींदार तो बुड्ढ़ा है। मालिकी का पूरा बोझ मेरे ही सिर है। आजकल उसे दस-बीस हजार रुपये उधार लेने की अटक है। बड़ा सिर खपाना पड़ रहा है। परन्तु हमारे लिये भी काफी रुपया कर्ज दिला देने के बदले में निकल आयेगा।' दम्भ ने हृदय के भीतर की बात बाहर कर दी। इस पर तुरन्त भुजबल को पछतावा हुआ। बोला—'मुझे रुपयों की टूट नहीं रहती है। आप लोगों की दया से रोटी-भाजी मिल जाती है।'

पूना की मां बोली—'भगवान् ऐसी ही कृपा बनाये रहें। हम लोगों को तो देखने-सुनने में ही बहुत आनन्द मिल जाता है।' फिर एक क्षण ठहरकर उसने कहा—'पूना के लिये क्या सोचा है ? इसके भी हाथ

पीले हो जायें, तो सुख से मर जाऊँ। अब इस गिरिस्ती का भार नहीं चलता।'

भुजवल ने सोचा—'कैसी वेवकूफी में बात मुँह से निकल गई, पर इसने समझ नहीं पाया।'

सास से वोला—'क्या करूँ, न-जाने कितनी जन्म-पत्रियाँ मँगवाईं, एक का भी मेल नहीं खाता। परन्तु मैं चिन्ता में हूँ।'

सास की इच्छा भुजवल के साथ ही व्याह कर देने को थी, परन्तु मेल न खाने वाली जन्म-पत्रियों में से एक उसकी भी थी। ज्योतिपी लोग कहते थे कि पूना के ग्रह वड़े प्रवल और तीक्ष्ण हैं। भुजवल के कुछ ग्रह मिल गये थे, परन्तु सव नहीं।

सास ने कहा—'मुझे खाई रोटी नहीं पचती। इस चिन्ता के कारण वड़ी वेचैनी रहती है।'

भुजवल वोला—'हमारे साथ जो मास्टर साहव आये हैं, इन्हें देखा है?'

'देख लिया है।' सास ने उत्तर दिया—'परन्तु ग्रह मिल जायें, तव तो है।'

भुजवल ने मुस्कराकर कहा—'वड़ा अच्छा हो, अगर ग्रह मिल जायें। पूना ने उनको रासधारी तो वना ही लिया है। जन्म भर उसे नाचना-गाना देखने को मिलता रहेगा।'

पूना को जोर की हँसी आई परन्तु कसकर उसने अपना मुँह पकड़ लिया।

सास को यह सव रहस्य अवगत न था। वोली—'क्या यह नाचने का पेशा करते हैं?'

भुजवल ने हँसकर उत्तर दिया—'नहीं, नहीं। वह वहुत इम्तहान पास हैं। वैसे ही अपने मन वहलाने को गाते हैं। रासधारी तो पूना ने अपनी शरारत से वना दिया है।'

सास ने उस परिहास में कोई भाग नहीं लिया। बोली—'यदि जन्म-पत्री मेल खा जाय, तो अच्छा है, नहीं तो कुछ और फ़िकर करो। इस वर्ष में भांवर डालने का निश्चय कर लिया है। अपनी बहिन ही के घर में रह जाती, तो अच्छा होता, परन्तु क्या करें, ग्रहों पर बस नहीं चलता।' पूना अपनी मां की छाया में और भी सिकुड़कर बैठ गई। भुजवल ने कुछ नहीं कहा।

चलते समय पूना की मां ने भुजवल को अपनी चिन्ता रोकर फिर सुनाई, और उसकी निवृत्ति का उससे पक्का वादा करा लिया, तब छोड़ा।

ताँगे में सवार होते समय अजितकुमार ने देखा कि टिमटिमाते हुये दीपक के प्रकाश में पौर में खड़ी पूना एक कोने में से उसकी ओर एकटक देख रही है। उस अर्द्ध-विकसित लावण्य में किसी को 'रासधारी' बना डालने की सामर्थ्य देखकर अजितकुमार को आश्चर्य हुआ।

चन्द्रमा के उदय में अभी विलम्ब था। घोर अंधेरा छाया हुआ था। निर्जन सड़क पर सुनसान अँधेरे में खड़-खड़ करता हुआ तांगा अपनी साधारण गति से जाने लगा।

तारे खूब छिटके हुये थे। ऐसे साफ़-सुथरे, जैसे बरफ से धोये गये हों। आकाश-गंगा क्षितिज के छोरों को आकाश के एक किनारे से छू रही थी। तारों के प्रकाश में दूरवर्ती पहाड़ियां धुएँ की पतली रेखाओं सदृश भाषित हो रही थीं। और निकटवर्ती वृक्ष अंधकार-पटल पर सीधी और वक्र रेखाओं के समूह-से मालूम होते थे। सम-विषम झाड़ियां और घास का मैदान-एक अनंत समथर विस्तार-सा जान पड़ता था। प्रकृति शांत थी, और उसकी गोद में सब चीजें विश्राम लेती हुई मालूम पड़ती थीं।

दिन में खूब घूम लेने के बाद भी अजित को इस समय थकावट नहीं मालूम हो रही थी। छावनी पहुंचकर सो जाना है, और सवेरे उठकर अपने काम पर जाना है, यही खयाल मऊ-सहानिया छोड़ने के बाद अन्य क्षणिक कल्पनाओं के ऊपर आ गया।

नहीं हो सकती थी, और ललित को विश्वास था कि पुस्तक के अस्थायी साहित्य द्वारा संगीत की शिक्षा अधिक सहज है।

बैठक के पास सड़क पर छिपे हुये दो-तीन लड़के मुंह बना-बनाकर धीरे-धीरे कुछ आलाप कर रहे थे, जिसे संगीत के किसी भी अङ्ग की परिभाषा में स्थान नहीं मिल सकता।

यह व्यापार देखकर अजित ने अध्यापकोचित आवेश के साथ डांट कर कहा—'क्या कर रहे हो ? भाग जाओ।'

लड़कों ने कहा—'पों-पों सुन रहे हैं, और पों-पों गा रहे हैं।' परन्तु सुव्यवस्था न देखकर लड़के भाग गये।

जिसे लड़कों ने पों-पों कहा था, वह हारमोनियम की स्वरावलि चाहे जैसी मोहक रही हो, परन्तु ललितसेन का गला बहुत मधुर न था, इसलिये लड़कों की व्याख्या और हारमोनियम तथा ललित के गले के लयकार पर अजित जरा खीझ गया। भुजबल को हँसी आ गई, जिसे उसने बैठक में धँसने के पहले मुश्किल से रोक पाया।

ललित धुन का शायद पक्का था, इसलिये प्रणाम के बदले में सिर झुकाकर हारमोनियम को धौंकता रहा, और जब तक संगीत-शिक्षा की पुस्तक का एक अध्याय समाप्त न कर लिया, हारमोनियम की धौंकनी को विश्राम न दिया।

मामूली बातचीत के बाद अजित भीतर रतन को पढ़ाने चला गया। ललित ने भुजबल से आने का काम-काज पूछा।

भुजबल ने कहा—'एक टीपना के लिये आया हूँ।'

'टीपना ? किसकी ? किसके लिये ?'

'आपकी टीपना चाहिये।'

ललित हारमोनियम को एक ओर हटाकर कुछ सोचने लगा। बोला—'मैं तो विवाह नहीं करना चाहता हूं।'

भुजबल जानता था कि श्लाघा की इच्छा मनुष्य की सबसे अधिक निर्बल वृत्ति होती है, और बड़े लोग नग्न प्रशंसा यानी खुशामद को

पसन्द नहीं करते हैं, परन्तु खूब ढकी-मुंदी तारीफ के विरोध करने का बल विरलों में ही होता है। कहने लगा—'तब तो दीन-दुखियों का भगवान ही मालिक है। ऐसा घर और ऐसा वर किसी कन्या को भी नहीं मिलेगा, यह बात शायद नहीं रची गई है। आप टीपना दे दीजिये, न मिलेगी, तो कोई जबरदस्ती थोड़े ही आपका विवाह कर देगा।'

ललित गम्भीरतापूर्वक बोला—'टीपना मिल जाने पर फिर लड़की वाले बेतरह पीछे पड़ते हैं। मैं आपको टीपना दे भी दूंगा, तो नतीजा कुछ नहीं, क्योंकि व्याह न करूंगा।'

भुजबल ने उदास स्वर में कहा—'हाँ साहब, हम लोगों के ऐसे भाग्य कहाँ, जो आप सरीखे समर्थ, सर्वगुण-सम्पन्न लोगों के साथ सम्बन्ध कायम कर सकें। यदि इस राय के बहुत लोग हो जायें, तो न जाने कितनी लड़कियों को आजन्म कुंआरा रहना पड़े।'

इस बात से ललितसेन को अपनी बहिन की विवाह योग्य आयु का ध्यान हो आया।

इतनी बड़ी हो गई, और अभी तक कुंआरी है! व्याह हो जाने के बाद अपने घर चली जायगी। तब चारों ओर यहां सुनसान हो जायगा! दो-टूक बात करने की आदत में शिथिलता आई। धीरे से बोला—'अभी तो कुछ नहीं कह सकता, कल जवाब दूंगा।'

भुजबल किसी आशा से पुलकित हो उठा। उसने कहा—'कुछ जल्दी नहीं है। जब आप उचित समझें, तब बतला दें।' और उठ खड़ा हुआ।

भुजबल के बैठक से जाने के पहिले ललित ने कुछ आग्रह के साथ कहा—'कल संध्या-समय अवश्य आइयेगा।'

[१२]

अजितकुमार ने रतन को हारमोनियम पर सङ्गीत सिखाने में कोई कसर नहीं छोड़ी, और रतन ने सीखने में कुछ उठा नहीं रक्खा, परन्तु न-मालूम उसे संगीत या हारमोनियम क्यों नहीं आया। पहले एक-दो हफ्ते में जितना सीखा था, उसके आगे विद्या न बढ़ी।

अजित संगीत-शिक्षा के समय में गाना अधिक सुनने लगा, और रतन एकटक ध्यान के साथ उसकी सुरीली ध्वनि में डूबने-उतरने लगी। अपने पुराने गीतों को नये ढंगों में, और नये गीतों को पुराने ढंग में ढालने में लगी रहती थी। शिक्षक इस उलट-पुलट को कला का एक शिल्प-व्यापार समझकर पाठ्य-क्रम को सफल होता हुआ भान करने लगा।

अजित फोटोग्राफरी भी जानता था। ललित की अनुमति से फोटोग्राफी भी सिखलाने लगा। दीवारों, पेड़ों, गमलों और जानवरों के फोटों लेने के बाद एक दिन अजित ने सोचा कि रतन की फोटो लूँ, परन्तु न-जाने हिम्मत ने क्यों जवाब दे दिया।

जिस दिन भुजबल ललित की जन्म-पत्री माँगने आया था, उस दिन अजित के मन में रतन की तस्वीर खीचने की विशेष ललक हुई। अकेले में फोटो उतारने की समर्थता मन में न पाकर पठन-पाठन और गायन-वादन बन्द करके ललित के पास आया। भुजबल चला गया था।

बोला—'आज आपकी तस्वीर खीचूँगा।'

ललित ने खूब हँसकर कहा—'हुजूर, एक साहब जन्म-पत्री चाहते हैं, दूसरे चित्र। अब ब्याह न रुकेगा।'

भाई की असाधारण हँसी सुनकर रतन भी आ गई।

ललित ने कहा—'रतन, मेरा ब्याह होगा।' और फिर हँसा।

रतन प्रमुदित होकर बोली—'कब होगा भैया?'

ललित ने उत्तर दिया—'अभी तस्वीर खिचते ही।'

रतन प्यार की पली हुई लड़की थी, और जब तक भाई के चेहरे पर विनोद के चिह्न दिखलाई पड़ते थे, वह ढिठाई नहीं छोड़ती थी।

उसने भौंह सिकोड़कर एक बार ललित और दूसरी बार अजित की ओर देखते हुए कहा—'तुम तो यों ही कह रहे हो, इस घर को बसने थोड़े ही दोगे। जन्म-पत्री किसने माँगी थी?'

ललित वोला—'मास्टर साहव के साथ एक सजातीय सज्जन आये थे, वह अपने किसी संवंधी की लड़की के लिये मांगते थे। अव वतलाओ व्याह में क्या कसर रह गई है ?'

'केवल इतनी ही कि आप अभी व्याह नहीं करेंगे।'

ललित हँस दिया। अजित कुछ सोचने लगा। क्या उसी लड़की के लिये, जिसने उसे रासधारी समझा था ?

एक क्षण के वाद वोला—'शायद वह अपनी साली के लिये माँगते होंगे, जो मऊ-सहानिया में रहती है। मैंने उसे देखा है। जन्म-पत्री मिल जाने पर आपको इनकार न करना चाहिये।'

रतन ने ललित के पास आकर वड़े भोलेपन और अग्रह के साथ कहा—'हाँ ठीक है। अवश्य कर लेना हमें वड़े-छोटे घर के भेद से कुछ मतलव नहीं है। भावज रूप और गुणवाली होनी चाहिए।'

'इसकी मैं सौगंध खाता हूँ।' अजित ने निश्चय के साथ कहा।

ललित मुस्कराकर वोला—'मेरे विरुद्ध खूव षड़यन्त्र रचा गया है। जन्म-पत्री, चित्र, अनुनय, तीनों मेरे विरुद्ध हैं, परन्तु मैं सहज ही खेत छोड़ने वाला आदमी नहीं हूँ।'

'नहीं भैया, मैं हाथ जोड़ती हूँ।' रतन ने कहा—'हठ मत करो। यह घर माता-पिता ने हरा-भरा छोड़ा था, इसे सूना मत रक्खो।' और रतन की आंख में एक आंसू झलक आया।

ललित ने एक खिचती हुई आह को दवाया, वह खुद नहीं समझा कि आह उठी क्यों। रतन के सिर पर हाथ रखकर दुलार के साथ वोला—'तू तो पागल हो गई है रतन। आज मास्टर साहव मेरा चित्र खींचेंगे। तेरा भी चित्र खिचवाऊँगा, और सव वातें पीछे की हैं।'

अजितकुमार के मन में वड़ा हर्ष हुआ। ललित का फोटो खींचने के वाद उसने रतन का फोटो खींचा। शायद एक प्लेट पर चित्र अच्छा न आवे, इसलिये दूसरे प्लेट पर भी छाया ले ली।

अजित केमरा लेकर, खुशी-खुशी घर चला गया। तीनों उस दिन जितने प्रसन्न थे, शायद पहले इतने कभी न दिखलाई दिये होंगे।

[१३]

दूसरे दिन सवेरे अजितकुमार के आने के पहले ही भुजवल आ गया। नियत समय सन्ध्याकाल था, परन्तु भुजवल ने उसकी परवा नहीं की। 'मुझे क्षमा कीजियेगा। सन्ध्या के इतने पहले ही कष्ट देने के लिये आ गया हूँ।' भुजवल ने आते ही मुस्कराते हुये, परन्तु विनीत भाव से कहा। इस समय उसका सुन्दर स्वास्थ्य जगमगा-सा रहा था।

ललित को बुरा नहीं लगा। पूछा—'आपका उस दिन पूरा परिचय प्राप्त न कर सका था। आपके यहाँ क्या होता है?'

'थोड़ी-सी जमींदारी है, किसानी का धंधा होता है, और शिवलाल की जायदाद का इन्तजाम करता हूं। मुझे विशेष आवश्यकता भी नहीं है।'

'आपका विवाह हो गया है?'

'हो गया था, पत्नी का देहान्त हो गया है।'

'कोई वाल-वच्चा है?'

'जी नहीं।'

'शिवलाल की जायदाद वड़ी है?'

'जी हाँ, काफी वड़ी, परन्तु उनका खर्च वहुत है, और अनेक प्रकार का है। उसी के सम्बन्ध में उस दिन दर्शन करने आया था।'

'आप प्रवन्ध करने में वड़े दक्ष होंगे। मैं तो अपनी कितावों से वहुत कम अवकाश पाता हूँ। मेरी वहिन वहुत कुछ प्रवन्ध करती है। उसके विना मेरा निभाव वहुत कठिन हो जायगा।'

इतना कहकर ललित किसी गम्भीर चिन्ता में निमग्न हो गया।

भुजवल कुछ नहीं वोला। परन्तु उसको भान हुआ कि व्याह की परिधि में अपने मन को प्रवेश करने से नहीं रोक रहा है।

ललित ने एक क्षण के लिये नीचे देखकर कहा—'आप अपनी जन्म-पत्री दे सकेंगे ?'

'मेरी जन्म-पत्री !' भुजवल ने आश्चर्य के साथ कहा—'मेरी जन्म-पत्री किसके लिये ?'

ललित ने मुस्कराकर कहा—'जब आपने मेरी जन्म-पत्री माँगी थी, तब मैंने तो आपसे इतने प्रश्न नहीं किये थे।'

भुजवल वोला—'मुझे क्या इनकार हो सकता है ?'

इतने में रतन एक थाली में कुछ कलेवा, कटोरे में दूध और एक ग्लास में पानी ललित के सामने रखकर भीतर चली गई।

भुजवल ने सोचा—'जैसा कंठ सुना था, वैसा ही रूप है।'

ललित ने कहा—'लीजिये, थोड़ा-सा जलपान कर लीजिये।' दोनों ने एक ही थाली में खाया।

ललित ने पूछा—'आप क्या आज शाम तक अपनी जन्म-पत्री दे सकेंगे ?'

भुजवल ने उत्तर दिया—'यहाँ तो नहीं लिये हूँ। कल तक घर से मँगवा ली जायगी !'

'आपके घर पर कौन हैं ?' ललित ने प्रश्न किया।

भुजवल ने कहा—'कोई नहीं है। नौकर होगा। नहीं तो मैं स्वयं आज चला जाऊँगा। परन्तु आपको भी अपनी जन्म-पत्री देनी पड़ेगी।'

ललित ने हँसकर कहा—'दे दूंगा। परन्तु आपकी जन्म-पत्री की मुझे अधिक आवश्यकता है। आपको नयागाँव पसन्द है ?'

भुजवल वोला—'बहुत। ऐसा सुन्दर रमणीक छोटा-सा साफ-सुन्दर नगर मुश्किल से कहीं मिलेगा।'

ललित ने कहा—'मैं अपनी वहिन के लिये आपकी जन्मपत्री चाहता हूं। अपनी जन्म-पत्री आपको दे दूंगा। परन्तु उससे मिल जाने पर भी अधिक आशा न रखियेगा। और, आपकी जन्म-पत्री चाहे कुछ कम भी मिले, आपका छावनी में निवास देखना वहुत पसन्द करूँगा।'

भुजवल को ऐसा जान पड़ा, मानो ललित की बैठक आँखों के सामने घूम रही हो। उसे अपने कानों पर विश्वास नहीं हो रहा था। क्या मांगने आया था, और क्या मिला ! यह सोचकर उसका सिर चक्कर खाने लगा। परन्तु कुछ क्षण बाद उसे मालूम हो गया कि स्वप्न नहीं देख रहा हूं।

ललित ने हँसकर कहा—'कल आपकी टीपना प्राप्त कर लेने पर मैं आपको अपनी जन्म-पत्री दूंगा। आप जल्दी मँगवा लीजिये।'

[१४]

भुजवल के चले जाने के बाद ही अजित आया। ललित ने कहा—'मुझे आशा है, अब मेरा बहुत-सा बोझ हलका हो जायगा।'

अजित न समझा। मुंह की ओर देखने लगा। ललित ने कहा—'आशा है, टीपना मिल जायगी।'

अजित को आश्चर्य हुआ। उसे विश्वास नहीं होता था कि जो आदमी विवाह करने के इतना विरुद्ध था, थोड़ी देर में वही उसके लिये इतना अधिक आतुर हो जायगा।

कठिनाई के साथ होठों पर मुस्कराहट को बुलाकर उसने कहा—'बहुत अच्छा है। जब आपकी यह इच्छा है, तब टीपना भी मिल ही जायगी।'

इस पर ललित जोर से हँसा। बोला—'मास्टर साहब, आपको कुछ भ्रम हुआ। मैं अपनी टीपना के विषय में नहीं कह रहा हूं।'

कुछ चिन्ता के साथ अजित ने पूछा—'तब आप किसके विषय में कह रहे हैं?'

'मैंने भुजबल की टीपना रतन के लिये मांगी है।' ललित ने स्थिरता के साथ उत्तर दिया—'हृष्ट-पुष्ट सुन्दर युवक है। हमारे ही घर में रहेगा भी। रतन को यह घर, जो जन्म से ही प्यारा है, छोड़ना न पड़ेगा।'

अजित के मन में कोई अज्ञात वेदना हुई। उसे प्रबल प्रयत्न से वहीं दबाकर उसने कहा—'आपने सब सोच-समझ तो लिया होगा?' और,

कुर्सी पर कसकर बैठ गया, जैसे उसे बलात् किसी के द्वारा घसीटे जाने का भय हो। ललित ने उत्तर दिया—'और क्या देखना है ? भुजबल सुपात्र जान पड़ता है। धनाढ्य वर की मुझे अटक नहीं है। मैं तो ऐसे ही वर की चिंता में था।'

अजित का मुख कुछ फीका हो गया था। बरबस मुस्कराने की चेष्टा की। बोला—'यदि टीपना नहीं मिली, तो ?'

ललित को कुछ कष्ट हुआ। उत्तर दिया—'न मिली तब देखा जायेगा। संसार में वरों की कमी थोड़े ही है।'

अजित जरा देर चुप रहा। संग्राम के लिये तत्पर सिपाही की तरह बोला—'आप तो टीपना-शास्त्र को नहीं मानते होंगे ?'

'ज्योतिष विज्ञान का अंग है, इसलिये मानता हूँ, परन्तु पूरा विश्वास नहीं है, क्योंकि इसका शास्त्र अभी तक अपूर्ण है।'

'एक ओर योग्यतम का अवशेष और दूसरी ओर टीपना-सरीखी निर्मूल व्यवस्था में विश्वास ! यह बात जरा अच्छी तरह समझ में नहीं आती।' अजित ने निस्संकोच होकर कहा।

ललित ने बुरा नहीं माना। बोला—'संसार में रहना है, इस कारण इस तरह की बहुत-सी बातों को मानना पड़ता है। टीपना द्वारा विवाह के स्थान में या उसके अभाव में स्वयंवर-प्रथा को भी सर्वथा निर्दोष नहीं कहा जा सकता।'

'परन्तु बहुधा देखा गया कि और सब बातों में वर-कन्या की सुपात्रता निर्णय हो जाने पर भी टीपना-सरीखी अंधी व्यवस्था ने विवाह न होने दिया, और किसी प्रकार का भी साम्य न होने पर भी टीपना ने बेमेल विवाह कराके सुन्दर कोमल, जीवन का नाश कर दिया।' अजित ने अनिरुद्ध भाव के साथ बहस को बढ़ाने के लिये कहा।

ललित ने मुस्कराकर उत्तर दिया - 'आपकी दलील से मेरे निश्चय को और भी पुष्टि मिलती है। टीपना मिलाने की साधारण रस्म का निर्वाह करके मैं आवश्यक कर्तव्य का पालन करूँगा।'

अजित खीझ उठा। उसने सोचा कि ललित जान-बूझकर उसके तर्क का उल्टा अर्थ लगा रहा है। बहस के लिये ज्यादा गुञ्जायश न देखकर अजित ने दृढ़ता के साथ अनुरोध किया—'आप जो कुछ करेंगे, अच्छा ही करेंगे, किन्तु इन महाशय का कुल, शील-चरित्र इत्यादि पहले अच्छी तरह से जांच लीजियेगा, तब कोई बात पक्की कीजियेगा, जिसमें पीछे पछताना न पड़े।'

ललित ने कुछ चौंककर पूछा—'क्या भुजबल संदिग्ध चरित्र का युवक है ?'

अजित ने कुछ सकपकाकर उत्तर दिया—'नहीं। यह मेरा तात्पर्य कदापि नहीं है। मैंने अभी तक कोई ऐसी बात उसमें नहीं देखी, वैसे बहुत अच्छा आदमी जान पड़ता है, परन्तु मेरी प्रार्थना है कि सम्बन्ध करने के पहले पूछ-ताछ कर लीजियेगा।'

इतने में रतन वहाँ पर आ गई। केशों में ताजे गुलाब गूँथे हुये थी।

मीठे स्वर से बोली—'मास्टर साहब, आज क्या पढ़ाइयेगा नहीं ?'

अजित के मुख का फीकापन चला गया। उत्साह के साथ बोला—'जरा भैया से बातचीत करने लगा था। अभी आरम्भ करता हूँ। चित्र बनाकर लेता आया हूँ। यह लो।'

जेब से निकालकर अजित ने ललित और रतन को चित्र दे दिये। चित्र अच्छे बने थे। रतन ने अपना चित्र बड़ी देर तक ध्यान के साथ देखा, और फिर यत्न के साथ रख लिया।

ललित हारमोनियम बजाने लगा, और अजित भीतर रतन को पढ़ाने के लिये चला गया।

पढ़ाया, पढ़ाया न गया। गाया, गाया न गया। तब रतन ने गाया। जैसे आधी रात के समय कोई व्याकुल कोकिला गाती हुई उड़कर लुप्त हो जाती है, और उसकी कूक आकाश में विलीन हो जाती है, उसी तरह

रतन की तान अजित के हृदय के एक निष्पंद विस्तृत कोने में हूक देकर समा गई। गायन समाप्त होने पर अजित ने अपनी जेब से एक चित्र निकाल कर कहा—'रतन अपना चित्र हमें दोगी ?'

रतन ने सरल भाव से उत्तर दिया—'ले लीजिये, फिर मैं क्या करूँगी ?'

'यह तुम ले लो। यह भी तुम्हारा चित्र है।' अजित ने कहा। इस समय उसका चेहरा बाल-रवि की तरह लाल हो गया था।

रतन ने अजित से वह चित्र लेकर अपने पास का चित्र उसे दे दिया। बोली—'ये दोनों एक-से ही हैं। मेरे पास वाले चित्र में क्या कोई विशेषता थी ?'

अजित के गले में कुछ अटक-सा गया था। बहुत चेष्टा करके धीरे से बोला—'हाँ, है। वह तुम्हारे हाथ का दिया हुआ है।' और, रोकने पर भी उसकी आँखें तरल हो गईं।

रतन ने देख लिया। बोली—'क्यों ?'

अजित ने चटपट आँसू पोंछकर कहा—'कुछ नहीं, यों ही। कहो तो, तुम्हारे और चित्र भी खींचूँ ? उस दिन तुमने केशों में गुलाब नहीं गूँथे थे। किसी दिन फूल-समेत तुम्हारी तस्वीर उतारना चाहता हूँ।'

रतन कुछ लजाई। हारमोनियम उठाकर धोंकने लगी।

अजित बोला—'तुमने कुछ उत्तर नहीं दिया रतन।'

'मैं क्या कहूँ।' रतन ने हारमोनियम को धौंकते-धौंकते कहा—'चाहे जितने चित्र उतार लीजिये।'

अजितकुमार चला गया।

[१५]

आदमी की ढूँढ़-खोज न करके भुजबल स्वयं लहचूरा चला गया। जन्म-पत्री तो जल्दी मिल गई, परन्तु वहाँ से नयागाँव छावनी आने में विलम्ब हो गया।

आने को ही था कि शिवलाल बैलगाड़ी की शिकरम में बैठा दो आदमियों को साथ लिये आ पहुंचा। उसका आना भुजबल को इतना बुरा कभी न लगा होगा।

शिवलाल ने आते ही कहा—'नालिश दायर हो गई है। रुपये का इन्तजाम किया या यों ही इतने दिन से छावंनी में पड़े हुये हो ?'

'इन्तजाम कर रहा हूँ।'

'नालिश की भी इतनी चिन्ता नहीं, जितनी मऊ के लिये जेवर बनवाने की फ़िक्र है। वायदा-खिलाफी होने से बात मिट्टी में मिल जायगी, और शराब वाले का बिल भी साल-भर का चुकाना है।'

'ललितकुमार ने तो इनकार ही कर दिया था। मऊ में कोई देता नहीं है। छावनी में ही साहूकार की खोज में लगा हुआ हूँ। आप मेरी यहां से शीघ्र छुट्टी कर दें, तो रुपया जुटाने में देर न लगेगी।'

'आज तो मैं आया ही हूँ। कल-परसों चले जाना। तब तक मैं यहां कुछ विश्राम कर लूँगा। मंगल के बाद थोड़ा-सा जंगल ही सही।'

भुजबल को स्वीकार करना पड़ा। जब तक भुजबल ने भोजन तैयार कराया, तब तक शिवलाल नरम-गरम बिछौने बिछवाकर लोट लगाने में मस्त हुआ।

भुजबल शिवलाल के साथ आये हुये दोनों आदमियों से बातचीत करने लगा।

एक का नाम बुद्धा और दूसरे का पैलू था। दोनों लहचूरा के रहने वाले कुर्मी थे। 'मालिक' के पास किसी मतलब से गये थे। फिर साथ लौट आये।

भुजबल ने कहा—'अभी तक तुम लोगों ने लगान नहीं दिया। मालूम होता है, तुम्हारी कमबख्ती आने वाली है।'

बुद्धा जवान था, परन्तु चेहरे पर झुर्रियों के कारण बुड्ढा-सा जान पड़ता था, और पैलू बुड्ढा था, सफेद दाढ़ी रक्खे था, परन्तु देखने में

जवान मालूम होता था। दोनों हाथ मलकर नीचे आंखें करके रह गये। कुछ उत्तर नहीं दिया।

भुजवल ने दूसरी ओर देखते हुये कहा—'तुम लोग ऐसे थोड़े ही मानोगे। जब सिर पर जूते बरसेंगे, तब होश ठिकाने आयगा।'

बुद्धा ने कहा—'काये पनैयां मार लियो। हमखां तुमाओ राज छांड़कें अंत कऊँ थोरक सो जानें।'

भुजवल बोला—'हाँ हमारी जमींदारी की ही छाती पर होला भूनते रहना। अगर दो दिन के भीतर लगान न दिया, तो खाल उड़ा दूंगा।'

पैलू ने कहा—'जियत रान दो भैया साव। जियत रैबा, तो अपुन की त्याई दैवो। खेती में तो आसों की साल कछू बरकोई नइयां। कांसें ल्यावें। काढ़-मूसकें अबै लौ पेट भरो, जब कछू नई रओ, तब मालकन नौं भगे गये।'

'अरे, मैं तुम दोनों बदमाशों को खूब समझता हूँ।' भुजवल ने लापरवाही के साथ कहा—'तुम लोगों ने जगह-जगह से रुपया उधार लेना शुरू कर दिया है। हमको छोड़कर अब दूसरी जगह जाने लगे हो। जहाँ से हाल में रुपया उधार लाये थे, वहीं से लगान का भी बंदोवस्त करो, नहीं तो जान ले लूंगा।'

पैलू बोला—'हमलौं तो अबे कछू नइयां, चाय प्रान भलेंई लै लो।'

यह चल-चख शिवलाल के कानों तक पहुंची। वह चारपाई छोड़कर भौंह चढ़ाये हुये आया।

'तुम दोनों ने क्या आफत मचा रक्खी है?' शिवलाल ने पूछा।

बुद्धा बोला—'मालक तुमांये पलाये तो पलत, नइंतर अब की बेरैं बचबे वारे नइयां। त्याई न दे पायें। हमें कछू खावे खां नाज और रुपैया मिल जाय।'

शिवलाल ने बड़े दंभ के साथ कहा—'जो कुछ कहना हो, किसी दूसरे समय हमारे मैनेजर साहब से कहना। उनसे मऊ में भी हमने

यही कह दिया था, अभी जाओ।' उठने की इच्छा न रखते हुये भी दोनों वहाँ से चले गये।

[१६]

शिवलाल को विदा करके और बुद्धा तथा पैलू को उनकी तकदीर के भरोसे छोड़ भुजवल नयागाँव छावनी तीसरे दिन आ गया। फासला दोनों स्थानों में लगभग चौवीस मील का है, इसलिये सवेरे गाड़ी लेकर शाम के वाद छावनी पहुंच पाया। तुरन्त ललित के मकान पर पहुंचा। वह किसी काम से वाहर चला गया था, इसलिये नौकर को जन्म-पत्री देकर कहता हुआ चला आया—'वावू साहव ने जिस जन्म-पत्री को मांगा था, कह देना कि वह यही है। सावधानी से उनको दे देना।' घर लौटकर पहुँचा, मऊ-सहानिया से आया हुआ एक नाई मिला। उससे मालूम हुआ कि पूना की माँ को जोर का वुखार आ गया है। उसने वुलाया था। यात्रा की थकावट के मारे वह उस रात को न गया। सवेरे पहुंचा।

दरवाजे पर पूना मिली। उसने रोकर कहा—'वाई वहुत वीमार हैं।'

भुजवल ने कहा—'घवराओो मत, अच्छी हो जायेंगी।'

पूना भीतर लिवा ले गई। घर वुहारा नहीं गया था। चूल्हे में राख पड़ी थी। पूना ने केवल घड़े भर रक्खे थे।

भुजवल ने देखा कि ज्वर तीव्र है। रोगिणी कराहकर वोली—'लाला, मेरा समय-सा आ रहा है। आशा तो नहीं थी कि छावनी में मिल जाओगे, पर मैंने नाई से कह दिया था कि लहचूरा जाने के पहले वहां देखते जाना। अच्छा किया, आ गये। पूना के लिये चित्त विह्वल हो रहा है।'

भुजवल ने कहा—'छावनी के ललितसेन का नाम तुमने सुना होगा। बड़े आदमी हैं। उनकी टीपना मांगी है।'

ज्वर से देह दहक रही थी, परन्तु रोगिणी को इस समाचार से शान्ति-सी मिली। पूछा—'उन्होंने टीपना देने का वचन दिया है? सुना है कि वह व्याह नहीं करना चाहते।'

भुजवल को सुनकर आश्चर्य हुआ। उसके अनुभव में अभी तक यह वात नहीं आई थी कि स्त्रियां पुरुषों से पहले संसार की विचित्र घटनाओं का समाचार कैसे प्राप्त कर लेती हैं।

उसने कहा—'टीपना मिलने पर देखा जायगा। एक वर और मेरी निगाह में है।'

'वह कौन?' पूना की मां ने उत्सुकता से पूछा।

भुजवल ने उत्तर दिया—'अजितकुमार। वह वावू, जो अभी थोड़े ही दिन हुये, मेरे साथ यहां सैर करने आये थे। वहुत पढ़े-लिखे, अच्छे घराने के हैं।'

पूना एक कोने में सिमिटकर वैठी हुई चावल छांट रही थी। उसने सिर नहीं उठाया।

उसकी मां ने कहा—'ललितसेन के साथ सम्वन्ध हो जाय, तो वड़ा अच्छा होगा। हम दरिद्र भले सही, परन्तु हमारी पूना उनके घर में उजाला कर देगी। उनका कुल भी हम से ऊँचा है। जिन वावू को तुम यहां लिवा लाये थे, उनका कुल हम से वहुत छोटा है, और मासिक आय भी उनकी वहुत साधारण है। तुमने वतलाया था।'

भुजवल ने कहा—'तुम चिन्ता मत करो। मैं वहुत शीघ्र उचित प्रवन्ध करूंगा, पर इस समय तो तुम्हारी चिन्ता है। अपने साथ दवा लेता आया हूं। अस्पताल की नहीं, एक ब्राह्मण वैद्य की वनाई हुई है। मैं गङ्गाजी की सौगन्ध खाता हूं।'

रोगिणी ने कहा—'मैं दवा न खाऊंगी।'

पूना चावल की थाली एक ओर रखकर वोली—'वाई, तुमको दवा खानी पड़ेगी, नहीं तो मैं खाना-पीना छोड़ दूंगी।'

माँ बोली—'इसके मारे बड़ी आफत है। कल से कुछ नहीं खाया। रात-रात-भर मेरे पास बैठी रोया करती है। अच्छा बेटी, दवा खाऊँगी। अब तो तू भोजन करेगी? जा, अपने जीजा के लिये खाना बना ले।' पूना माँ को दवा खिलाकर उत्साह के साथ काम में लग गई। भोजन के उपरांत भुजबल अपनी सास की चारपाई के पास एक कम्बल बिछाकर बैठ गया। बोला—'दवा ने असर किया है। पूना के ब्याह तक तुम्हें संसार से विदा नहीं मिल सकती।'

इतने में पूना भी आ गई।

माँ ने बेटी से कहा—'पूना, आज से तुम नित्य तुलसी जी की पूजा किया करो, और संध्या-समय पीपल के नीचे दिया धर आया करो।'

[१७]

भुजबल की जन्म-कुण्डली को रतन की कुण्डली से ज्योतिषी ने चौकस मिला हुआ बतलाया। उसने ललित की भी कुण्डली ले ली थी। उसका भी मेल पूना की कुण्डली से खा गया। परन्तु ललित ने संबंध करने से इनकार कर दिया, और भुजबल ने एक बार नाहीं पाने के बाद फिर कोई जोर नहीं दिया। ललित के इनकार करने की बात पूना की मां को अच्छे हो जाने पर मालूम हुई, परन्तु उसको आशा थी, इसलिये मन-ही-मन निश्चय कर लिया कि ललित के साथ एक-न-एक दिन सगाई हो जायगी। उसे विश्वास था कि एक दिन पूना का सौंदर्य ललित के हठ पर विजय प्राप्त कर लेगा। वह पूना से कभी-कभी कहा करती थी कि तू बहुत बड़े घर की वधू होगी, परन्तु न-मालूम उसे यह बात क्यों अच्छी न लगती थी। फिर भी मां के अनुरोध से वह तुलसीजी की पूजा किया करती और पीपल के नीचे संध्या-समय दीपक रख आया करती थी।

पूना की माँ को भुजबल ने जो वचन दिया, उसको वह भूल-सा गया था। रतन की कुण्डली से अपनी कुण्डली का मिलान हो जाने के

वाद एक दिन वह ललित के पास गया। शिवलाल के लिये ऋण की चर्चा छेड़ी।

ललित ने कहा – 'मैं शिवलाल को ऋण न दूंगा। ऐसे निकम्मे आदमी की सहायता करना संसार का कष्ट वढ़ाना है।'

'ऐसी हालत में वह सारी जमींदारी नीलाम पर चढ़ जायगी।'

'तव किसी अच्छे योग्य व्यक्ति के हाथ में पहुंचकर उन्नति करेगी।'

'परन्तु मैं उन्हें वचन दे आया था कि कहीं-न-कहीं से रुपया जुटा दूंगा।'

'अव उनसे कह दीजिये कि रुपया जुटाया नहीं जा सकता।'

'वड़ी किरकिरी होगी।'

'उसका कोई प्रतिकार नहीं।'

'आप अपने यहां रहन रख लीजिये। वह रुपया दें, तो पायेंगे, नहीं तो उसी रुपये और उसके व्याज में अच्छी जायदाद आपके यहाँ रह जायगी।'

'शिवलाल को रुपया देने की वात अव और आगे न कीजियेगा।'

यह अंतिम उत्तर सुनकर भुजवल सन्न रह गया। परन्तु मुस्कराहट उसके चेहरे पर यों ही आ जाया करती थी, और आशा मन का स्वाभाविक व्यापार थी। उसने सोचा कि व्याह शीघ्र ही हो जायगा। इसके वाद चर्चा अधिक सहज और सुलभ होगी, तव तक के लिये उस विषय को स्थगित कर दिया।

(१८)

रतन के विवाह का मुहूर्त पक्का हो गया, और पठन-पाठन शिथिल, परन्तु अजितकुमार नियम-पूर्वक घर पर आता रहा। शायद यह समझ-कर कि रतन गृहस्थी में प्रवेश करेगी, अजित का मन पढ़ाने में कम लगने लगा। रतन भी जी लगाकर न पढ़ती थी।

एक दिन न-मालूम किस प्रेरणा के वशीभूत होकर अजित ने रतन से कहा—'मैं तुम्हारा एक फोटो और उतारना चाहता हूँ।'

रतन ने दूसरी ओर देखते हुये कहा—'उतार लीजियेगा।'

'व्याह के बाद तो तुम पढ़ोगी नहीं रतन?' अजित ने कुछ उत्कण्ठा के साथ पूछा।

रतन अपनी धोती के छोर में निकले हुये धागों को सावधानी के साथ गिनने लगी।

अजित ने फिर पूछा—'यदि व्याह के बाद भी पढ़ती रहीं, तो मैं कभी पढ़ाने में कसर नहीं लगाऊँगा।'

रतन ने धीरे से कहा—'सो तो मैं जानती हूँ।'

'रतन, रतन!' अजित ने रुँधे हुये गले से कहा।

कुछ चकित होकर रतन ने अजित के मुंह की ओर देखा। बोली—'क्या है?'

अजित ने कम्पित कण्ठ से कहा—'कुछ नहीं।'

फिर एक क्षण के बाद बोला—'मैं तुम्हारा एक चित्र और खींचना चाहता हूँ।'

रतन ने भोलेपन के साथ उत्तर दिया—'मैं तो पहले ही कह चुकी हूँ कि खींच लीजिये।'

अजित ने गला साफ करके कहा—'परन्तु केशों में गुलाव के फूल गूँथे हुये हों, और मुंह पर मुस्कराहट हो।'

रतन जो बात कुछ-कुछ पहले से जानती थी, अब अच्छी तरह समझ गई। बोली—'फोटो न खिचवाऊँगी।' और रोने लगी।

इतने में ललितसेन यकायक आ गया।

रुखाई के साथ बोला—'यह सब क्या है मास्टर साहब?'

अजित को जैसे काठ मार गया हो। एक क्षण कुछ उत्तर न दे सका, परन्तु झूठ बोलने का अभ्यास न था, इसलिये साफ बोला—'चित्र खींचने के लिये कहा था।'

रतन वहां से उठकर चली गई। ललितसेन अजित को अपनी बैठक में लेकर चला गया।

कड़ाई के साथ उसने कहा—'तुम बड़े नीच मालूम होते हो।'

अजित का सब संकोच तिरोहित हो गया। समान कड़ाई के साथ बोला—'क्यों?' और आंख से आग बरसने लगी।

ललित और उत्तेजित होकर बोला—'यह ढिठाई! उस लड़की के चित्र खींचने वाले तुम कौन हो? तुमको क्या जरूरत?'

अजित का हृदय मुक्त हो चुका था। बोला—'वह चित्र मेरे लिये चिरकाल की शांतिदायक वस्तु होगी।'

'मूर्ख, नराधम।' ललित ने कड़ककर कहा—'तू कौन होता है?'

अजित ने दृढ़ता के साथ उत्तर दिया—'उस देवी का भक्त?'

'निकल जा यहां से। खबरदार, जो यहां कभी आया, या कभी हमारे मार्ग में आया।'

अजित की देह पत्थर की तरह जड़ हो गई, परन्तु प्रयत्न करके वह उठ आया।

ललित बहुत उद्विग्न होकर कमरे में टहलने लगा। वह उस घड़ी को कोस रहा था, जब अजित को अध्यापन के लिये नियुक्त किया था। एक युवक को वयस्क प्राप्त लड़की को पढ़ाने के लिये नियुक्त करने के कारण उसने अपने को भी मन में गालियां दीं।

ऐसे समय में मनुष्य एकान्त में रहकर अपना कष्ट भोगना चाहता है, परन्तु शायद ही कोई ऐसा भाग्यशाली संसार में हो, जो कष्ट की घड़ी में खिझाने वालों से बच सका हो।

भुजबल मुस्कराता हुआ आया। उसने समझ लिया कि कुसमय है। बैठा नहीं। खड़े-खड़े पूछा—'मैं केवल इतना जानने के लिये आया हूँ कि मुहूर्त अगले पखवारे का ही रहेगा, या और आगे हटाया जा सकेगा?'

'क्यों?'

'मुझे भी कुछ रुपये-पैसे का प्रबन्ध करना पड़ेगा।'

'आगे मुहूर्त न बढ़ेगा। जो कुछ रुपया-पैसा चाहिये हो, मैं दूंगा।'

भुजबल चला गया।

[१९]

उसी शाम को भुजबल अजित के घर पहुंचा। वह कहीं घूमने के लिये निकल गया था। भुजबल को उस दिन अजित के इन्तजार में बहुत देर बैठना पड़ा। अजित बहुत गई रात लौटा। बहुत थका हुआ मालूम पड़ता था। चाहता था कि किसी से कोई बात न करके बिस्तरे में जा पड़े। परन्तु जो भुजबल उसके लिये इतनी देर से बैठा था, वह वहां से सहज ही थोड़े जाने वाला था।

भुजबल का भाव आज उतना नम्र न था, जितना पहले दिनों में रहा करता था, परन्तु इस पर अजित ने कोई ध्यान नहीं दिया।

भुजबल ने कहा—'मास्टर साहब, हम एक काम के लिये बड़ी देर से बैठे हुये हैं। आश्चर्य कर रहे थे कि कहां लापता हैं।'

'कहिये, क्या है? मेरे सामर्थ्य का काम होगा, तो करने की चेष्टा करूंगा।'

'शिवलाल जी का नाम मैंने पहले भी आपके आगे लिया है। वह अपनी जाति के एक बड़े जमींदार हैं। आजकल बेचारे बड़े अर्थ-संकट में हैं। जरा खर्चीले ज्यादा हैं, इसलिये सिर पर बहुत ऋण हो गया है। साहूकार उनकी जमींदारी पर नियत लगाये हुये हैं। मैं चाहता हूं कि वह बच जाय, नीलाम न हो। आप इस परोपकार में मेरी सहायता कर दीजिये।'

'मेरे पास तो कानी कौड़ी भी नहीं है।'

'कुछ हर्ज नहीं, आपके पास जो कुछ है, उससे मेरी मदद कर दीजिये।'

'वह क्या?'

'आप वाबू ललितसेन से कह कर रुपया दिलवा दीजिये। वह आपको बहुत मानते हैं। आपके कहने से रुपया दे देंगे। हम आपको दलाली देंगे—एक खासी रकम।'

अजित के सिर पर वज्र-सा टूट। चेहरा लज्जा के मारे लाल हो गया, और माथे पर पसीने की बूंद आ गई। बोला—'वह मेरा कहना न मानेंगे। बहुत जिद्दी हैं। दलाली का प्रसंग फिजूल है।' अजित का गला भरा गया।

भुजवल ने अनिरुद्ध भाव के साथ कहा—'आपका हाल हनुमान सरीखा है। जब तक कोई उलाहना देकर न जागाता था, तब तक वह अपने अतुल पराक्रम को अनुभव ही न करते थे।' और हँसने लगा। दलाली की बात नहीं कही।

उसकी हँसी अजित के कलेजे में बर्छी-सी धँस गई। जो कहना चाहता था, वह मुंह से न निकला। घिग्घी-सी बँध गई।

भुजवल ने फिर कहा—'एक जरा-सी बात के लिये आप हामीं नहीं भर सकते। अफसोस! इसमें आपको कुछ श्रम भी तो न पड़ेगा।'

कलेजा कड़ा करके अजित ने कहा—'मैं आज ही उनकी नौकरी छोड़कर आया हूँ। इसलिये असमर्थ हूँ।'

'क्यों?' भुजवल ने आश्चर्य के साथ पूछा।

अजित क्षुब्ध हो गया। बोला—'इससे आगे पूछने की आपको कोई आवश्यकता नहीं।'

एक दरिद्र आदमी में इतना अहंकार देखकर ललित के भावी बहनोई ने कहा—'ओह हो! ओह हो! यह बात!' और वहां से चला गया।

(२०)

भुजवल की सगाई रतन के साथ हो गई, यह बात अनेक बिरादरी वालों को न केवल छावनी में, बल्कि आस-पास के गांवों में भी मालूम हो गई। भुजवल ने छावनी का रहना कम कर दिया। विवाह शीघ्र

होने वाला था, तो भी कभी-कभी थोड़ी देर के लिये हो जाता था, और प्रायः अजितकुमार से मिल लेता था। गायन-वादन तो होता था, परन्तु इधर-उधर की बातें हो जाती थीं। भुजबल अपनी बारात में कम-से-कम दो-एक अच्छे पढ़े-लिखे आदमी ले जाने का इच्छुक था।

कुछ थोड़े और तड़क-भड़क का सामान मऊ-सहानिया के रईस से बरात के लिये मांग लेने के लिये एक दिन वहां गया। ससुराल पहुँचा। साली और सास दोनों मिलीं। पूना प्रसन्न मालूम पड़ती थी, और उसकी मां उदास।

मां ने भुजबल से कहा—'मैं नहीं जानती थी कि ऐसे चुपचाप विवाह कर लोगे। हम लोगों को तो भूल ही गये!'

भुजबल निरुत्तर-सा हुआ, परन्तु प्रयास करके बोला—'क्या करूँ, बड़ी आफत आई है। सच मानो, झूठ नहीं कहता। बहुत टाला, परन्तु ललितसेन गले पड़ गये। जबरदस्ती जन्म-पत्री ले ली। इत्तिफाक से मिल भी गई। सगाई-सम्बन्ध का हठ किया। लोगों से जोर डलवाये। तब क्या करता? मन्जूर करना पड़ा। बेबस हो गया।'

पूना की मां ने लम्बा घूँघट खींचकर कहा—'पूना के लिये टीपना मांगी ही काहे को होगी। अपनी चिन्ता में दूसरे की थोड़े ही कुछ सुहाती है।'

भुजबल ने विश्वास दिलाते हुये कहा—'मैंने मांगी, हठ किया, परन्तु उन्होंने बिलकुल नाहीं कर दी। जब वह अपनी बहिन के ब्याहने के स्वार्थ में लिपट रहे थे, तब हमारी साली के साथ सम्बन्ध कैसे कर सकते थे!' भुजबल के स्वर में सच्चाई की खनक थी, परन्तु पूना की मां को बिलकुल विश्वास नहीं हुआ। बोली—'पुरुषों की माया को भगवान ही जाने, हम अबोध स्त्रियां तो समझने में असमर्थ हैं। अब यह बताओ कि पूना के लिये क्या करूँ? मेरी तबियत फिर खराब रहने लगी है, अब जीने की बिलकुल इच्छा नहीं है। तुम तो ब्याह करके फिर

यहां कभी आने का नाम न लोगे। मेरे मायके में जो भाई-बंद हैं, वे हम लोगों की जीवितों में गिनती नहीं करते। पूना का क्या होगा?'

वह घूंघट के भीतर आंसू बहाने और पोंछने लगी।

भुजबल ने कहा—'एक वर मेरी निगाह में है। वह मास्टर, जो उस दिन मेरे साथ आये थे···' पूना की मां ने बात रोककर कहा—'पूना चाहे क्वांरी ही रह जाय, पर उस गवैये-नचैये के साथ उसकी सगाई न करूंगी। और कोई योग्य वर जाति में नहीं है?'

भुजबल जरा कुढ़ गया। बोला—'होंगे, और मिल भी जायेंगे, पर, न-मालूम कितना समय ढूंढ़-खोज में लगाना पड़ेगा। मास्टर की भी जन्म-कुण्डली ले लूंगा, तुम नाहक हठ करती हो।'

इसके बाद बारात के सामान की फिक्र में भुजबल चला गया। मां ने बेटी को बुलाया। वह एक ओर छिपी हुई कान लगाकर बात सुन रही थी। पुकार सुनकर भी जरा ठहरकर आई।

मां ने उससे कहा—'मैं जल्दी भगवान की शरण में जाऊंगी। तुम्हारा क्या होगा?' पूना ने लापरवाही के साथ उत्तर दिया—'मैं भी तुलसी जी की शरण में चली जाऊंगी। इसीलिये मैं उनकी पूजा किया करती हूं।'

मां ने हाय लेकर कहा—'पूजा का कुछ फल नहीं हुआ, मुझे आशा थी कि ऐसा अच्छा घर मिल जायगा। भाग्य फूट गये।'

पूना हंसकर बोली—'बहुत अच्छा हुआ।'

'अच्छा हुआ, क्यों री मूर्ख।' मां ने उत्तेजित कंठ से कहा—'किसी हलवाहे के साथ व्याह होगा, तब अच्छा होगा?'

पूना झाड़ू लेकर स्थान बुहारने लगी। उसकी मां ने कहा—'एक बात की मुझे चिंता है। मेरे मरने के पीछे तेरे जीजा कहीं उस मास्टर से संबंध न कर दें।'

पूना ने कोई उत्तर नहीं दिया। दूसरी ओर मुंह करके झाड़ू देने लगी।

उसकी मां ने कहा—'पूना, तुलसी की पूजा छोड़कर देवी जी को जल चढ़ाया कर। मैं चाहती हूँ कि मरने से पहले तुझे सुखी देख लूं।'

पूना ने झाड़ू रख दी। सीधी खड़ी हो गई। गर्दन जरा तिरछी करके बोली—'मैं तुलसी की पूजा नहीं छोड़ूंगी। तुम मुझसे कुछ मत कहो।'

घर में बहुत दिनों से केवल मां-बेटी ही थीं, इसलिये परस्पर संकोच कुछ कम हो गया था।

[२१]

यथासमय शान-शौकत के साथ भुजबल की बारात आई। आदमी कम थे, परन्तु तड़क-भड़क बहुत ज्यादा थी। भुजबल ने अजितकुमार को बारात में शरीक करने की बहुत कोशिश की, परन्तु अजित बारात में न गया, बीमार हो गया था। बारात में शिवलाल आया, और उसके अनेक बंदीजन भी।

विवाह के समय वधू की विदाई नहीं होती, परन्तु वर-वधू के पूरी आयु के होने की दशा में उक्त नियम का व्यतिक्रम कर दिया जाता है।

ललितसेन १०-१२ दिन बाद स्वयं लहचूरा जाकर रतन को लिवा लाया।। घर में जब तक थी, तब तक खिले हुये फूल की ओस की तरह प्रफुल्ल और सप्रभ मालूम होती थी, परन्तु जिस तरह कड़ी धूप में दलदार फूल भी कुम्हला जाता है, उसी तरह लहचूरा के १०-१२ दिन के निवास ने रतन को अस्वस्थ कर दिया। ललितसेन ने यह अंतर्लक्ष्य कर लिया, और उसने दृढ़ प्रतिज्ञा की कि अब भुजबल को छावनी में ही रक्खूंगा, और रतन को घर पर। रतन ने जो अनुभव किया, वह प्रेम नहीं था, आंधी थी। उसको भुजबल और लहचूरा भय के पर्याय जान पड़ने लगे।

नयागांव छावनी में बँधकर रहने के पहले भुजबल को शिवलाल की जमींदारी और उसके ऋण का प्रबन्ध करने की चिन्ता हुई।

उसके और ललितसेन के परस्पर व्यवहार में दूरी कम रह गई थी। बहनोई आयु और पद में छोटा होने पर भी समाज की रीति के अनुसार बड़ा होता है। भुजबल को भी इस बड़प्पन का अनुभव हुआ।

एक दिन उसने ललितसेन को फिर शिवलाल की सहायता के लिये दबाया। ललित के मन पर भुजबल के सद्यः सम्बन्ध का कोई आतंक न बैठा था। इसलिये उसने स्पष्ट इनकार कर दिया।

ललित ने कहा—'सहायता तो उस निकम्मे बेवकूफ को एक कौड़ी की भी न दूंगा। बारात में कैसे सजधज करके आया था! रंडियों के गाने और शराब के समुद्र में डूबे रहने वाले व्यक्ति की सहायता करना नीति के सम्पूर्ण नियमों से वर्जित है। तुमसे अनुरोध है कि उसकी जायदाद के प्रबन्ध की आफत अपने सिर से उतारकर फेंक दो। मेरी जायदाद और लेन-देन का काम सँभालो। तुम्हें और कुछ करने की जरूरत नहीं है।'

यह सलाह भुजबल को भी नापसन्द न होती, परन्तु बहनोई का साले के घर पड़े-पड़े रोटी तोड़ना बड़ी कीर्ति की बात नहीं समझी जाती, इसलिये भुजबल स्वतन्त्र आय या संपत्ति का अधिकार बनने की कामना रखता था। बोला—'आप जो कुछ कहते हैं, वह ठीक है, परन्तु शिवलाल को बीच में ही छोड़ देना ठीक नहीं जान पड़ता। और फिर आपके लेन-देन और जायदाद के प्रबन्ध में बहुत समय व्यय नहीं हो सकता। हाथ-पैर वाले व्यक्ति को कुछ काम और चाहिये।'

ललित ने कहा—'लेन-देन की अवस्था अब बुरी हो चली है। आसामी ठीक समय पर रुपया नहीं देते, और बाज-बाज इधर-उधर रियासतों में भाग जाते हैं, जिसकी वसूली में बड़ी कठिनाई पड़ती है। यदि और जायदाद मिल जाय, तो लेन-देन से रुपया निकालकर उसी में डाल दूं, और बहुत कुछ बेखटके हो जाऊं।'

'किस तरह की जायदाद?' भुजबल ने पूछा।

'मकानी जायदाद छावनी में बँगले, मकान इत्यादि।' ललित ने उत्तर दिया।

भुजबल कुछ सोचकर बोला—'यदि किसी दिन यहां की अधिकांश पल्टनें किसी दूसरी जगह भेज दी जायें, और छावनी तोड़ दी जाय, तब यहाँ की मकानी जायदाद की क्या बिसात रहेगी ?'

ललित को यह संकेत खटका। बोला—'अभी तो इस तरह की कोई सम्भावना नहीं मालूम पड़ती।'

भुजबल को आभास हो गया कि इस बार तर्क की विजय उसके हाथ रहेगी। दृढ़ता के साथ बोला—'यह कदापि नहीं कहा जा सकता। कभी कोई जिला तोड़ दिया जाता है, कभी कोई छावनी कहीं से हटाकर कहीं और कर दी जाती है। मैं तो मकानी जायदाद को बिलकुल निर्बल पूँजी समझता हूँ।'

ललित हार गया। धीरे से बोला—'तब क्या किया जाय ?'

भुजबल ने तुरन्त उत्तर दिया—'जमींदारी जायदाद खरीदिये। अच्छा प्रबन्ध हो, फिर कभी खटका नहीं।'

ललित ने कुछ क्षण बाद उत्तर दिया—'सस्ते दामों अच्छी जमींदारी पास में कहीं मिल जाय, तो खरीद ली जाय।'

भुजबल ने कहा—'ये सब शर्तें मौजूद हैं। आपके कहने-भर की देर है।'

ललित ने चकित होकर पूछा—'किसकी ?'

'शिवलाल की।' भुजबल ने उत्तर दिया—'वैसे तो वह बेचने को तैयार नहीं है। ऋण का पहाड़ बढ़ता चला जाता है, परन्तु जमींदारी का कुछ भाग बेचकर उसको काटने के लिये जी नहीं करता। रहन धरने और जायदाद डुबोने को भले ही भुगत ले, परन्तु बेचने से इनकार करता है। आप रहन रक्खेंगे ?'

'नहीं, कदापि नहीं। रहन के झगड़े में नहीं अटकना चाहता हूँ।' ललित ने कहा।

भुजबल अपना माथा टटोल कर बोला—'तब मैं उसे किसी

तरह विक्री करने पर आरुढ़ करूँगा। निर्वल के नाश में तो आपका विश्वास ही है।'

'अवश्य।' ललित ने कहा, और मन नें इस विचित्र प्रसङ्ग पर शंका करने लगा।

भुजवल—'शिवलाल को जो आदतें पड़ी हुई हैं, उससे यह असम्भव मालूम होता है कि वह कभी सुधरे। ऋण वढ़ता चला जायगा, और एक-न-एक दिन उन दुर्व्यसनों के वदले में जायदाद नीलाम हो जायगी। निर्वल मनुष्य के नाश में सहायक होना तो आपकी नीति के अनुकूल है?'

ललित—'हाँ, इसमें कोई आक्षेप नहीं। उस क्रिया में सहायक होना, मानो प्रकृति की मदद करना है। कानून की मर्यादा भंग न हो, केवल इतना ही चाहता हूँ।'

भुजवल—'अर्थात् जालसाजी, धोखा इत्यादि न हो, सो आप निश्चिन्त रहिये।'

ललित—'निर्वल आदमी को निर्वल कहकर उसका नाश उसे सावधान करके करना यह मैं न्याय-संगत मानता हूँ।'

भुजवल ने हँसकर कहा—'अर्थात् एक नोटिस इस विपय का शिवलाल को देना चाहिये! यह तो नहीं, परन्तु मैं इसी तरह का कुछ और उपाय करूँगा।' भुजवल की इस वात के भीतर इतना आत्म-विश्वास भान हुआ कि ललित के हृदय में उसकी एकाग्रता के लिये एक आश्चर्य की गूँज उठी।

[२२]

अजितकुमार रतन के विवाह के वाद से नीरोग हो गया। छावनी में और कोई नौकरी अव तक नहीं मिली थी। एक ट्यूशन और मिल गई, परन्तु काम में जी नहीं लगता था, घूमने-टहलने में वहुत। वाहर से १००) मासिक वेतन का एक दिन वुलावा आया, परन्तु न-मालूम उसने क्यों इस अच्छे वेतन वाली जगह को मंजूर करने से इनकार कर दिया।

सदा कुछ चिंता में घुटता हुआ सा दिखाई पड़ता था। कुछ थोड़े से लोगों से साधारण जान-पहचान हो गई थी। वे लोग उस साधारण परिचय को मित्रता में परिणत करना चाहते थे, परन्तु अजित ने उनमें से किसी को भी प्रोत्साहन न दिया। एकांतसेवन उसे अधिक अच्छा लगने लगा, और पहाड़ियों तथा निराले स्थानों में बैठे-बैठे मनन करना। समय तथा दूरी उसे कष्ट नहीं पहुंचाती थी।

मानसिक व्यथा की अवस्था में वे स्थान और समय अधिक स्मरण हुये, जब और जहां मन को कोई विशेष आनन्द प्राप्त हुआ था।

जब वह सबसे पहले मऊ-सहानिया गया था, मार्ग में पहाड़ी के नीचे बच्छे को दूध पिलाती हुई गाय उसने तेंदुए के डर से नयेगांव बस्ती की ओर भगा दी थी, और तांगे में से उतरकर कुछ परिश्रम करने में उसे सुख मिला था। उस स्थान की याद आने पर फिर सहानिया जाने और महलों के पीछे वाली झील की लहरों को परखने की इच्छा मन में उठी। किसी अल्हड़ लड़की ने उसको रासधारी या गवैया कहा था, और इस पर उसके कुछ रिस भी उठी थी, परन्तु इस समय उस बालिका के बचाव का ध्यान उतना न आया, जितना उसके अल्हड़पने और भोली-भाली सूरत का। सहानिया जाने की इच्छा में कोई कल्पना बाधक न हुई।

एक बार देखे हुये स्थानों को दुबारा बारीकी के साथ देखता हुआ चला गया, और संध्या से बहुत पहले महल के पीछे पहुंच गया। पहाड़ी के नीचे एक स्थान पर जा बैठा, जो झील से सटा हुआ और बिलकुल एकांत था।

वैसी ही लहरें। उसी तरह की आंदोलित प्रकाश-रेखायें। नीलिमा और तरंगें। पहाड़ियों की गोद में निर्भय नाचने वाली जल-राशि। प्रमुदित तरलता। स्वरमय एकांतता। ढका हुआ सौंदर्य और बंधी हुई उन्मुक्तता। झील पहाड़ों के घर में चंचल-सी जान पड़ती थी, परन्तु बाहर से केवल उसका अनुमान ही किया जा सकता था।

अजित ने अपनी जेब में से एक सुरक्षित चित्र निकाला, रतन का था। जैसे विकसित पुष्प।

अजित ने मन में कहा—'अधिष्ठात्री देवी है, और मैं पुजारी। पुजारी का देवी से व्यापक न होने की प्रार्थना करना अज्ञान है। देवी किसी मन्दिर में स्थापित हो, परन्तु पुजारी को उसका ध्यान करने-भर का अधिकार है। मूर्ति के दर्शन कभी हों या न हों, इससे क्या ? मैं मूर्ति के कभी दर्शन करूंगा कभी नहीं। चित्र ही यथेष्ट है। यह भी न हो, तो क्या ? मेरे हृदय मन्दिर में जो चित्र है, वह अक्षय है। इस चित्र को तो मैं अभी इसी जलराशि में रख सकता हूँ।' परन्तु थोडी देर वहां बैठने के बाद भी उस चित्र को अजित ने जलराशि के हवाले नहीं किया, प्रत्युत जेब में फिर लौटा दिया। संध्या होने में अभी विलम्ब था, परन्तु दूर जाना था, इसलिये इच्छा न होने पर भी अजितकुमार उस स्थान को छोड़कर छावनी की ओर चल पड़ा।

जब वह भुजबल की ससुराल के सामने से होकर निकला, उसे एक अल्हड़, ढीठ लड़की का ख्याल हो आया। सामने से पूना उज्ज्वल पीतल का पानी भरा घड़ा सिर पर धरे कुएँ से आ रही थी। ढलते हुये सूर्य की सुवर्ण किरणें झलकते हुये पीतल के घड़े पर रिपट रही थीं। पूना की बड़ी-बड़ी भोली-भाली आँख किरणों द्वारा और भी अधिक प्रभामय हो रही थीं। दूर से अजित ने उसे नहीं पहिचाना। सिर पर पीतल का घड़ा रक्खे हुये बालिका प्राकृतिक सौंदर्य का एक कौतुक है, परन्तु परिचितों को उसमें कोई विलक्षण विशेषता भासित नहीं होती, इसलिये अजित ने अधिक ध्यान नहीं दिया। पूना ने अजित को दूर से ही पहिचान लिया। एक हाथ से घड़ा पकड़े रही, और दूसरे से वस्त्र सँभाल लिया। बीच का मार्ग छोड़कर एक किनारे खड़ी हो गई। पीठ फेर ली, परन्तु इतनी ही कि अजित को देख सके।

यह विचित्र व्यापार देखकर अजित का ध्यान आकर्षित हुआ। पहिचान लिया। सोचा—'भुजबल इसका बहनोई है। मैं उसके मित्र की

हैसियत से आया था, इसलिये लाज कर रही है।' उसकी पूर्व धृष्टता पर मुस्कराकर बोला—'मैं रासधारी नहीं हूँ। देखा, बाजा-वाजा कुछ भी नहीं लाया हूँ।'

वहां उस समय कोई न था, परन्तु पूना ने कोई उत्तर नहीं दिया। अजित चला गया।

[२३]

भुजबल शिवलाल के पास मऊ गया। मऊ में उसका एक बड़ा मकान था। देहात में जहां उसकी जमींदारी थी, वहां भी मकान थे, परन्तु वह रहता अधिकतर मऊ ही में था।

मऊ छोटा-सा खूबसूरत शहर है। व्यापार की मण्डी है। अधिकांश लोगों को अपने धन्धे से और कामों के लिये फुरसत नहीं मिलती। सवेरे सुखनई नदी में, जिसके ठीक किनारे पर शहर बसा हुआ है, नहा-धोकर लोग अपने-अपने काम में जुट जाते हैं। जब इस चौड़ी नदी में बिलकुल पानी नहीं रहता, तब गड्ढे खोदकर काम चलाते हैं। परन्तु शिवलाल उन लोगों में से था, जो नदी में नहाने-धोने के लिये नहीं जाया करते।

भुजबल जैसे ही उसके पास पहुंचा, शिवलाल ने कहा—'नई शादी के नशे में कौन किसको पूछता है? बहुत दिनों में खबर ली!'

भुजबल—'आपकी आज्ञा से तो सब काम किया। अब ऐसा उल्टा उलहना देते हैं।'

शिवलाल—'अरे भाई, नई बहू सब को बिसरा देती है। कहो, प्रसन्न तो हो?'

भुजबल—'आपकी दया से। आप?'

शिवलाल—'मेरी दया से क्यों प्रसन्न होने चले? पहले अपनी बहू का कुछ हाल सुनाओ। टालने न दूंगा। कसम जवानी की। बोलो, रङ्ग-रूप कैसा है?'

भुजबल ने जरा झेंपते हुये उत्तर दिया—'अच्छा है। खूब पढ़ी-लिखी है। गायन-वादन में भी कुशल है।'

शिवलाल ने मूछें चवाते हुये कहा—'क्या जानें भाई ! कभी सुनूं, तो मालूम हो। सुना है, उन लोगों में पर्दा तो होता नहीं।'

भुजवल न मालूम क्यों हिल उठा। एक क्षण वाद वोला—'पर्दा तो नहीं होता है, परन्तु ललितसेन के यहां आपने और मैंने एक वार गायन तो सुन लिया था।'

शिवलाल—'तो भी क्या हुआ ? एक वार पानी पी लेने से फिर क्या प्यास नहीं लगती ? तुम यार यों ही रहे।'

भुजवल—'खैर, सव पीछे देखा जायगा। मतलव की वात करिये। नालिशों की तारीखों का क्या होगा ?'

शिवलाल—'क्या होना है ? मैं तो अदालत में जाऊँगा नहीं। इकतरफा डिग्रियां हो जायेंगी। अदालत में जाकर यह कहना कि इकमुश्त रुपया नहीं दे सकता, किस्तवन्दी कर दी जाय और साहूकार की खुशामद करना नीचों का काम है। इस समय मुझे नालिशों की फिक्र नहीं है। जव डिग्रीदार साले इजराय कराने आवें, तव कुछ ऐसी पेचदार कार्रवाई करना, जिसमें अपना अँगूठा चाटते रह जायें।'

भुजवल—'यह वात ठीक है। मैं भी समझता हूँ कि इस समय कुछ भी करना वेकार होगा।'

शिवलाल—'परन्तु और खर्चों के लिये रुपये की जरूरत इसी समय है। किसान वेईमान लगान नहीं दे रहे हैं। वुद्धा और पैलू फिर यहां आये थे। मेरा डेढ़ सेर आटा खाकर ज्यों के त्यों चल दिये। तुम से हो सके, तो वसूल कर लेना। मुझे तो आशा कम दिखलाई पड़ती है।'

भुजवल—'व्याह की विपद से तो निवट ही गया हूँ। अव वस यही करना है।'

शिवलाल—'यहां वलोची घोड़े वेचने के लिये आये हुये हैं। दो घोड़े मैंने पसन्द किये हैं। दो हजार में आवेंगे। फिटन में वहुत भले मालूम होंगे।'

भुजवल—'यह वड़ा कठिन प्रश्न है।'

शिवलाल—'बलोची रोज आते हैं, और मुझे रोज आजकल-आजकल करना पड़ता है। बेचारे मेरे लिये ही यहां पड़े हुये हैं, क्योंकि और किसी से कोई सौदा पटा नहीं है।'

भुजबल—'जमींदारी में तो कुछ उगाही की आशा नहीं होती। बुद्धा और पैलू पर सैकड़ों रुपया इसी साल का बाकी है। पिछले साल की भी पूरी उगाही नहीं हो पाई थी। आजकल जमींदारी में कुछ फायदा नहीं रहा।'

शिवलाल—'मैं तो इस ससुरी को एक सेकंड में अलग कर दूं, परन्तु रह-रह जाता हूँ। बतलाओ भाई, रुपये के लिये क्या किया? नहीं किया, तो कुछ कर भी सकोगे या नहीं?'

भुजबल—'आशा तो है।'

शिवलाल—'आशा-ही-आशा में सब दिन निकले चले जा रहे हैं। खर्च किसी तरह कम हो नहीं सकता, और जो लगे हुये थे, सो थे ही, चंदे वालों ने अलग ऊधम मचा रक्खा है। एक बार चन्दा दिया था, बस, तब से फिर पीछा छुटाना मुश्किल हो गया है। कभी-कभी जी चाहता है कि कमबख्तों का रजिस्टर-वजिस्टर छीनकर सुखनई के किसी गड्ढे में डुबो दूं।'

भुजबल—'दस हजार रुपये मिल जायें, तो काम चल जाय। कर्जा निबट जाय, और घोड़े खरीद लिये जायें।'

शिवलाल—'हो कैसे? तुम्हारे साले साहब रुपया दे सकते हैं, सो उन्होंने बहिन तो तुम्हें दे दी, रुपया नहीं दिया। हो बड़े घण्ट। चुपचाप अपनी जन्म कुंडली खपा दी। अगर मेरी जन्म कुण्डली मिल जाती, तो किसी की कुछ परवा न रहती।'

और खूब हँसा। भुजबल ने भी साथ दिया, परन्तु विषय जमने न पाया। बोला—'वह रुपया देने को तैयार हैं, परन्तु रहन नहीं रखते।'

'और भी अच्छा है।' शिवलाल ने तपाक के साथ कहा—'रहन से गाँव बचे रहे, तो आगे का सुबीता बना रहेगा।'

भुजवल बोला—'ललितसेन यह नहीं करता।'

शिवलाल ने झुंझलाकर कहा—'तव फिर क्या चाहता है? मेरा सिर लेगा?'

भुजवल कुछ देर सोचने के वाद बोला—'उसने स्पष्ट तो कुछ नहीं कहा है। रुपया देने का वचन पूरा नहीं हारा है। रुपया उसके पास कम-से-कम एक लाख नकद होगा।'

शिवलाल—'मुझे तुम्हारे ऊपर वड़ी ईर्ष्या होती है। सुन्दर स्त्री उड़ा दी, और किसी दिन लखपती भी वन जाओगे। ऐसा जान पड़ता है, किसी दिन मुझको तुम मझधार में छोड़कर नये गांव के होकर रहोगे।'

भुजवल—'आपकी यह कल्पना भ्रमपूर्ण है। मैं तो सदा अपने को आपका सेवक समझता हूं। क्या करूँ, वहुत चेष्टा की, परन्तु ललितसेन सीधा नहीं हुआ। उसकी वहिन की मार्फत भी कहलवाया, वह भी निष्फल। ललितसेन लेन-देन वंद करके जमींदारी खरीदने की चिंता में है। मैंने उसे वहुत समझाया कि जिसे वैठे-विठाये झंझट में अपनी जान डालनी हो, वह जमींदारी खरीदे, परन्तु माना नहीं। कहता था कि कहीं-न-कहीं जमींदारी खरीदने में रुपया लगाऊंगा। यदि उसने कहीं दूर जमींदारी खरीद ली, तो वह शायद नयेगांव में वहुधा न रहेगा, और ऐसी अवस्था में मुझे भी प्रायः उसके पास जाना पड़ेगा। मुझे यह सव सोचकर आपके संवंध में और भी चिंतित होना पड़ रहा है।'

शिवलाल—'यह उसको जमींदारी ही खरीदनी है, तो हमारे गांव में से उसे चाहे जो दे दो। उसे फिर नयागांव छोड़कर यहाँ वार-वार न आना पड़ेगा, क्योंकि केवल ८-९ कोस है, और तुम भी यहीं वने रहोगे।'

भुजवल कुछ देर के लिये गम्भीर हो गया। वोला—'अभी तक इस विषय की चर्चा यथावत् नहीं हुई है। कहिये, तो करूँ, परन्तु आधी जमींदारी से अधिक के लिये मैं कदापि न कहूँगा।'

शिवलाल ने दबंगी के साथ कहा—'चाहे आधी के लिये कहो, चाहे जितने के लिये, परन्तु रुपया दस हजार जल्दी लाओ। एक बात की और गाँठ बाँध लेना, यदि तुम्हारी मेम साहब का गाना सुनने को न मिला, तो कसम जवानी की, चाहे जो कुछ नुकसान हो जाय, सारी जमींदारी को खाक करके बैरागी हो जाऊँगा, और तुम्हारी देहली के सामने जन्म-भर धूनी रमाऊँगा।' दोनों थोड़ी देर तक इस पर हँसते रहे।

[२४]

जिस तरह बरसात में नदी में बाढ़ बिना ढिंढोरा पीटे यकायक आ जाती है, उसी तरह कई पल्टनें नयेगांव में बहुत थोड़े दिनों के अंतर में आ गईं। बँगलों का किराया बढ़ने लगा। उन्हीं दिनों ललितसेन ने एक दिन खाना खाते-खाते अपनी बहिन से कहा—'इतने बँगले नहीं हैं, जितनी कि माँग है। कुछ और बनवाने पड़ेंगे।'

'बनवा लो।' रतन ने इस विषय में बहुत रुचि न दिखलाते हुये कहा।

'लेन-देन के झंझट से छुटकारा मिल जायगा।'

'हूँ।'

'और रुपया अच्छी संपत्ति में लग जायगा।'

'ठीक है।'

'और यह सब किराया अब तुम्हारे नाम से आया करेगा।'

रतन ने जरा चौंककर कहा—'सो क्यों?'

'सो क्यों?' ललित ने प्रश्न को दुहराते हुये कहा—'बस, तुम्हारी ही चिंता है। मुझे तो कुछ सिर पर धरकर ले नहीं जाना है। प्रबंधक का पचड़ा दूर हो जायगा।'

ललित ने सोचा था कि रतन का चेहरा इस भविष्य सांपत्तिक सुख से खिल उठेगा, और बारीक निगाह से वह उसकी ओर देखने लगा।

ललित खिन्न हो गया। बोला—'उदास क्यों हो?'

रतन ने अपने मलिन मुख पर मुस्कराहट को जबरदस्ती बुलाने की चेष्टा की। होठ के दोनों कोनों पर मुस्कराहट आई भी, परन्तु चेहरे की उदासी उस मुस्कान से और भी करुण हो गई।

ललित को भीतर-ही-भीतर बड़ी पीड़ा हुई। उसने सोचा कि रतन सुखी नहीं है। क्यों सुखी नहीं है? इसका कारण उसकी समझ में अच्छी तरह न आया, परन्तु किसी आंतरिक दुःख के लक्षण मौजूद थे। रतन में विवाह के पूर्व की वह प्रफुल्लता नहीं दिखलाई पड़ती थी। जान पड़ता था, मानो किसी बोझ से दबी जा रही है। कई बार ललित ने यह बात देखी थी, परन्तु उसका ठीक कारण न पहले समझ में आया था, और न अब।

कुछ अटकल लगाकर ललित ने पूछा—'रतन, तू उदास क्यों रहा करती है बेटी?'

'नहीं तो।' रतन ने मुस्कराकर कहा—'तुम भैया यह घर कब तक सूना रक्खोगे? ब्याह कर लो, मैं हाथ जोड़ती हूँ तुम्हारे।'

'दुर पगली! क्या जगत् में जितने आदमी पैदा हुये हैं, सब ब्याह करने लिये ही जन्मे हैं, और क्या विवाह ही सुख की चरम सीमा है?'

'यह सब शास्त्र तो मैं नहीं जानती, परन्तु अब यह घर सचमुच बहुत सूना मालूम होता है। न-जाने क्यों बुरा लगा करता है।'

'तुम्हें शायद यह चिन्ता लगी रहती है कि कहीं फिर लहचूरा-बहचूरा न जाना पड़े, और इसी भ्रम में तपा करती हो। विश्वास रक्खो, घर के सूने छूट जाने की आशंका कभी फलवती न होगी। यहीं सदा रहना होगा। मेरे पीछे भी।' और, भोजन प्राप्त करके ललित बैठक में चला गया।

[२५]

शिवलाल के ऊपर साहूकारों ने जो नालिशें की थीं, उनकी डिग्रियां बँध गईं। इनके पहले उन्हें अदालत से हुक्म इस्तनाई भी मिल गये थे कि मुकद्दमों के फैसले तक कहीं जायदाद हस्तान्तरित न करना।

तव शिवलाल के आमोद-प्रमोद में कुछ कमी आई, और उन्होंने किसानों से लगान वसूल करने में और अधिक कड़ाई से काम लेना शुरू कर दिया। परंतु किसानों के पास रुपया न था, इसलिये उगाही वहुत थोड़ी हुई। खर्च के लिये रोज ही काफी रुपये की जरूरत रहा करती थी, इसलिये जो कुछ वसूल हुआ, वह उसी के लिये यथेष्ट न था, तव दूसरा सहारा ललित के धन के वदले में जमींदारी वेचने के सिवा और कुछ न सूझ पड़ा।

वहुत कठोरता का वर्ताव करने पर भी आसामियों से बहुत कम रुपया कई दिनों में वसूल कर पाने के वाद भुजबल शिवलाल के पास आया। वैसे कुछ लोग मऊ में शिवलाल की जमींदारी खरीदने को तैयार थे, परंतु डिग्रियों और हुक्म इम्तनाइयों के झगड़े में न पड़ने की इच्छा से वे वातचीत करने से भी हिचकते हैं। भुजवल और शिवलाल को यह वात मालूम थी। शिवलाल को भुजवल के कौशल पर विश्वास था। ललित और भुजवल के सम्वन्ध पर उसको और भी अधिक भरोसा था। नयागाँव साहूकारों के लम्वे हाथों से कुछ दूर भी पड़ता था, इसलिये दोनों ने कुछ दीर्घकाल के निवास के लिये नयेगाँव को पसन्द किया।

स्थान ठीक कर लेने के वाद अकेला भुजवल ललित के पास गया। बहुत अहसान जताने की गरज से वोला—'अव की वार तो वड़ा सिर खपाना पड़ा।'

ललित ने पूछा—'काहे में ? काजीजी शहर के किस अन्देशे से दुवले हो रहे हैं ?'

दिल्लगी की परवा न करते हुये भुजवल ने उत्तर दिया—'वही शिवलाल की जमींदारी। अव छोड़िये मत। मुश्किल से राजी कर पाया है। वह यहीं आ गये हैं। स्टाम्प मँगवाकर वैनामा करवा लीजिये, और मऊ में चलकर रजिस्ट्री।'

'नारद जी की चिन्ता का वस यही कारण है !' ललित ने विना कोई उत्साह दिखलाते हुये, परन्तु हँसकर कहा—'जमींदारी खरीदने की अपेक्षा मैंने एक और वहुत लाभपूर्ण वात सोची है।'

भुजवल भीतर-ही-भीतर तिलमिला-सा गया।

'कौन-सा लाभपूर्ण यत्न सोचा है ?' भुजवल ने पूछा।

'कई नई पल्टनें आ गई हैं।'

'अच्छा !'

'बँगलों का किराया वढ़ती पर है।'

'किसी दिन जव पल्टनें चली जायेंगी, तव गिर भी जायगा।'

'प्रवन्ध में दिक्कत न होगी।'

'यह तो कोई वात नहीं है।'

'तुम्हीं को प्रवन्ध करना है। सहज और सुगम रहेगा। दूसरे कामों के लिये काफी अवकाश मिलेगा।'

'हारमोनियम का वजाना क्या अव कुछ ज्यादा तरक्की पर है ?'

'उसका वजाना इस समय अधिक न आता सही, किन्तु किसी-न-किसी दिन अवश्य अच्छा आ जायगा। परन्तु हारमोनियम से और वर्तमान चर्चा से कोई सम्वन्ध नहीं है।'

भुजवल ललित के स्वभाव की दृढ़ता को जानता था। वोला—'तव क्या और वँगले वनवाइयेगा ? आप तो वड़ी आफत का सामान इकट्ठा कर रहे हैं !'

ललित ने कहा—'अभी तो मन में यही आ रहा है। किराये की वँधी-वँधाई आय से जमींदारी का वखेड़ा किसी हालत में अच्छा नहीं हो सकता।'

भुजवल ने सिर नीचा करके सोचते-सोचते कहा—'मैं वड़ी विषम समस्या में उलझ गया हूं। आपकी स्वीकृत पाकर शिवलाल को जैसे-तैसे राजी कर पाया था। अन्य कई साहूकार उनकी जमींदारी

खरीदने के लिये सिर दिये फिरते हैं, मुश्किल से उन्हें टाल पाया। अब आप यदि नाहीं करते हैं, तो मैं शिवलाल को क्या मुंह दिखाऊँगा ?'

ललित ने हँसकर कहा—'खूब साबुन से मुंह धोकर शिवलाल के पास चले जाइये, और कह दीजिये कि दूसरे साहूकारों के हाथ उस इज्जत को बेच दे। साहूकारों को खरीदने के लिये तैयार करने में आपको बहुत समय न लगेगा।'

'परन्तु मैंने निश्चय किया है कि आप ही शिवलाल की जमींदारी खरीदें।'

भुजबल बोला—'मैं इस सम्पत्ति को भरसक हाथ से न जाने दूंगा। जमींदारी यहां से बहुत थोड़ी दूर है। प्रबन्ध में किसी तरह की गड़बड़ी नहीं पड़ सकती। बँगलों के बनवाने और निरंतर बढ़ती हुई रकम प्राप्त करने की आशा में दिमाग खराब करना बिलकुल व्यर्थ है।'

'और मैंने निश्चय किया है कि जमींदारी में हाथ न लगाऊँगा, और न लगाने दूँगा। जमींदारी यहां से थोड़ी दूर है, और बँगले बिलकुल नाक के नीचे। तुम्हें इस कारण रहना भी सदा यहां ही होगा।' ललित ने कहा।

भुजबल अपने निश्चय का रुख बदलकर बोला—'परन्तु बँगलों के बनवाने की विधि जब तक बिलकुल पक्की न हो जाय, शिवलाल को अन्तिम जवाब न दिया जाय, मैं उसे तब तक अटकाये रखना चाहता हूँ।' भुजबल के स्वर में बहुत विनय थी।

ललित ने कहा—'जैसी आपकी मर्जी, परन्तु मैं अपना निश्चय न बदलूँगा।'

[२६]

जब भुजबल लगान-वसूली के काम से लौटकर नयेगांव आया था, तब कुछ सिपाहियों को उगाही के काम पर छोड़ आया था, और हिदायत कर आया था कि वैसे न दें, तो खाल खींचकर लेना। पँलू और बुद्धा को वह किसानों का अगुआ समझता था, और उन्हें विशेष तौर पर अपना

ध्यान-भाजन वनाया था। सिपाहियों ने भी उन दोनों को मार-मारकर चूर कर दिया। तव शिवलाल का पता लगाकर दोनों नयेगाँव आये। उन्हें देखकर शिवलाल का क्रोध अपने साहूकारों को भूल-सा गया। खूब गालियाँ देकर उसने कहा—'तुम्हीं लोगों ने हमें इस हालत में पहुँचाया है। तुम्हारे साथ जो रियायतें मैंने की हैं, उसी का यह सब फल है।'

वे दोनों देर तक केवल अपना दुःख रोते रहे। भुजबल ललित के पास गया हुआ था। शिवलाल उसके उत्तर लाने की आशा बांधे बैठा हुआ था, इसलिये इन किसानों के आने से उसे जितना हर्ष हुआ होगा, उसका अनुमान-भर किया जा सकता है।

थोड़ी देर में भुजवल आ गया। उसके चेहरे पर आशाजनक प्रफुल्लता तो न थी, परन्तु उदासी भी नहीं दिखलाई पड़ती थी। भुजवल भाव वनाना जानता था। शिवलाल ने किसानों की उपस्थिति का खयाल न करते हुये पूछा—'क्यों, क्या कहा?'

भुजवल ने माथा सिकोड़कर किसानों की ओर संकेत करके कहा—'ये वदमाश यहां भी आ पहुँचे? इनके मारे नाकोंदम है। तुम लोग अव तक जीते हो?'

पँलू वोला—'मरे के वरावर हैं। हम यह कहने आये हैं कि हमारे पास रुपया नहीं है। अपनी जमीन ले लो, परन्तु हमारे प्राण छोड़ दो।'

'न जमीन छोड़ेंगे, और न तुम्हारे प्राण। देखें, तुम वचकर कहां जाते हो?'

वुद्धा ने जमीन पर नाखून गड़ाते हुये कहा—'हम तो मरने को ही आये हैं। घर में एक दाना खाने को नहीं है। वाल-वच्चों-समेत हमको मार डालो। वड़ा पुण्य होगा।'

शिवलाल ने कहा—'साथ में कुछ खाना-वाना वाँधकर भी लाये हो या नहीं? या हमारा सिर खाकर ही चैन लोगे?'

वुद्धा वोला—'मालिक के घर आयेंगे, और खाना साथ वाँध लायेंगे!'

भुजवल ने तमककर कहा—'आप ही ने इन पाजियों को बिगाड़ा है। जाओ यहां से। कोई सुनवाई न होगी।'

शिवलाल ने भी क्रुद्ध होकर कहा—'हटो ! मैं कुछ न सुनूंगा। एक-दो सेर आटा हमारा खराब करने आये हो। खाओ-पियो, और काला मुंह करके चले जाओ।'

भुजवल चकित दृष्टि से शिवलाल की ओर देखने लगा। पैलू ने कहा—'हम तो अब रियासत में जाते हैं, वहीं खेती-बारी करेंगे। अपनी जमीन आप सँभालिये। अब और नहीं सहा जाता। उठ रे बुद्धा ! चल। अभी दो कोस और चलना है।'

भुजवल ने कुछ विस्मित होकर पूछा—'कहां जा रहे हो ?'

'जहां सींग समावे !' पैलू ने बेधड़क होकर कहा।

बुद्धा बीच में बोल उठा—'नातेदारी में सिगरावन जा रहे हैं। जो खेती-पाती का कुछ ठीक हो गया, तो वहीं रहेंगे।'

'अच्छा, जाओ। निकलो ! हटो !' भुजवल तड़पकर बोला।

शिवलाल ने कुछ नरम होकर कहा—'खैर, इन्हें एक चिलम तम्वाकू पी लेने दो। फिर चाहे भाड़ में चले जायें।'

बुद्धा इतना आश्रय पाकर चिलम तैयार करने लगा। उसका अधीर साथी किसी आंतरिक भाव या व्यथा के कारण कांप रहा था। उसकी आंखें लाल थीं, परन्तु चिलम पीने के लिये वह भी ठहर गया।

शिवलाल ने भुजवल से पूछा—'उधर का क्या हाल है ?'

देखा कि शिवलाल जानने के लिये व्यग्र हो रहा है, तब भुजवल ने मन के भाव को दवाकर कहा—'बुरा नहीं है। मैंने उनसे बातचीत की थी। उनकी तवियत कुछ अस्वस्थ है। कुछ दिन ठहरने को कहा है।'

'क्या हर्ज है ?' शिवलाल बोला—'कुछ दिनों में बिगड़ता ही क्या है ? साहूकारों की डिग्रियों की इजराय बहुत जल्दी तो नहीं हो सकती। यदि जायदाद को नीलाम पर चढ़ाना चाहेंगे, तो नयेगांव में इत्तिलानामा की तामील के लिये बहुत दिन चाहिये। तब तक सब ठीक हो जायगा।

वनोचियों के घोड़े अवश्य अब न मिलेंगे; वे वेचारे निराश होकर चले भी गये होंगे। जब रुपया हाथ में आ जायगा, वहुत घोड़े हो जायँगे।'

शिवलाल को इतना आशामय देखकर भुजवल को कुछ संतोष हुआ। परंतु उन दोनों किसानों की वहाँ पर उपस्थिति भुजवल को वहुत खटक रही थी, और उनके समक्ष अपनी सांपत्तिक अवस्था का नंगा वर्णन। किसानों से वोला—'सिगरावन-में किसके पास जाओगे ?'

पैलू ने उत्तर दिया—'अभी कुछ ठीक नहीं है।'

वुद्धा वोला—'नातेदार हैं। उनके यहाँ जायँगे।'

भुजवल ने गर्व के साथ कहा—'हमारे नातेदार वहाँ पर भी हैं। हम वहां पर भी तुम्हें समझेंगे।'

'तुम हमें कच्चा चवा लेना।' पैलू ने निर्भीकता के साथ कहा—'ऐसा अन्याय उस रियासत में न होगा, जैसा तुमने मचा रक्खा है।'

वुद्धा ने भुजवल और शिवलाल के कोप का अंदाजा लगाकर पैलू को रोकते हुये कहा—'चुप क्यों नहीं रहता ?'

भुजवल की आँख से सचमुच कम-से-कम पैलू को कच्चा चवा लेने का भाव टपक रहा था।

उसने वात वदलकर शिवलाल से कहा—'सिगरावन में रिश्तेदारी में एक व्याह हाल ही में है। दो दिन के लिये तव तक मैं वहाँ हुये आता हूँ। तव तक वावू ललितसेन का ठीक-ठाक हो जायगा।'

'मैं यहां पड़ा-पड़ा क्या करूँगा ? मेरे लिये निमंत्रण होता, तो मैं भी तुम्हारे साथ चलता। देहात की सुन्दरियों की भी सैर हो आती।'

भुजवल ने उत्साह के साथ कहा—'निमंत्रण तुरन्त आ जायगा। आपका कुछ दूर का रिश्ता भी उन लोगों से होता है।'

शिवलाल ने प्रस्ताव किया—'पैलू और वुद्धा भी वहीं जा रहे हैं, हमारा सामान लिये चलेंगे।' पैलू चुप रहा।

वुद्धा ने कहा—'वहुत अच्छा। हम मालिक के साथ चलेंगे।'

शिवलाल ने दोनों रुख रखते हुये कहा—'तुम लोग बदमाशी न करो, तो कुछ दुश्मन थोड़े ही हो। खाना-वाना खा लो। कल चलेंगे।' भुजबल ने अपने हाथ से निमन्त्रण लिखकर शिवलाल को दे दिया।

[२७]

जाति के सम्पत्तिशाली लोगों को साधारण जन दो कारणों से विवाहों के अवसर पर निमन्त्रण देते हैं। एक तो यह कि सब लोग यह जान जायें कि बड़े-बड़े लोगों से रिश्ता है, और दूसरे यह कि आरायश और सजाने का सामान उनके यहां से मिल जाता है। बहुतेरों की इच्छा निमन्त्रण दे देने पर यह भी रहती है कि सामान तो अवश्य मिल जाय, परन्तु यदि निमंत्रित बृहज्जन आने की कृपा न करें, तो अच्छा। उनकी आवभगत में ही सारे आदमी और सामान लग जायेंगे।

सिगरावन में भुजबल की सास का मायका था। उनके यहां लड़की का व्याह था। भुजबल के पास निमंत्रण आया, और ललितसेन के यहां भी। ललितसेन भुजबल का साला था, और उसके यहां चांदनी और चँदोवे थे।

वैसे इस तरह के निमंत्रणों में ललित बहुत ही कम जाया करता था, परन्तु भुजबल के आग्रह पर तैयार हो गया। शिवलाल भी जा रहा था, इसलिये भुजबल के आग्रह में कुछ विशेष दृढ़ता थी, परन्तु ललित को न मालूम था कि शिवलाल किराये की धूमधाम के साथ एक साधारण गृहस्थ की लड़की के विवाह में शरीक होने जा रहा है। घर से चल देने पर उसे यह बात मालूम हुई।

तीनों आदमी एक शिकरम में गये। पँलू और बुद्धा भी साथ थे। उन्हें कोई सामान नहीं लादना पड़ा, और न शिवलाल ने वास्तव में उन लोगों को इस प्रयोजन से अटकाया ही था। उसने इन लोगों को अपनी महत्ता में सहायक होने के लिये ही रोक लिया था।

सिगरावन नयेगांव छावनी से करीब दो कोस था, परन्तु यह छोटी-सी यात्रा भी ललित को बड़ी मालूम हो रही थी। उसके साथ बातचीत

करने की इच्छा शिवलाल के मन में न थी; और न किसी के साथ वातचीत करने की इच्छा ललितसेन के मन में ही थी। परन्तु कदाचित् वातचीत करने से इतनी थकावट नहीं जान पड़ती, जितनी चुप रहने में मालूम होती है। भुजवल ने पहले तो इस सर्वव्याप्त चुप्पी का साधन शिकरम की खड़खड़ाहट को निर्धारित करके अपना मन समझा लिया, परन्तु अधिक समय तक तबियत को काबू में न रख सकने के कारण वह ललितसेन से वोला—'आपको देहात में जाने का बहुत कम मौका मिलता है। शिकरम में तबियत परेशान हो उठी होगी।'

ललित ने अन्यमनस्क होकर कहा—'ऐसा तो कुछ नहीं है। वहां कितने दिन ठहरना होगा ?'

शिवलाल वोला—'देहात से इतना भयभीत होने से कैसे काम चलेगा ? आखिर लहचूरा की तरफ जमींदारी देखने के लिये तो आपको अक्सर जाना ही पड़ेगा।'

किसी कुरंग का ख्याल करके भुजवल ने विषयधारा को तुरन्त पलटते हुये कहा—'आज रात को टीका हो जायगा। दरवाजे की शोभा करके सवेरे लौट आइयेगा।'

शिवलाल के मन में जो था, वह इस तरह नहीं निरुद्ध किया जा सकता था।

वोला—'भाई, हम तो न्योता पूरा करके आवेंगे। जव तक भोजन के समय स्त्रियों की दो चार गालियों से कान पवित्र न कर लेंगे, दम न लेंगे। आप लहचूरा से भी क्या इसी तरह असमय ऊब-ऊबकर चले आया करेंगे ?'

ललित ने रुखाई के साथ कहा—'लहचूरा से मुझे मतलब ही क्या रहेगा ?'

'यह लीजिये।' शिवलाल ने उँगलियाँ घुमाकर आश्चर्य प्रकट करते हुये कहा—'अभी वैनामा नहीं हुआ, तव तो इतनी अरुचि है, जव वैनामा हो जायगा, तव शायद लहचूरा के नाम से ही नफरत हुआ करेगी।'

ललित ने शिवलाल की आँख में खूब आँख मिलाकर कहा—'काहे का बैनामा ? किस तरह का बैनामा ?'

भुजबल की आँख में निवारण करने के अभिप्राय से जितनी विनय आ गई थी, उतनी शायद ही पहले कभी देखी गई हो। परन्तु उसका कुछ फल होते न देखकर बोला—'यह समय किसी बैनामे की बातचीत के लिये उपयुक्त नहीं मालूम होता। और, इस समय तो हम लोग सिगरावन चल रहे हैं, लहचूरा की बातचीत से सम्बन्ध ही नहीं है।' फिर ललित से प्रश्न किया—'आप कभी पहले सिगरावन गये हैं ?'

ललित ने केवल सिर हिलाकर नाहीं कर दी।

फिर उसने तुरन्त शिवलाल से कहा—'आप भी कभी न गये होंगे। सिगरावन में कोई खास चीज तो नहीं है, परन्तु एक पुराना तालाब है। सुनते हैं, चँदेलों का बनवाया हुआ है। आपको इतिहास का शौक है ?'

शिवलाल का शौक इतिहास के सम्बन्ध में शायद अपनी दो एक पीढ़ियों के नाम तक भले ही रहा हो, परन्तु इससे अधिक न तो वह इतिहास को जानता ही था, और न जानने की इच्छा थी। इतिहास की ओर किया हुआ विषयांतर उसे अच्छा नहीं लगा। ललितसेन की भी विशेष रुचि न थी। वह चुप था। शिवलाल के जी में जो बात खटक रही थी, उसने कही—'आपसे क्या भुजबल ने मेरी जमींदारी के बैनामे के विषय में कुछ भी नहीं कहा ?'

भुजबल ने आँख से यथाशक्ति और यथासमय रोका, परन्तु ललित में रुकने की आदत न थी। बोला—'बहुत कहा, परन्तु मेरा मन नहीं भरता। मैं किसी किस्म की जमींदारी नहीं खरीदना चाहता।'

किसी तरह से निभाव न होता देखकर भुजबल ने शिवलाल से मुंह फेरकर कहा—'आप हरएक बात में जल्दी करते हैं, और समय-कुसमय कुछ नहीं देखते हैं।'

बारूद में आग पड़ चुकी थी। शिवलाल अप्रतिहत भाव से बोला—'मैं क्या मुफ्त में रुपया लेना चाहता हूं ? दो पैसे लूंगा, तो चार पैसे की चीज भी तो दूंगा।'

'मुझे एक पैसे में सौ की भी जमींदारी नहीं चाहिये।' ललित ने शान्त और अव्याकुल चित्त से कहा।

शिवलाल रुष्ट स्वर में बोला – 'आपके कोई हाथ थोड़े ही जोड़ता है।' और, सड़क की ओर मुंह करके देखने लगा।

ललित ने कोई उत्तर नहीं दिया। भुजवल कुछ कहना चाहता था कि एक ओर टहलता हुआ अजितकुमार दिखलाई दिया। वार्तालाप के लिये अच्छा विषय पाकर भुजवल ने ललित से कहा—'मास्टर साहब कहां से आ रहे होंगे ?'

भुजवल को ललित का अतीत व्यवहार न मालूम था।

ललित ने कहा—'आते होंगे। हमसे इनका कोई सम्बन्ध नहीं है।'

शिवलाल ने अपमान का बदला चुकाने के लिये भुजवल से कहा—'यह आदमी तो बहुत अच्छे हैं।' पास आने पर शिवलाल ने बहुत थोड़ी जान-पहचान पर भी अजित को प्रणाम किया। उसने न पहचाना, इसलिये विशेष ध्यान के साथ शिकरम की सवारियों को देखा। भुजवल ने प्रणाम किया। अजित ने उत्तर दिया, और कुछ कहना ही चाहता था कि ललित को देखकर चुपचाप सिर अकड़ा कर दूसरी ओर चल दिया। शिकरम वाले किसी मानसिक युद्ध में निमग्न सिगरावन चुपचाप चले गये।

[२८]

संध्या से पहले ही ये लोग सिगरावन पहुंच गये। जिनके यहां बारात आने वाली थी, वे लोग बारात की अगवानी की तैयारी में व्यस्त थे, परन्तु इन आगन्तुकों की खातिर बारात से बढ़कर करनी पड़ी। पास ही के एक घर को तुरन्त साफ कराकर डेरा डलवाया गया।

जब तक वह घर साफ नहीं किया गया, तब तक दरवाजे से लगे हुये चबूतरे पर आगंतुकों को अच्छे आसन पर बिठला दिया गया। चबूतरे पर नीम का पेड़ था, छाया थी। वैसे भी सूर्य ढल चुका था।

दरवाजे के पास से आगन्तुकों को दो लड़कियां देख रही थीं। एक तो सात-आठ बरस की थी, जिसका विवाह होने वाला था। तरह-तरह के बड़े और मोटे आभूषणों से लदी हुई, जैसे दो बरस का लँगड़ा आम पहली ही फसल में बड़े-बड़े फलों से लद जाय। दूसरी पूना थी। मामा की लड़की के विवाह में माँ के साथ न्योते में आई थी।

जब तक डेरे वाले, मकान की सफाई होती रही, तीनों आगंतुक चुपचाप चबूतरे पर बैठे रहे। आसपास के छोटे-छोटे अनाकर्षक घरों के छान-छप्पर देखते-देखते जब उनकी आँखें थक गईं, तब उस दरवाजे की ओर गईं। भुजबल को इस ओर मुंह फेरते देखकर पूना मुस्कराई। भुजबल ने देखा, पूना थोड़े ही समय में कुछ अधिक बड़ी पड़ने लगी है, और रंग निखर रहा है। ललितसेन को वह अनोखे सौंदर्य की प्रतिमा सदृश जान पड़ी। परन्तु उसने एक बार अच्छी तरह देख लेने की चेष्टा करके तुरन्त अपना मुँह मोड़ लिया। शिवलाल अनिमेष नेत्रों से देखने लगा। उसको देखकर पूना वहां से हटकर भीतर चली गई। उसके मामा की लड़की वहां से नहीं हटना चाहती थी। पूछा—'जिज्जी, जे को आयें ?'

इधर ललितसेन ने अपने मन में कहा—'छोटे से गांव में इतना बड़ा सौंदर्य ? यह कौन होगी ?'

शिवलाल ने भुजबल का हाथ दबाकर चुटकी ली। ललित दूसरी ओर मुंह किये था। उपयुक्त अवसर समझकर शिवलाल ने कुटिल मुस्कराहट के साथ एक आंख का कोना जरा दबाकर इशारे में भुजबल से पूछा—'यह कौन है ?'

स्पष्ट प्रश्न न होने पर भी भुजबल को समझने में देर न लगी, और उसके कलेजे में आग-सी धधक गई। दूसरी ओर मुंह फेर लिया। शिवलाल ने फिर चुटकी लेकर अपनी ओर उसको सम्मुख किया, और

फिर उसी तरह एक आंख का कोना दवाकर खूव सिर हिलाया। शिवलाल ने पूना को मुस्कराते हुये देख लिया था। उसका कुछ अर्थ लगाकर शिवलाल ने भुजवल की ओर कनखियों से देखकर फिर सिर हिलाया, और जरा-सा खांसा। भुजवल ने शायद ही कभी ऐसा जलाने वाला मूक व्याख्यान सुना हो।

[२६]

पूना को मालूम हो गया कि पास वाले मकान में भुजवल को डेरा मिला है। परंतु उतावली में उसे यह न मालूम हुआ कि उसके साथ ही दो मनुष्यों को भी वहीं स्थान दिया गया है।

वहनोई से वात करने के लिये मां का आदेश लेकर पहुंची।

अँधेरा हो गया था। दीपक जल गये थे। भुजवल वैठा था। ललित और शिवलाल लेटे थे। पूना ने नहीं देखा। वोली—'जीजाजू, आप अच्छी तरह हैं?'

भुजवल थोड़ी-सी वात करके उसको वहां से विदा करना चाहता था। उत्तर दिया—'वहुत अच्छी तरह हूँ। मां मऊ से आई हैं?'

'हां आई हैं। आपने तो हम लोगों की सुधि ही विसार दी है। उन्होंने वुलाया है।'

'अभी आता हूँ। तुम चलो।'

'जिज्जी कहां हैं?'

अन्तिम वात उसने वड़ी मिठास के साथ पूछी।

शिवलाल हाथ के सहारे अव वैठा सा हो गया, और ललित ओट में से देखने लगा।

वैसे पूना कुछ और वात करने के लिये ठिठक रही थी, परन्तु शिवलाल को वेठते देखकर तुरन्त वहां से चल दी।

शिवलाल ने पूछा—'यह कौन है?'

ललितसेन ने पूछा—'यह कौन थी?'

भुजवल ने उत्तर दिया—'यह मऊ सहानिया वाली मेरी साली है। इसके मामा की लड़की का व्याह है।'

ललित फिर आराम से लेट गया। भुजवल बैठ गया।

शिवलाल बोला—'इसका व्याह नहीं हुआ ?'

'नहीं, अभी तक कहीं, जन्म-कुण्डली नहीं मिली है।'

'अभी तक ?' शिवलाल ने कुछ आश्चर्य प्रकट करते हुये कहा—'ऐसी लड़की के साथ विवाह करने के लिये तो चाहे जो कोई तैयार हो जायगा।'

भुजवल ने ललित को संवोधन करके कहा—'आपके यहाँ जो मास्टर थे, उनके साथ कुण्डली मिली थी, परन्तु उसकी माँ ने पसन्द नहीं किया।'

ललित ने कुछ जोश के साथ मत प्रकट किया—'वहुत अच्छा किया। अजितकुमार-सरीखे काँटे के साथ इस फूल का मेल नहीं वन सकता।'

'काँटा !' भुजवल ने कहा—'आदमी देखने में तो अच्छा मालूम होता है।'

ललित ने जोर देकर कहा—'उसकी चर्चा छोड़ो। कोई और घर देखो।'

भुजवल कुछ मजाक के ढंग पर वोला—'आपके साथ इसकी टीपना मिल गई थी, परन्तु आपने स्वीकार ही नहीं किया।'

'किसके साथ मिली थी ?' ललित ने कहा। फिर तुरन्त अपने प्रश्न पर मन में खीभकर वोला—'मुझे तो विवाह करना ही न था।'

शिवलाल ने प्रस्ताव किया—'मेरे सन्तान नहीं होती है। यदि जन्म-पत्री मिल जाय, तो मैं विवाह करने के लिये तैयार हूं।'

इस पर ललितसेन स्वभाव-विरुद्ध वहुत जोर से हँसा। देर तक हँसा, परन्तु कुछ वोला नहीं।

शिवलाल चिढ़ गया।

वोला—'मैं न तो हँसी कर रहा हूँ, और न हँसी की कोई वात ही कह रहा हूँ। यदि उसकी माँ की इच्छा हो, तो मैं राजी हूँ।'

भुजवल ने धीरे से कहा—'आपके साथ जन्म-पत्री नहीं मिलेगी।'

शिवलाल—'विना मिलान किये ही कह दिया।'

भुजवल—'उसकी माँ भी न मानेगी।'

शिवलाल—'उनसे पूछो तो।'

इस पर फिर ललितसेन जोर से हँसा। भुजवल ने उसे इतना हँसते हुये कभी न देखा था। हँसी और जमुहाई का कायदा है कि छुतैले रोग की तरह फैलती है।

भुजवल भी हँसा। वोला—'वुढ़ापे में तमाशा कराइयेगा क्या?'

शिवलाल ने डपटकर कहा—'कौन मुझे वुड्ढा कहता है?'

भुजवल ने कहा—'कोई संदेह नहीं करता, परंतु अपनी-अपनी रुचि तो है।'

शिवलाल झूमने लगा, और मूछों पर ताव देकर कुछ सोचने लगा।

चारों ओर हँसी की आँधी देखकर वह भी जवरदस्ती हँसकर भुजवल से वोला—'क्या तुम अपनी पीवट की फिक्र में हो? दूसरा विवाह करोगे?'

ललितसेन की हँसी वन्द हो गई। चिहुंककर उठ वैठा। फिर एक क्षण वाद लेट गया। कुछ देर सन्नाटा रहने के वाद भुजवल ने कहा—'मुझे वुलाया था। मैं थोड़ी देर में आता हूं।' वह गया, और उसके पीछे दिसा के लिये ललित और शिवलाल भी चले गये।

[३०]

भुजवल थोड़ी देर में अपनी सास के पास से लौट आया। पूना के मामा के यहाँ जो रिश्तेदार आये थे, उनमें से कई लोग वारात के दरवाजे पर आने के पहले ललितसेन के डेरे पर वातचीत के लिये आये। वात-चीत के विपय—कौन कहाँ व्याहा है, किसके साले के कितने लड़के हैं, लड़कियों के लिये जन्म कुण्डलियों की आवश्यकता है, इत्यादि थे। सवको

मालूम था कि ललित कुंवारा था, परन्तु फिर—फिर उसी बात को खोद-खोदकर आश्चर्य प्रकट किया जाने लगा।

इतने में बारात आ गई। जनवासा, पौनछंक की पूड़ी इत्यादि महत्वपूर्ण विषयों पर खूब लड़ाई-झगड़े होने के बाद पौने पाँच बजे सवेरे दूल्हा टीका के लिये आया। तब तक भुजबल और शिवलाल ने एक-एक नींद ले ली थी, परन्तु ललितसेन न सोया था।

टीके का रमतूला बजने और बुलावे के कोलाहल होने पर भुजबल और शिवलाल जाग उठे, और टीका देखने के लिये गये। बारातियों को ललितसेन के आने की सूचना मिल गई थी। अहम्मन्यता पर उनके कौतूहल का जितना दबाव पड़ सका, उतने से उन लोगों ने ललित की ओर झांका-झूंकी की। ललितसेन कभी-कभी इधर-उधर दृष्टिपात कर उठता था, जैसे किसी को खोज रहा हो। एक ओर भुजबल को ले जाकर उससे कहने लगा—'यह गोल-माल, धूम-धड़ाका, शोरगुल और खलबली कुछ बुरी नहीं मालूम पड़ती। कितने आदमियों के हृदय में इससे उमंगें भर रही होंगी।'

भुजबल ने ऐसे विषय पर इतना उत्साह दिखलाते हुये ललित को न देखा था। बोला—'हम देहाती अपना भाग्य सराहते हैं कि यहां कुछ तो आपको पसन्द आया।'

'मैं भी तो मनुष्य हूँ।'

'मेरा यह खयाल था कि विवाह और विवाह से सम्बन्ध रखनेवाली सब धूम-धाम से आपको नफरत है।'

ललित ने हँसकर पूछा—'तुम्हें भीतर किसलिये बुलाया था?'

'क्या बतलाऊँ, बड़ी आफत में हूँ। पूना की मां ने जन्म-कुण्डली का तकाजा अबकी बार बहुत रोकर किया है। प्राणों पर आ बनी है। दो-तीन महीने के भीतर वह पूना का ब्याह कर देना चाहती हैं।' उनकी बहुत

अभिलाषा थी कि आपके साथ पूना का विवाह कर दिया जाता, परन्तु आपने तो उस प्रस्ताव को ही असम्भव कर दिया है।'

'क्यों ?' ललितसेन ने कहा, और फिर तुरन्त अपने को सुधारते या सँभालते हुये बोला—'अर्थात् हाँ, मैंने यह कहा था कि विवाह न करूँगा।'

'वही तो।' भुजवल ने बड़ी गम्भीरता के साथ कहा—'आपने अब ऐसा सम्बन्ध स्थापित कर लिया है कि हम लोग जबरदस्ती भी पूना का व्याह आपके साथ करना चाहें, तो नहीं कर सकते।'

ललितसेन चुपचाप भुजवल के मुंह की ओर देखने लगा। एक क्षण बाद दूर खड़े हुये वारातियों की ओर दृष्टि फेर दी।

भुजवल कहता चला गया—'अब मुझे सचमुच पूना की बहुत चिन्ता लग रही है। कुण्डली कहीं मिलती नहीं है। शिवलाल सरीखे लोग तो मिल सकते हैं, परन्तु योग्य वर नहीं मिलता।'

'शिवलाल ?' ललित ने कुछ भयंकर स्वर में कहा—'वह गधा, बूढ़ा बैल! और शायद एक स्त्री के घर में होते हुये भी!'

'खैर, यह तो कोई बात नहीं है। एक स्त्री के होते हुये भी दो-दो, तीन-तीन विवाह हो जाते हैं। रीति और धर्म के खिलाफ इसमें कोई बात नहीं है। अपनी समाई के ऊपर निर्भर है।'

'कदापि नहीं। नैसर्गिक नियम के बिलकुल विपरीत है।'

भुजवल ने कुछ दृढ़ता के साथ कहा—'लाला, मैं यह नहीं मानता, नैसर्गिक नियम के विरुद्ध होता, तो शास्त्रों में इसकी मनाही होती।'

ललितसेन ने पूछा—'तब क्या यह कह आये हो कि इस गिरगिट के साथ उस गरीब लड़की को बरबाद करोगे ?'

भुजवल ने हँसकर कहा—'मैं ऐसा बेवकूफ नहीं हूँ, परन्तु हैरान हूं कि क्या करूँ।'

ललित ने आश्वासन देते हुये कहा—'नयेगांव चलकर इस विषय पर अच्छी तरह विचार करेंगे, तब तक किसी के साथ कोई बात पक्की न करना।'

भुजबल ने तुरन्त स्वीकृति देते हुए उत्तर दिया—'बहुत अच्छा।'

भुजबल को ढूंढ़ते-खोजते इस अवसर पर शिवलाल आ गया। ललित अँधेरे में खड़ा था। उसने उसको पहिचान नहीं पाया।

बोला—'बड़े उस्ताद दिखाई देते हो, किसकी टोह लगा रहे हो।'

'आपको देख रहा था।' भुजबल ने हँसकर स्थिरता के साथ उत्तर दिया।

'अरे रहने दे यार! हमारी टोह में काहे को खड़ा होगा? कसम जवानी की, ऐसी खूबसूरत साली-सलहजों की दुनियां में रहते टोह न लगाना ही अचम्भे की बात होती।'

'चलिये, डेरे पर चलें।'

'क्या उड़ाते हो? डेरे पर तो चलेंगे ही। हम सच कहते है, दो घोड़ों या दो गाड़ियों की सवारी अकेले न करने पाओगे। अपनी साली के साथ जन्म-पत्री मिलवा दो, तो जिन्दगी चैन से गुजर जाय।'

अपरिचित आदमी की उपस्थिति में इस तरह की बात करना शिवलाल के संकोच के दायरे में न था। कुछ और कहता, परन्तु ललितसेन बीच में बोल उठा—'इस तरह बेहूदगी सुनने का मुझे अभ्यास नहीं है। मैं डेरे पर जाता हूँ।' और, वह वहां से चला गया। शिवलाल जरा-सा सन्नाटे में आ गया, परन्तु बहुत ही थोड़ी देर के लिये।

ललितसेन के चले जाने के बाद कुपित स्वर में भुजबल से बोला—'तुम्हारे साले साहब अपने को न मालूम किस मर्ज की दवा समझते हैं। यदि तुम्हारे साले न होते, तो गुस्सा तो इतना आ गया था कि यहीं गला दबा देता। मालूम नहीं, किस बात की ऐंठ में भँजे चले जाते हैं।'

भुजबल ने एक क्षण कुछ सोचकर कहा—'बात सीधी-सी है। मेरी साली रिश्ते में उनकी बहिन होती है। हंसी-मजाक की मंडली में वह

कभी बैठे-उठे नहीं हैं, इसलिये आपे से बाहर हो गये। आपको भी इस तरह की दिल्लगी उनके सामने नहीं करनी चाहिये। चलिये, बारात अब जनवासे को जाने के लिये है। हम लोग भी आराम करें।'

दोनों डेरे पर गये, और चुपचाप जा लेटे। सवेरे देर तक सोते रहे। जब आँख खुली, तो एक कोने में पैलू और बुद्धा को बैठे देखा। ललित पहले ही जाग पड़ा था, या सोया ही नहीं था, सो नहीं कहा जा सकता।

शिवलाल को जागते देखकर पैलू ने कहा—'हमारे लिये हुक्म हो जाय। लगान अगले साल ले लिया जाय, तो बच जायेंगे, नहीं तो बस समझ लीजिये कि घर-बार तो सदा के लिये छूट ही चुका है।'

शिवलाल ने जरा जोर से और राजाओं-जैसी शान दिखलाते हुये कहा—'बारात से लौटकर जब हम नयेगाँव जायें तब दो-एक दिन पीछे आना। हम वहां तुम्हारा इन्साफ कर देंगे। हमारे मुख्तार साहब भी वहां होंगे। अभी जाओ, घबराओ मत।' ऐसी मीठी बात उन किसानों ने अपने जमींदार से बहुत दिनों से नहीं सुनी थी। बहुत प्रसन्न होकर चले गये।

[३१]

न्योता करने के बाद शिवलाल नयेगांव छावनी को लौट आया। ललितसेन से रुपया पाने की उसे आशा न थी, परन्तु उसे विश्वास था कि झांसी जिले के साहूकार नयेगाँव में बहुत दिनों के बाद कहीं तंग कर पावेंगे। इसके सिवा भुजबल पर सिंगरावन से लौटने के बाद कुछ अधिक स्नेह हो गया था। ललितसेन भुजबल को छावनी छोड़कर जाने नहीं देना चाहता था, और न भुजबल के पास कोई विशेष कारण छावनी छोड़ने का था ही। वह ललित के पास एक ही मकान में रहता था। उसका दिन का अधिकांश समय शिवलाल के पास कटता था।

लौटने के एक ही दो दिन बाद संध्या के पहले शिवलाल नयेगांव-छत्रपुर सड़क पर हवा खाकर वापस आ रहा था। इधर से अजितकुमार मिल गया। भुजबल के द्वारा थोड़ा-सा परिचय हो गया था। परन्तु

शिवलाल उन लोगों में से था, जो थोड़े से परिचय को गाढ़ी मित्रता के रूप में देखा करते हैं। इसके सिवा शिवलाल का यह विश्वास था कि वार्तालाप की कला में उससे बढ़कर बहुत कम लोग निकलेंगे। इसलिये अजित को आगे बढ़ने से रोककर बोला—'बन्दगी अर्ज मास्टर साहब। अकेले-अकेले हवाखोरी का मजा आप खूब लूटा करते हैं।'

कुछ मनचले लोग अपना विद्या-दम्भ स्वल्प परिचितों पर उर्दू-भाषा के द्वारा जान-बूझकर दिखलाया करते हैं। अजित ने इस दम्भ का प्रतिवाद न करते हुये मुस्कराकर कहा—'मुझे एकान्त-सेवन बहुत भला मालूम होता है। आप भी तो अकेले ही कहीं से आ रहे हैं।'

'यह बात सच है कि तखलिये में तबियत को बहुत फरहत मिलती है। आप तो कभी मिलते ही नहीं।'

'समय नहीं मिलता।'

अजित बात को समाप्त करके वहां से जाना ही चाहता था कि दो आदमी शिवलाल के पास आकर खड़े हो गये। एक बोला—'आपका नाम ?'

शिवलाल ने बड़ी दबंगी के साथ उत्तर दिया—'बाबू शिवलाल जागीरदार।'

'लहचूरा के।'

'हां जी, फिर।'

'आपके नाम एक अदालती नोटिस है। इसे लीजिये।'

बाबू शिवलाल जागीरदार का दम्भ चल बसा। वे दोनों कचहरी के चपरासी मालूम होते थे। शिवलाल को नोटिस लेना पड़ा।

चपरासी ने गवाही के दस्तखत के लिये अजितकुमार से कहा। उसने सोचा—'कहां झंझट में पड़े।' परन्तु गवाही कर दी। चपरासी अकेले न थे। उनके पीछे-पीछे एक और आदमी भी जरा दूरी पर खड़ा था। उसी के साथ वे लोग लौट गये, और शिवलाल तथा अजितकुमार तखलिये में एक-दूसरे के सामने खड़े रह गये।

अजित ने शिवलाल से पूछा—'यह क्या नोटिस था, जिसके दूसरे पर्त पर मेरी गवाही कराई गई है ?'

'एक इत्तिलानामा है।'

'वैसे तो मुझे कोई प्रश्न करने का अधिकार न था, और न किसी के रहस्यों के भीतर प्रवेश करने की मेरे मन में इच्छा ही रहती है, परन्तु जब मेरे दस्तखत लिये गये हैं, तब थोड़ा-सा जान लेना चाहता हूँ।'

शिवलाल ने संक्षेप में पहले अपनी बड़ी जमींदारी की हद बतलाई, और फिर लम्बे कर्जे को छोटा बतलाने की चेष्टा की, परन्तु यह निःसंकोच कह दिया कि रुपये की जरूरत है, और उसी के अनुसंधान में छावनी में रहना पड़ रहा है। रुपये के मामले में शिवलाल ललितसेन से निराश हो चुका था, परन्तु अपने किसी भी परिचित से, या उसके द्वारा रुपये पाने की आशा उसके भीतर बलवती हो गई थी, इसीलिये उसने अपनी कथा के इस भाग को कुछ अधिक समय दिया।

अजितकुमार ने उससे विदा होते समय कहा—'मेरे पास तो कुछ नहीं है, और न कोई सम्पत्तिशाली व्यक्ति मेरा मित्र है, परन्तु यदि कहीं से आपको रुपया मिल सकता होगा, तो मैं पूरा प्रयत्न करूँगा।'

[३२]

उन्हीं दिनों एक रात ललितसेन भुजबल को अपना हारमोनियम सुना रहा था—अर्थात् अजितकुमार के मास्टरी छोड़ने के बाद उँगलियाँ चलाकर तेजी के साथ धौंकनी को धौंककर जितनी आवाज या आवाजें ललितसेन उस छोटे-से बाजे में से निकाल सकते थे, निकाल रहे थे।

भुजबल अरसिकता जाहिर न करने का दृढ़ प्रण करके बैठा हुआ था, तो भी जमुहाइयों ने न माना। जब शायद ललितसेन के हाथ दुखने लगे, तब उसने भुजबल की ओर इकटक दृष्टि से कुछ क्षण देखा।

भुजबल ने कहा—'मुझे अभी नींद नहीं आ रही है, और बजाइये।'

'मुझे कुछ पूछना है।' ललित ने कहा—'इसलिये बाजा बन्द कर दिया है।'

'आप अटा-सटा जानते हैं ?'

'यह क्या बला है, सो मैं नहीं जानता।'

'राजपूतों और खत्रियों की कुछ उपजातियों में होता है।'

'क्या होता है ?'

'अटा-सटा।'

'कैसा ? क्यों ? कब ? क्या ?'

ललित हँस पड़ा। बोला—'इतने प्रश्न एक साथ।'

भुजबल ने भी हँसकर उत्तर दिया—'तब क्या करूँ ? यह शब्द तो मैंने आज ही सुना है। इसका अर्थ क्या है ?'

ललित ने गम्भीर होकर कहा—'साले-बहनोई के बीच में एक-दूसरे की बहिन के साथ विवाह-सम्बन्ध।'

असाधारण विषयों पर वार्तालाप करने की ललितसेन की प्रकृति को भुजबल जानता था। परन्तु हारमोनियम की आवाजों से अटा-सटा का क्या सम्बन्ध है, यह बात भुजबल की समझ में इस व्याख्या के बाद भी न धँसी।

उत्सुक दृष्टि से देखने लगा। ललित ने कहा—'मैं विवाह करूँगा।'

भुजबल ने सोचा, शायद कानों ने धोका दिया। इसलिये पूछा—'क्या कहा ?'

ललित ने गम्भीर मुख और दृढ़ स्वर में कहा—'मैं विवाह करूँगा।'

भुजबल ने एक क्षण आश्चर्य में डूबकर कहा—'और पहले यह इच्छा प्रकट कर दी होती।'

'अब प्रकट कर दी, तो क्या अन्तर पड़ गया ?'

'अब लड़की की तलाश करनी पड़ेगी, अर्थात् सुपात्र लड़की की।'

'लड़की मैंने ढूँढ ली है।'

'क्या सचमुच ? मुझे आज बतलाया !'

'नहीं, बहुत दिन नहीं हुये। इसलिये यह नहीं कहना चाहिये कि मैंने बहुत समय तक इस विषय को छिपाया है ?'

'उस सौभाग्यवती का नाम क्या है ?'

'जिससे पहले टीपनां मिली थी।'

'किससे ?' भुजवल ने कुछ विस्मित और कुछ भयभीत होकर पूछा।

ललित ने उसी स्थिरता के साथ उत्तर दिया—'पूना से।'

भुजवल विचार सागर में डूबकर गोते खाने लगा।

ललितसेन ने उसे उबारने की मंशा से कहा—'क्यों ? कैसे रह गये। ऐसी कोई कठिनाई तो सामने है नहीं। उसकी मां तो चाहती ही थी। आपकी उत्कट लालसा थी।'

भुजवल को जैसे निद्रा से तत्काल जाग्रत किया गया हो, कहा—'अब यह सम्भव नहीं है। पूना सम्वन्ध में आपकी वहिन होती है।'

ललित ने अकुण्ठित भाव से कहा—'अटा-सटा का सिद्धांत हमारे पक्ष में है। उस सिद्धान्त के अनुसार मैं आपकी वहिन के साथ विवाह कर सकता हूं। फिर वह तो आपकी साली ही है। मेरी वहिन वह किसी प्रकार नहीं हो सकती।'

भुजवल देर तक कुछ सोचता रहा। कुछ भी निश्चय न कर सकने के कारण वोला—'कुछ समय के लिये इसको स्थगित कर दीजिये। देखा जायेगा।'

ललित ने कहा—'मैंने मन में निर्णय कर लिया है - अर्थात् यदि उसकी मां ने अस्वीकृत न किया, तो ?'

[३३]

सवेरे भुजवल ललितसेन की नजर वचाकर शिवलाल के मकान पर गया। वहां होकर उसकी इच्छा पूना की मां के पास सिंगरावन जाने की थी। उसको मालूम था कि वह अभी सिंगरावन से मऊ-सहानिया न गई होगी।

उसके आते ही शिवलाल ने कहा—'अब तो यहां भी बचना मुश्किल है।'

'क्यों, क्या हुआ ?' भुजवल ने पूछा।

'कल साहूकारों का नोटिस मिला है।'

कहकर नोटिस भुजबल के सामने डाल दिया।

नोटिस जायदाद के नीलाम पर चढ़ाये जाने की इत्तिला का था।

भुजवल ने माथा टटोलकर कहा—'मैं नहीं जानता था कि यह कार्रवाई इतनी जल्दी शुरू हो जायगी।'

भुजबल को अपने संपूर्ण दुर्भाग्य का कारण समझकर शिवलाल ने व्यंग-स्वर में कहा—'आपका सब अंदाजा इसी तरह का है। मुख्तार साहब, मेम साहब को चैन से लेकर यहां पड़े हो, तुम्हें दूसरों की क्या चिंता? जान जाने की नौबत आ रही है।'

परन्तु अन्तिम अवस्था का कोई चिन्ह शिवलाल के मुख पर नहीं दिखलाई पड़ता था। उल्टे उस दिन भुजवल ने लक्ष्य किया कि बालों में तेल पड़ा हुआ है, और सँवारे हुये हैं। लम्बी मूँछें कटवाकर बहुत छोटी करवा डाली गई हैं जिससे प्रत्यागत यौवन का परिचय मिल रहा था।

भुजवल ने कहा—'मैं बहुत जल्दी प्रवन्ध करता हूँ। जहां हो सकेगा, वहां करूँगा। कसम खाता हूँ।'

'उससे भी अधिक चिंता मुझे आजकल एक और लग रही है।' शिवलाल ने गले को चिंता में घोलने की चेष्टा करते हुये कहा।

'वह क्या है?'

'उम्र बढ़ती जाती है, परन्तु इस स्त्री से कोई संतान नहीं होती दिखलाई पड़ती।'

'चिंता की बात तो अवश्य है। किन्तु ऋण-शोध के प्रस्तुत विषय से कोसों दूर है।'

'मेरा ऐसा ख्याल नहीं है। यदि आज मर जाऊँ, तो इतनी बड़ी जायदाद का कोई सँभालने वाला नहीं। जल-दान तक के लिये कोई नहीं।'

'खैर, इसकी बाबत पीछे सोचा जायगा।'

'नहीं भाई, इसका निवारण अभी करना होगा। मैं विवाह करूँगा।'

'विवाह !' भुजवल ने आश्चर्य के साथ कहा, और एक क्षण कुछ सोचकर बोला—'कर लीजियेगा। कुछ हर्ज नहीं, लड़की खोजकर यह भी हो जायगा।'

'लड़की है।'

'कौन ?'

'तुम्हारी साली। वही, जिसका—क्या नाम है ? टीपना मिले या न मिले, मैं दिलोजान से तैयार हूं।'

भुजवल के सिर पर मानो किसी ने पत्थर मारा। परन्तु बहुत देर सोच-विचार न करके बोला—'उसकी माँ किसी हालत में मन्जूर न करेगी।'

'मैं उसको या उसकी माँ को अपनी आधी जायदाद आज ही दे दूंगा।' शिवलाल ने निश्चय प्रकट करते हुये कहा—'और आधी जायदाद तुम्हें दे दूंगा, यदि तुम इसमें मेरी सहायता करो।'

इस प्रस्ताव पर भुजवल को कुछ समय तक सोच-विचार करना पड़ा। कुछ देर वाद बोला—'साहूकार क्या करेंगे ?'

शिवलाल ने उत्तेजित होकर उत्तर दिया—'घास खायें साले। मेरे वाप ने यह जायदाद इन हरामजादों के लिये थोड़े ही छोड़ी है। अब तुम्हारी दोस्ती और वफादारी को परखना है।'

भुजवल ने टूटे-फूटे स्वर में कहा—'मैं आज ही सिगरावन जा रहा हूं। मेरी सास वहीं पर हैं। मैं उनके सामने प्रस्ताव रक्खूंगा। यदि वह मान गईं, तो टीपना लेता आऊँगा।'

शिवलाल ने बहुत उत्साहित होकर कहा—'तुम्हारी जवांमर्दी देखनी है। परन्तु मैं टीपना-चीपना के झंझट में नहीं पड़ना चाहता। मिल जाय, तो वाह-वाह, और न मिल जाय, तो कुछ परवा नहीं।'

[३४]

इसके वाद भुजवल सिगरावन चला गया।

भुजवल उसी दिन सिगरावन पहुंचा, और अपनी सास से मिला।

'मैंने इन तीन-चार दिन में ही वर की खोज के लिये जितनी सिरखपी की है, उसको सुनकर तुमको अचरज होगा।' भुजवल ने कहा।

लंवे घूंघट को और भी लंबा खींचकर उसने कहा—'कोई वर मिला?'

'ललितसेन ने आग्रह के साथ विवाह के लिये कहा है। तुम्हें स्वीकृत है?'

घूंघट में से ही जलती आँखें दो उँगलियों के बीच में दिखलाते हुये वह बोली—'क्या हम गरीबों के साथ ठठोली करने आये हो?'

भुजवल ने कहा—'मैंने उनसे पहले ही कह दिया था। परन्तु जरा धीरज के साथ सुनती जाओ। दूसरा वर वह जमींदार है, जिसका मैं मुख्तार हूँ। आयु पचास के लगभग है। घर में एक स्त्री मौजूद है, और कोई नहीं है। जमींदारी वहुत है, लेकिन देखने में साठ साल का मालूम होता है।'

सास रोने लगी। रोते-रोते वोली—'हमारे भाग फूट गये हैं। तव तो इतना श्रम करने पर भी तुम्हें ये वर मिले हैं।'

भुजवल ने कहा—'और लोग भी मिले। आयु कम है। घर भी अच्छे हैं। उधर घर में वरावर तबियत खराव वनी रहती है। वैद्य कहते हैं, संतान का सुख देखने को न मिलेगा। न-मालूम कौन जन्म की रोगिन है। जमींदारी के इंतजाम और अदालती झगड़ों से जव कभी फुरसत मिलती है, तो कूलने-कराहने के मारे नाकोंदम आता है। यदि पूना के लिये और कहीं सुयोग न हुआ; तो उसकी वहिन का पुराना उजड़ा-सा घर फिर हरा-भरा हो जायगा। मगर कहते हैं, लड़की सयानी हो गई है।'

सास ने रुदन बंद करके कहा—'तब तो मैं इसी समय मर जाऊँ, तो अच्छा है, और धरती फट जाय, तो पूना भी उसमें समा जाय।'

भुजबल ने भरोसा दिलाते हुये कहा—'इतना घबराना नहीं चाहिये, मैंने एक बात सोची है।'

'वह क्या ?' सास ने उत्कंठित होकर पूछा।

भुजबल ने कहना आरम्भ किया—'पहले तो मैं भरसक पूना के लिये योग्य और सुपात्र वर ढूंढूंगा। इसके लिये एक महीना समय नियत किया है। ढूंढ़-खोज में आकाश-पाताल एक कर दूंगा। अधिक समय नष्ट करने की अब हिम्मत नहीं पड़ती। तुम्हारी तबियत दिनोंदिन बिगड़ती चली जा है। यदि तुम इस बीच में चल बसीं, तो बड़ी आफत होगी। पूना बराबर सयानी होती चली जा रही है। लोग-बाग सयानी लड़की के साथ यदि अपना विवाह न करना चाहेंगे, तो मैं ही फलदान ले लूंगा।' पूना की मां बहुत देर तक चुप रही। क्षणिक शांति के गर्भ में किसी उठते हुये तूफान का चिन्ह देखकर भुजबल ने तुरन्त कहा—'मेरी बात बिलकुल, बिलकुल अन्त में उठाने की आवश्यकता होगी। जहां तक मुझसे बनेगा, मैं ऐसा न होने दूंगा; जो कुछ आजकल दुःख भुगतना पड़ता है, भुगतता रहूंगा, परन्तु यदि और किसी तरह काम बनता न दिखलाई पड़ेगा, तो तुम्हें कष्ट में यों ही मरने न दूंगा।'

पूना की माँ ने क्षीण स्वर में पूछा—'और मास्टर, जिसके लिये तुमने एक बार कहा था।'

भुजबल ने चट उत्तर दिया—वह तो बिलकुल अयोग्य है। आजकल पागल-सा हो गया है। न मालूम दिन-रात किस सिड़ीपने में क्या सोचता हुआ घूमता रहता है। सिगरावन की पहाड़ियों में भी एक बार मैंने उसको मटरगश्त करते हुये और कुछ बड़बड़ाते हुये देखा था। उससे तो वह बूढ़ा जमींदार अच्छा है।'

पूना की मां ने घूंघट को फिर पीछे जरा-सा हटाकर कहा—'जो तुम्हें अच्छा दिखलाई पड़े, सो करो। और कहीं ठीक न हो सके, तो

तुम्हीं उसके पीले हाथ कर लेना। टीपना मिली-मिलाई रखी है। यदि तुमने पहले ही कहा होता, तो कुछ बात ही न थी। ललितसेन क्या कहेगा?'

भुजवल ने आत्मविश्वास के साथ कहा—'ओह, कुछ नहीं। वह बिलकुल हाथ के हैं। उनकी वहिन वहुत सीधी-सादी औरत है। पूना को किसी तरह का कष्ट न होगा।'

इतने में पूना ने एक दूसरे घर में से कुछ कर्कश स्वर में कहा—'माँ, तुम्हारी बात ही पूरी होने नहीं आती। जिनको खिलाना-पिलाना हो, खिला-पिला दो, नहीं तो मैं अपना और काम देखूँ।'

माँ धरती पर और फिर घुटने पर हाथ टेककर उठी, और कहा—'ठहरो, लिवाये लाती हूँ।'

फिर भुजवल से कहा—'चलो, रसोई तैयार है।'

[३५]

सिगरावन से आकर भुजवल सीधा ललितसेन के पास पहुँचा। ललित ने चकित होकर पूछा—'क्यों जी, आज दिन-भर कहां रहे? कुछ थके-से मालूम होते हो।'

'सिगरावन गया था।'

'सिगरावन काहे के लिये?'

'गत रात्रि की आपकी बातचीत ने भेजा।' ललित भुजवल के पास आकर बैठ गया।

बोला—'मैं यह नहीं जानता था कि तुम इतनी जल्दी मेरे लिये तत्पर हो जाओगे।'

भुजवल ने चेहरे पर हाथ फेरकर उत्तर दिया—'आपके निश्चयों से बहुत डरता हूँ, विलम्ब होने से यदि कोई बात ऐसी हो जाती, जो काबू की न रहती, तो न जाने आप क्या से क्या कहते इसलिये मैं उनके पास सवेरे ही उठकर चल दिया था। मैं आपके एक निश्चय के परिणाम को तो वैसे ही भोग रहा हूँ।'

'कौन-से निश्चय का ?' ललित ने कोमलता के साथ प्रश्न किया।

'वही' भुजवल ने उत्तर दिया—'पहले आपने कहा था कि शिवलाल की कुछ जमींदारी खरीद लेंगे, और फिर पीछे निश्चय प्रकट किया कि न लेंगे।'

'इससे तुम्हारे सिर कौन-सी आफत आई ?'

'आफत ? घोर संकट में पड़ गया हूँ। लोगों में शोर हो गया कि आप उस जमींदारी को खरीदने वाले हैं। किसी से फिर वात भी नहीं की। अव इजराय डिग्री की कार्रवाई में अदालत का इश्तहार नीलाम आ गया है। कोई खरीदने ही क्यों चला ?'

ललित देर तक कुछ सोचता रहा। इसके वाद वोला—'उस जमींदारी में कुछ फायदा है ?'

'है, और नहीं भी है।' भुजवल ने जवाव दिया—'यदि प्रवन्ध ठीक-ठीक किया जाय और व्यय परिमित हो, तो लाभ-ही-लाभ है, नहीं तो जमींदारी से वढ़कर दूसरी वला कोई और नहीं।'

'सिगरावन का क्या समाचार है ?' ललित ने पूछा।

भुजवल ने कहा—'अभी तो आशा कम है। उनकी समझ में आपका अटा-सटा नहीं आया। अपनी जाति में यह प्रथा नहीं है तो भी ऐसा करने में कोई हानि नहीं, यह वात उनके दिल पर इतनी जल्दी में नहीं विठलाई जा सकी। कुछ समय चाहिये। तव तक मुझे किसी तरह शिवलाल की जमींदारी को संकट से छुटाना है।'

ललित ने खूव हँसकर कहा—'शिवलाल को नहीं; वल्कि उसकी जायदाद को संकट से छुटाना है! मजेदार समस्या है। अच्छा, मैं तुम्हारे इस शुभ कार्य में सहायक वनूँगा। कव तक वैनामा हो जायेगा ?'

'अदालत की इजाजत लेकर इश्तहार नीलाम के राक्षस को विवश करने के वाद तव कहीं वैनामे की नौवत आ पावेगी। शिवलाल भी सनकी है। देखें, कहीं वह न वहक गया हो।'

'तब जाने दो।' ललित ने गम्भीर होकर कहा—'खुशामद करके बैनामा कराने की गरज नहीं है।'

'जायदाद यों ही नहीं मिल जाती। शिवलाल इस तरह का गधा है कि सब भले ही नाश हो जाय, परन्तु मूर्ख अपने हठ पर डटा रहेगा। इसमें हम लोगों का भी नुकसान है।'

'अच्छा, तो जो उचित समझो, करो। यदि वह बेचने पर राजी हो जाय, तो मैं खरीदने को तैयार हूँ। इससे अधिक और कह ही क्या सकता हूं ?'

'एक बात पूछता हूँ। यदि सास ने विवाह-सम्बन्ध से इनकार कर दिया, जिसकी इस समय आशंका नहीं है, तब किसी दूसरी जगह लड़की की खोज करनी पड़ेगी या नहीं ?'

'कदापि नहीं। विवाह करूँगा, तो वहाँ, नहीं तो कहीं भी नहीं। इस निश्चय में शिथिलता नहीं आवेगी।'

'बैनामा किसके नाम होगा ?'

यह बात भुजबल ने इस तरह से पूछी; जैसे कहने में बहुत संकोच और श्रम हुआ हो, और उक्त भाव को बहुत दबाने की चेष्टा की हो, परन्तु दबा न सका हो।

ललित प्रश्न समझ गया। उसे यह प्रश्न स्वाभाविक और उसका संकोच-नियंत्रण बहुत प्राकृतिक जान पड़ा। उसने सोचा, बहिन ने कहा होगा।

वह लापरवाही के साथ बोला—'चाहे जिसके नाम करा लेना, या बहिन के नाम हो जायगा। नहीं तो मैं अपने ही नाम करा लूंगा, अथवा कुछ जायदाद मेरे नाम और कुछ तुम अपने या बहिन के नाम करा लेना। किसी के नाम हो, प्रबन्ध का सारा भार तुम्हारे सिर पड़ना है, इसलिये जो उचित मालूम पड़े, कर लेना। परन्तु बैनामे से पहले मैं एक बार लहचूरा देखना चाहता हूँ।'

'यह तो बहुत आसान है।' भुजबल ने हर्ष-पूर्वक कहा।

[३६]

भुजबल ने जो योजना अपने दिमाग में तैयार की थी, उसे अग्रसर होता हुआ पाकर वह बहुत खुश था। इस योजना का अंतिम भाग कैसे सफल होगा, उसके विषय में भुजबल को अपनी अतीत संचित आंतरिक शक्तियों पर तो भरोसा था ही, और इस सीधी-सी बात पर और अधिक कि ललितसेन रतन का दूसरा विवाह करके भी मुझे कूड़ा-घर में न फेंक सकेगा। वह जानता था कि हिंदू-समाज पुरुष का दूसरा विवाह तो सहन कर जायेगा, परन्तु स्त्री का दूसरा विवाह असंभव कर देगा, और ललितसेन चाहे हिंदू-शास्त्रों को माने या न माने, न तो हिंदू-समाज को गर्दनिया सकेगा, और न रतन को पुनर्विवाह-जैसी अनहोनी बात के लिये राजी कर सकेगा।

रतन को, जिसे लोग पति का सुख कहते हैं, पूरा था; परन्तु प्रेम की पूजा उसकी हृद-वेदी पर कभी की गई या नहीं, इसे वह नहीं जानती थी।

जिस समय भुजबल अपने कमरे में गया, वह सो चुकी थी। वह भुजबल को चाहती थी। भुजबल ने कभी कोई बुरा व्यवहार उसके परन्तु वह उससे डरती थी। भुजबल ने कभी कोई बुरा व्यवहार उसके साथ न किया था, और उसे मालूम था कि भाई का आश्रित न होने पर भी, संबंध में बड़ा होने पर भी किसी बात में भाई से छोटा है, तो भी वह उससे डरती थी। भुजबल ने उसको जगाया। उठ बैठी। बोली–'बड़ी देर में आये? मैंने सोचा था, कहीं फिर न चले जायँ, इसलिये सो गई थी।'

भुजबल ने किसी अनियंत्रित सत्ताधारी सम्राट्-सरीखी चिंता में माथा सिकोड़कर और ठोड़ी पर हाथ रखकर कहा—'बड़ी परेशानी में हूँ।'

'क्या?'

'आज सिंगरावन जाना पड़ा था। मेरी जो साली पूना है, सयानी हो गई है। कहीं उसके विवाह का ठीक नहीं पड़ता। उसकी मां इसी फिक्र में बीमार हो गई है, और आजकल में चल बसे, तो अचरज नहीं। उसके लिये कहीं कोई वर नहीं मिलता।'

'है तो चिन्ता की बात, पर जो कुछ होना होगा, वही होगा।'

'बाबू ललितसेन उसके साथ विवाह करने को तैयार हैं, पर...'

रतन को पसीना आ गया। आश्चर्य के साथ बोली—'यह कैसे हो सकता है? धर्म के विरुद्ध है।'

भुजबल ने कहा—'वह इस तरह का धर्म नहीं मानते। पूना की मां कुछ राजी है, कुछ नहीं। दबाने से मान जायगी, परन्तु लोग क्या कहेंगे।'

'भैया मान जायेंगे?'

'मानें या न मानें, पर तुम उनसे चर्चा न छेड़ना, मेरी कसम है।'

रतन ने बहुत नम्रता के साथ कहा—'मैं उनसे कभी न कहूँगी, पर उन्होंने खुद कहा, तो क्या करूँगी?'

'कह देना, धर्म के विरुद्ध है, और कुछ कहने की जरूरत न होगी।'

रतन ने तुरन्त स्वीकार कर लिया। भुजबल बोला—'बाबूजी कुछ जमींदारी खरीदना चाहते हैं।'

'पहले तो बँगले बनवाने के लिये कह रहे थे।'

'अब कुछ रुचि जमींदारी की तरफ हुई है। तुम्हारे या मेरे नाम से खरीदना चाहते हैं।'

'मेरे नाम से! मैं जमींदारी का क्या जानूँ? मुझे इस आफत से बचाना। कहो, तो मैं पहले ही उनसे कहकर उसका निवारण करलूँ।'

'नहीं, अभी कुछ मत कहना।' फिर कुछ सोचकर कहा—'यदि वह स्वयं हठ करें, तो मान लेना, इनकार मत करना।'

'यह तो मुझ से न होगा।' रतन बोली—'आप अमर रहें, मुझे जमींदारी का क्या करना है।'

भुजवल ने सन्तुष्ट हँसी हँसकर कहा—'नहीं, मैं जो कह रहा हूँ, वह मानो। मैं उनके स्वभाव को खूब जानता हूँ। उनकी इच्छा का जब अवरोध होता है, तब वह कभी-कभी न-मालूम क्या-क्या नतीजे पर पहुंच जाते हैं। तुम्हारे नाम से खरीदेंगे, तो वह मेरे ही नाम से खरीदने के बराबर होगा।'

रतन चुप हो गई।

[३७]

दूसरे दिन जब भुजवल के आने में शिवलाल को कुछ देर दिखलाई पड़ी, तब उसने किसी के द्वारा उसको बुलवा भेजा।

भुजवल के आने पर उसने पूछा—'क्यों भाई, क्या जवाब ले आये? है कुछ आशा, या तड़पते-तड़पते ही प्राण खोने पड़ेंगे?'

'आशा है।' भुजवल ने उत्तर दिया—'परन्तु शर्त बहुत कड़ी है।'

'वह क्या है?' शिवलाल ने उतावली के साथ पूछा—'जवांमर्दों के लिये विघ्न-बाधा कोई चीज नहीं।'

'यह मैं जानता हूँ।'

'फिर बतलाओ न कि वह कौन-सी शर्त है।'

'उसकी माँ ने कहा है कि लड़की को कुछ जायदाद ब्याह के पहले ही देनी पड़ेगी।'

'ब्याह के पहले ही जायदाद देनी पड़ेगी? यानी जर-जेवर?'

'नहीं, कुछ जमींदारी?'

शिवलाल सोच में पड़ गया। भुजवल ने कहा—'कुछ जमींदारी की रजिस्ट्री उसके हक में करानी होगी।'

'बख्शिशनामा!'

'जी नहीं।'

'तब क्या, पट्टा!'

'पट्टा नहीं, बैनामा। फर्जी दस्तावेज।'

'बख्शिशनामा क्यों नहीं?'

'इसलिये, जिसमें लोग यह न कह सकें कि माँ ने लड़की को बेचा है।'

'क्यों बख्शिशनामा तो लड़की के नाम से होगा ?'

'मगर वह तो कानून की दृष्टि में नाबालिग है। वली सरपरस्त तो उसकी माँ ही रहेगी।'

'बैनामे में वली सरपरस्त कौन होगा ?'

'उसकी मां।'

'और यदि बख्शिशनामा करूँ, और वली सरपरस्त खुद बना रहूँ, तो ?'

'यह असम्भव है, उसकी मां इस ढर्रे पर नहीं चढ़ेगी।'

शिवलाल देर तक सोचता रहा। तब तक भुजबल कई बार छत की ओर मुंह उठाकर कह गया—'बड़ी मुश्किल है ! बड़ी आफत !'

शिवलाल ने बड़ी होशियारी से बात करने का ढंग दिखलाते हुये कहा—'अदालत का हुक्म इम्तनाई जो सिर पर खड़ा है, बैनामा या कोई नामा कैसे लिखा जा सकता है ?'

भुजबल ने सरलता के साथ उत्तर दिया—'यह तो कोई बड़ा विघ्न नहीं है। बाबू ललितसेन के यहाँ कुछ जमींदारी बेच डालिये। कुछ जमींदारी फर्जी बैनामे के जरिये उस लड़की को दे दीजिये। कुछ अपने नाम रखिये। आखिर वह जमींदारी भी तो आपके ही पास रहेगी। वह लड़की उसे लेकर कहीं भाग तो जायगी नहीं।'

शिवलाल भुजबल की ओर देखने लगा, और कुछ सोचने लगा।

भुजबल ने हाथ की उँगलियां मोड़ते हुये कहा—'मैं बड़ी घबराहट में हूँ कि इस गोरख-धन्धे में कहाँ से आकर फँस गया। टोह में तो था साहूकारों का कर्ज पटाने और निर्वाह के लिये कुछ रुपया खड़ा करने की, परन्तु मारा-मारा फिर रहा हूँ वर-वधू की जन्म-कुण्डलियां मिलाने में।' और सिर हिलाकर हँस दिया।

शिवलाल ने कहा—'भाई, मेरे लिये जैसा इतना कष्ट सहा, थोड़ा और सह लो।'

फिर एक क्षण बाद बोला—'तो लड़की की मां इस बैनामे से कम में राजी नहीं होती ?'

'नहीं।'

'यह विचित्र खेल उसे सुझाया किसने होगा ?'

'मैंने। शायद आपके मन में इस समय यही शंका उठ रही होगी। यदि वास्तव में ऐसा है, तो इस विषय को ख़त्म करिये। मैं सौगन्ध खाकर कहता हूँ कि ये सब बातें मैं अपने मन के खिलाफ कर रहा हूँ, परन्तु आपकी मर्जी रखने के विचार से इस कीचड़ में पैर डाले हैं।'

शिवलाल कुछ डर-सा गया, बोला—'लो, तुम नाराज हो गये। अच्छा भाई, मैं वचन देता हूँ, पर बात तो पक्की है ?'

'बिलकुल पक्की, बैनामे से एकाध महीने के भीतर ही ब्याह हो जायेगा, भगवान् साक्षी हैं।'

'तब फिर साहूकारों का रुपया अदा करने के लिये पहले ललितसेन के यहां बैनामा करो, जिससे कुछ रुपया भी हाथ आवे, और अदालत से खलासी हो जाय। वधू के लिये कुछ जेवर भी बनवाने पड़ेंगे। न्योते-बुलावे में भी कुछ खर्च करना पड़ेगा। किसी मरभुक्खे का तो ब्याह है नहीं।' शिवलाल ने उत्साह के साथ कहा।

भुजबल बोला—'उसका बन्दोबस्त शीघ्र ही करता हूं। आपको एक दिन मऊ चलकर कुछ कागजों पर दस्तखत-भर करना पड़ेंगे। सिर्फ इतना ही कष्ट।'

शिवलाल ने कहा—'इसकी कुछ परवा नहीं। इसके लिये कोई दिन नियुक्त कर लीजिये।'

'मेरे लिये तो सब दिन बराबर हैं।'

शिवलाल हँसकर बोला—'अपने नाजुक-दिमाग सालारजंग से दिन मुकर्रर करवा लो।'

भुजबल भी हँसकर बोला—'आपने खूब कहा। जिस-जिस जमींदारी को वह खरीदना चाहते हैं, उसकी सूची बनाकर देनी पड़ेगी। फिर बैनामा भी उसका एक न होगा। कुछ अपने नाम से खरीदेंगे, कुछ अपनी बहिन के नाम से और कुछ को शायद मेरे नाम से। साहब, ऐसा खब्तुलहवास आदमी मुश्किल से कहीं मिलेगा। परन्तु मैंने एक बात सोची है। यदि आप मान जायँ।'

'वह क्या ?' शिवलाल ने पूछा।

'आप जितनी जमींदारी उस लड़की को देना चाहें, वह चाहे बहुत न हो, परन्तु सबसे अच्छी हो। उससे कम अच्छी ललितसेन को।' भुजबल ने उत्तर दिया।

'और सबसे कम अच्छी मैं अपने लिये रक्खूं!' शिवलाल ने खूब हँसकर कहा—'परन्तु मेरी स्त्री के पास जो जमींदारी रहेगी, वह असल में रहेगी तो मेरी ही। अच्छा भाई, मंजूर है। और, यह भी मंजूर है कि चाहे ललितसेन एक बैनामे से जमींदारी का भाग खरीद लें, और चाहे दस बैनामों से, मुझे कोई उज्र नहीं। चाहे जिसके नाम से लें, परन्तु जो कुछ करना हो, जल्दी करें, क्योंकि अदालत के जरिये नीलाम हो जाने से फिर चारों ओर अँधेरा ही अँधेरा छा जायगा।'

[३८]

उस दिन भुजबल के सिंगरावन से चले जाने के बाद पूना और उसकी मां दोनों से भोजन अच्छी तरह न किया गया। देर तक एक दूसरे से किनारा-सा खींचे रहीं। एक दूसरी से कुछ बात भी करती थीं, तो अत्यन्त असाधारण विषयों पर और बड़ी सावधानी के साथ। दोनों शंकित-सी थीं। परन्तु किसी ने एक दूसरे से किसी तरह की शंका का कोई कारण नहीं पूछा। थोड़ी ही देर में इतनी बड़ी दूरी दोनों के बीच में पड़ गई कि सबसे पहले शायद मां उस अंतर की प्रबलता से विपण्ण हो गई।

उसने पूना से कहा—'मेरी तवियत आज कुछ अच्छी नहीं है। ऐसा मालूम होता है कि वीमार पड़ना चाहती हूं।'

पून भी विह्वल-सी थी। पूछा—'क्यों मां, अकस्मात् तवियत क्यों खराव हो गई है?'

'कारण समझ में नहीं आता।' मां ने कहा—'जी तो वैसे भी वहुत दिनों से अच्छा नहीं रहता।'

इस तरह की वात पूना कई वार सुन चुकी थी, इसलिये चुप रही।

मां खटिया पर जा लेटी। प्यार से वोली—'जरा मेरा अंग दवा दो पूना।'

पूना दवाने लगी।

मां रोने लगी, पूना भी रोने लगी। परन्तु पूना ने कारण न पूछा।

मां ने अपने आंसू पोंछकर कहा—'वेटी, तू क्यों रो रही है?'

पूना ने उत्तर दिया—'मां, तुम्हें रोते देखकर। न-जाने तुम क्यों सदा रोती रहती हो।'

मां सहसा खटिया पर से उठ वैठी। वोली—'क्या करूं, कुछ कहते नहीं वनता। यदि आज के दिन तेरे वाप वने होते, तो—' मां फिर रोने लगी।

पूना ने कहा—'मां, तुम इस तरह रोया मत करो। सवके पिता परम पिता भगवान तो हैं। उन्हीं का नाम सुमिरना चाहिये।'

'हां वेटी।' मां ने कहा—'वहुत सुमिरन किया, परन्तु कुछ भी फल नहीं दिखलाई पड़ता। भाग्य ही खोटा है कि उसका कोई सुधारने वाला नहीं जन्मा।'

'ऐसा मत कहो।' पूना ने कहा—'अभी तक जिसने पार लगाया, वही आगे भी पार लगावेगा।' और पूना के दिव्य मुख पर एक अनोखी दीप्ति का मंडल-सा वन गया।

मां ने उसके सयानेपन का यह एक और प्रमाण पाकर कहा—'दिन काटे नहीं कटते, इस पर भी संसार आगे वढ़ता चला जा रहा है।'

पूना ने कुछ नहीं कहा।

मां बोली—'मेरे मरने के बाद तुम्हारा क्या होगा ?'

पूना ने दृढ़ता के साथ कहा—'यह बात तुम मुझसे मत कहा करो मां। अब यहां और अधिक दिन मत रहो। अपने घर चलो। घर का काम-धंधा खराब हो रहा होगा। भैंसें भूखों मर रही होंगी। आंगन में कूड़ा-कर्कट का ढेर लग गया होगा। खेती खड़ी उजड़ रही होगी। कटाई का समय आ रहा है। सब प्रबन्ध करना है। अपने लिये तो दयालु भगवान ने इतना काम दिया है कि और बातों के सोचने का समय ही नहीं है। तुलसी जी बिना पानी के सूख रही होंगी उनकी भी मां, तुम्हें चिन्ता है या नहीं ?'

'सूखने दो।' मां ने कुछ कड़ाई के साथ कहा—'खाक हो जाने दो। बहुत पानी डाला, पूजा की, कुछ भी फल नहीं हुआ।'

'ऐसी बात मत कहो, मां।' पूना ने कुछ भय-विकल स्वर में कहा—'मन की अवस्था पर किसी तरह की विपद का कोई बुरा प्रभाव न पड़ना चाहिये।'

मां ने धीरे से कहा—'बेटी, मैंने जो सोचा है, वह तुम्हें बतलाना चाहती हूँ। तुम सयानी हो गई हो, नहीं तो कुछ न कहती।'

'कुछ न कहो। अभी आराम करो। जब मन अच्छा हो जाय, तब कुछ कहना।' पूना ने मां के अङ्ग दबाते-दबाते कहा।

मां कुछ नहीं बोली। हिम्मत नहीं पड़ी। सोचा—'इसने बातचीत सुन तो नहीं ली ? सुन भी ली हो, तो क्या ? परन्तु फिर किसी दिन मऊ-सहानिया चलकर कहूँगी।' बोली—'घर बहुत जल्दी चलेंगे बेटी।'

[३९]

भुजबल बहुत प्रसन्न था। ललित भी प्रफुल्ल-मन दिखलाई पड़ता था। शिवलाल और ललित के बीच में अब कोई जाहिरी बैर-भाव न मालूम होता था, और शिवलाल भी काफी खुश था। इस मानसिक

अवस्था में तीनों झाँसी आये। अदालत से बैनामा के करने की इजाजत ले ली, और मऊ में आकर रजिस्ट्री करा दी। दो गाँवों का बैनामा पूना के नाम से हुआ। तीन का ललित के नाम से, दो का रतन के और एक का भुजबल के नाम से हुआ। भुजबल असन्तुष्ट न था। वह सोचता था कि पाँच गाँव का असल में बैनामा उसके नाम से हुआ है। पूना वाले गाँव भी तो आखिर मुझी को मिलेंगे, यह भुजबल ने सोचा।

यह तो सब सहज ही हो गया, पर आगे खेल की सभी चालें कठिन हैं, और बड़ी सावधानी तथा बड़े पुरुषार्थ के साथ खेलनी पड़ेंगी, यह विचार करता हुआ भुजबल अपने दोनों साथियों के संग छावनी लौट आया।

दूसरे दिन जब शिवलाल के मकान पर भुजबल उसके साथ किसी ब्योंत की उधेड़-बुन में उलझा हुआ था, बुद्धा आया। इसकी जमीन-जोत भुजबल के बैनामे में आकर पड़ी थी।

देखते ही भुजबल ने तेज होकर कहा—'क्यों बे सुअर, किसलिये आया है?'

'तुम तो बाबू जी गाली देते हो, न जाने क्या आदत पड़ गई है।' बुद्धा ने नम्रता-पूर्वक प्रतिवाद किया।

भुजबल के ऊपर उसका वही प्रभाव पड़ा, जो हिम-सदृश मिट्टी के तेल के छिड़काव का आग पर पड़ सकता है।

गरम होकर बोला—'वह कमबख्त पैलुआ आया होता, तो आज सचमुच उसे कच्चा खा जाता। तू अपनी कुशल चाहता हो, तो लहचूरा लौटकर मत जाना, और यहाँ से भी अभी चला जा। एक पैसा भी नहीं छोड़ूंगा, और जमीन से तो तुम लोग अपने को बेदखल समझो ही।'

बुद्धा ने उसी पौर में हठपूर्वक बैठते हुये कहा—'अगर मारना ही चाहोगे, तो किसी दिन मरना है, मार डालो।'

'क्यों बे हरामजादे, यहां से जायगा या धक्के देकर निकालूं ?' भुजवल ने खड़े होकर धमकी दी।

शिवलाल ने बीच-बचाव करने की नियत से दयालुता दिखलाते हुये कहा—'जाने भी दो भाई साहब, अब तो यह तुम्हारी ही रियाया है। रुपया तो देगा ही। बिना दिये कहां छूटकर जायगा। हँसी-खुशी में रंज मत करो।'

बुद्धा ने कुछ आड़ पाकर कहा—'मैं तो मालिक के पास फरियाद के लिये आया था। यह बीच में ही पत्थर पटकने उठ बैठे।' और बैठे बैठे सिर को गर्दन में सिकोड़कर कुछ दीन मुस्कराहट और कुछ निर्बल ढिठाई के साथ भुजवल की ओर देखने लगा। यह भुजवल से न सहा गया।

वज्र-नाद करके बोला—'अबे हरामजादे, अब मैं मालिक हूं। साला पाजी, हँसता है। हमें उल्लू समझता है!' और, एक लकड़ी उठाकर बुद्धा को जोर से मारने लगा।

बुद्धा कहता जाता था—'मैंने क्या किया ? मैंने क्या किया ?' और, भुजवल उसे मारता ही चला जाता था। फिर कुछ न कह सकने के कारण बैल की तरह डकार डकार कर रोने लगा। पड़ोस के आदमी हल्ला सुनकर दरवाजे के पास जमा हो गये, पर भीतर कोई न आया, और न किसी ने बाहर से ही कुछ कहा।

शिवलाल ने यह समझकर कि कहीं अधिक मार के कारण मर न जाय, भुजवल से कहा—'बस करो, मर जायगा।'

'मर जाय।' भुजवल ने हांफते-हांफते कहा—'मैं इसे और इस तरह के सब आदमियों को यह स्पष्ट बतला देना चाहता हूँ कि मैं जिस बात का निश्चय कर लेता हूँ, वह पूरी है, और रोप का दबाना भी जानता हूं, और यमराज का-सा क्रोध भी दिखलाना जानता हूँ।' और अर्द्धचेत बुद्धा को लाठी और लातों से दरवाजे के बाहर कुत्ते की तरह फेंक दिया।

अब एक पड़ोसी ने कहा—'क्यों साहब, क्या बात है ?'

दूसरे ने कहा, 'मैं भी यही पूछना चाहता था। इसने क्या किया था ?'

कई कंठों से यही बात निकला। परन्तु क्रोध किसी को आया न दीखता था।

भुजबल ने कुछ शांत होकर, परन्तु खुर्राये हुए स्वर में कहा—'यह साला चोर है, चोरी करने आया था, इसीलिये इतना मारा। अगर जब्त न कर लेता, तो आज इसे मार ही डालता।'

'चोर नहीं है।' एक नवागंतुक के कंठ से पैनी आवाज में बात निकली—'बेचारा गरीब किसान है, मैं इसे जानता हूँ। मैंने कई बार देखा है।'

सब लोगों की निगाह इसी की तरफ गई। भुजबल ने भी देखा। अजितकुमार था। भुजबल कुछ नरम होकर बोला—'आपको इन झगड़ों में पड़ने की जरूरत नहीं मास्टर साहब। आप अपना काम देखिये।'

'दुनियां में अब सिवा इन झगड़ों के मुझे कोई और काम नहीं है।' अजित ने कहा, और बुड्ढा के पास जाकर उसे देखने लगा। बोला—'अभी जीवित है। मैं इसे अस्पताल ले जाऊँगा। क्या आप लोगों में से कोई एक गाड़ी देंगे ?'

भुजबल ने जरा अकड़कर कहा—'आपको उसके ऊपर कोई अधिकार नहीं है। यह मेरा जोता है। बदमाशी करता था, इसलिये मारा।'

तमाशा देखने वालों में से एक बोला—'आसामी है। देने-लेने में तंग करता होगा, इसलिये मार दिया। कोई बड़ी बात नहीं हुई। जरा-सा पानी छिड़को, और हवा कर दो, अभी अच्छा हो जायेगा, और पीछे पक्के एक सेर की रोटियां खिला देना, हँसने-खेलने लगेगा। रोज ही हुआ करता है।'

यह सुव्यवस्था सबको पसन्द आई। तमाशे में ज्यादा दिलचस्पी का कारण न देखकर और बैलगाड़ी की इल्लत तथा किसी अनिश्चित तहकीकात और गवाही-साखी की आशंका देखकर पड़ोसी लोग खिसकने लगे। परन्तु अजित न हटा। कठोरता के साथ बोला—'कुछ तो दया करो। जरा तो धर्म चीन्हो। एक गरीब मर रहा है, और तुम टाला-टूली करके घर भाग रहे हो। बैलगाड़ी न मिलती हो, तो आदमी ही आगे बढ़ आओ। इसे लेकर अस्पताल चलें।'

यह प्रस्ताव अजित को भले ही बैलगाड़ी वाले प्रस्ताव की अपेक्षा कुछ अधिक सहज और सुगम जान पड़ता हो, परन्तु इसका जो कुछ प्रभाव सुनने वालों पर पड़ा, वह यह था कि तमाशबीनों की संख्या वहां पर जल्दी करीब-करीब शून्य रह गई। केवल थोड़े-से आवारा लड़के खड़े रह गये।

भुजबल ने अपनी पूर्ण विजय का अनुभव करके मीठा गला करके कहा—'मास्टर साहब, आप नाहक हैरान न हों। यह आदमी हमको जन्म-भर हैरान करने के लिये अभी बहुत जियेगा। आप जायें। होश में आने पर वह फिर इसी घर में आवेगा, और वास्तव में यह चेत में है। महज मक्कारी कर रहा है।'

'कभी नहीं।' अजित ने दृढ़ता के साथ कहा—'मैं अकेले इसे अस्पताल ले जाऊंगा।'

'आपको उससे कोई ताल्लुक नहीं।'

'सो मैं दिखलाये देता हूँ।' और तुरन्त अजितकुमार बुद्धा को गठरी की तरह हाथों में लेकर वहां से चल पड़ा। शिवलाल आंखें फाड़ता हुआ दरवाजे पर अवाक् खड़ा रह गया।

भुजबल ने बड़बड़ाते हुये कहा—'इसे देखूंगा। परन्तु कोई मुकद्दमा नहीं चल सकता। गवाह नहीं मिलेंगे।'

अजित बुद्धा को थोड़ी ही दूर लेकर चला होगा कि उसे कुछ होश आया। कराहते-कराहते बोला—'कहां लिये जाते हो ?'

'अस्पताल।'

'न जाऊँगा।'

'वहाँ जल्दी अच्छे हो जाओगे। चैन से रहोगे।'

'नहीं नहीं, वह लोग मार डालेंगे। वहाँ तो नहीं जाऊँगा। क्यों मारे डालते हो?'

बहुत-से लड़के इस विचित्र तमाशे को देखते हुये पीछे हो लिये। अजित का मन खीझ-खीझ उठने लगा।

वुद्धा ने कहा—'अस्पताल मत ले चलो। सिगरावन पहुंचा दो।'

अजित ठिठक गया। लड़कों ने चारों ओर से घेर लिया।

वुद्धा ने फिर कहा—'अस्पताल न जाऊँगा। हा, हा, मेरे प्राण बचा लो। मुझे सिगरावन पहुँचा दो।'

अजित ने कहा—'अच्छा, यही सही। पहले तुम्हें अपने घर लिये चलता हूँ। फिर गाड़ी का बंदोबस्त करके सिगरावन ले चलूंगा।' अजित उसे अपने घर ले गया। फिर लड़कों ने अधिक पीछा नहीं किया।

लोगों ने भी घर जाकर अपनी पूर्व व्यवस्था में संशोधन कर दिया। 'भुजबल ने बुरा किया। इतना नहीं मारना चाहिये था। मास्टर अच्छा आदमी है। दया को पहचानता है।' परन्तु मन ही मन।

[४०]

अजितकुमार ने वुद्धा की, अपने घर लाकर, सावधानी के साथ सुश्रूषा की। थोड़ा-सा दूध पिलाया। उसे मुंदी चोटें बहुत लगी थीं, और ज्वर हो आया था, इसलिये अजित जरा चिन्तित हुआ। अन्त में वह बैलगाड़ी किराये पर करके उसे सिगरावन ले गया। दिन नहीं डूबा था, जब वह गांव में पहुंच गया।

उसे गांव वालों ने घेर लिया। सवाल करने शुरू किये। अजित को भुजबल की रिश्तेदारी का हाल मालूम था, इसलिये उसने आहत करने वाले का नाम न लेकर और बाकी सब गई-गुजरी सुना दी—केवल यथाशक्ति अपने काम के बखान को बचाया। परन्तु लोगों ने कल्पना

कर ली। बुढ्ढा को इतने जोर का बुखार चढ़ आया था कि वह स्वयं कुछ न कह सकता था।

पैलू सब समझ गया। उसने निर्णय कर लिया कि सिवा भुजबल या शिवलाल के और किसी ने यह दुर्गति न की होगी।

निराला पाने पर पैलुआ ने अजित से धीरे से पूछा—'शिवलाल या भुजबल ? किसने ?'

'पीछे बतलाऊँगा।' अजित ने उत्तर दिया—'अभी इसे देखो।'

बुड्ढे की आँखें जल उठीं। बोला—'अबकी बार मारकर मरूँगा। बहुत दिन जी लिया। इसे अच्छा हो जाने दो।'

फिर दोनों में कोई बातचीत नहीं हुई। थोड़ी देर में एक अपरिचित पुरुष अजित के पास आया। अजित उसी घर में ठहर गया था, जहाँ पैलुआ और बुढ्ढा थे।

आगन्तुक ने कहा—'आप छावनी से आये हैं ?'

'जी हां। कहिये।'

'आप वैद्य हैं ?'

'नहीं तो।'

'परन्तु कुछ वैद्यक तो अवश्य जानते होंगे। मेरी बहिन की बहुत बुरी हालत हो रही है। उसको जरा चलकर देख लीजिये। शायद आपके स्पर्श से ही कुछ लाभ हो। लोग गाँव में आपका बड़ा गुणगान कर रहे हैं।'

'मैं सचमुच कुछ भी नहीं जानता हूँ। परन्तु आपके साथ चलूँगा अवश्य, और जो कुछ सेवा बने, उसके करने में कोई कोताही नहीं करूँगा। जरूरत पड़े, तो छावनी से डॉक्टर या वैद्य को लिवा लाऊँगा।'

उस व्यक्ति ने निःश्वास परित्याग करके कहा—'शायद ही, हालत बहुत बुरी है, परन्तु शायद उनके भाग्य में आपके हाथ का यश लिखा हो!'

अजित उस व्यक्ति के पीछे हो लिया, वह बिलकुल पास के एक मकान में अजित को ले गया। दरवाजे से लगा हुआ एक तरफ चबूतरा था, और उस पर नीम का पेड़।

रोगी की चारपाई के पास अजित ने जाकर अवस्था देखी। दिया टिमटिमा रहा था। चारों ओर से हवा और रोशनी के रुकाव के लिये फटे कपड़ों के पर्दे डाल दिये गये थे। इसलिये अन्धकार और भी घनिष्ट था। देर तक वस्तु परिचय न हो सका।

रोगी को देखते-देखते अजित ने खटिया के पास ही एक सिमटी हुई सी किसी ढकी हुई चीज का रुंधा हुआ करुण रोदन सुना। उस ओर देखा। मुंह खुला हुआ था, परन्तु दूसरी ओर, इसलिये पहिचान न सका। बोला—'ये पर्दे हटा देने चाहिये। पवन और प्रकाश के रोकने से भी रोगी की दशा बुरी हो जाती है।'

परन्तु इस सलाह को किसी ने नहीं माना।

रोगी में दम बाकी था। परन्तु जाने में अधिक विलम्ब न था।

अजित ने पूछा—'आप कहें, तो मैं अभी दौड़कर किसी वैद्य को बुला लाऊं? शायद बच जायं।'

इतने में रोगी के मुंह से निकला—'पूना—बेटी!' स्वर बहुत क्षीण था। परन्तु न जाने क्यों अजितकुमार कुछ चौंक-सा पड़ा। शायद उसके स्मृति-पटल को किसी नाम ने जरा-सा हिला दिया।

और पास बैठी हुई दूसरी ओर मुंह किये जो एक लड़की धीरे-धीरे सिसक रही थी, वह निस्संकोच भाव से रोगी की ओर खुला हुआ मुंह किये खिसक आई, और बहुत ही कोमल स्वर में बोली—'मां, मैं यह हूँ।'

अजितकुमार ने पहिचान लिया। पूना थी, और मृत्यु-शय्या पर उसकी मां। जिस दिन भुजबल उससे बातचीत करके छावनी गया, उसी दिन से वह बीमार पड़ गई थी। फिर कभी न उठी।

रोगी ने पूना के सिर पर हाथ फेरने को उठाया। बीच में ही खिंचकर रह गया। पूना समझ गई। वह और भी पास जाकर सट गई। फिर हाथ उठा। परन्तु पूना को छू-भर गया। सिर तक न पहुँच सका।

रोगी के मुंह से बहुत क्षीण स्वर में निकला—'मास्टर—पूना'—सबने सुन लिया, परन्तु शायद ही किसी ने ठीक-ठीक समझा हो।

अजित को बड़ा आश्चर्य हुआ। उसने सोचा—'रोगी अभी बहुत सचेत है। मुझे एक बार इसने मऊ-सहानिया में देखा था, अब भी भूली नहीं है।' बोला—'घबराने की बात नहीं है। मैं ही वह मास्टर हूँ। यहां तुम्हारे सामने खड़ा हूँ। अच्छी हुई जाती हो। बेचैन मत हो। मैं सेवा करने को आ गया हूँ। निश्चिन्त हो जाओ।'

परन्तु रोगी ने नहीं सुना। जोर से ऊर्ध्व श्वास चलने लगी। पूना करुण क्रन्दन करने लगी। जो व्यक्ति अजितकुमार को बुद्धा के पास से लिवा लाया था, पूना का मामा था। बोला—'बेटी, रोओ मत। जो भाग्य में होता है, वही होकर रहता है। रोओ मत। शायद अच्छी हो जायें। जब तक सांस, तब तक आस।' परन्तु न तो रोगिणी अच्छी हुई, और न पूना का क्रन्दन बन्द हुआ। थोड़ी देर में पूना की मां परलोक-गामिनी हो गई!

जगह-जगह चर्चा होने लगी—'बड़ी भली थी। ऐसी जल्दी प्राण निकल गये! मरने में कोई कष्ट नहीं हुआ। ठीक मरते-मरते क्षण तक खूब बातचीत करती रही।'

जो गाँव वाले दिन-भर की मेहनत-मजदूरी के मारे अपने-अपने घरों में दाखिल हो चुके थे, वे भी मृतक के सम्बन्धियों के पास आ बैठे।

पूना का रोना-पीटना बन्द न हुआ। मृतक मां से लिपट-लिपटकर रोने लगी।

अजित वहीं पर बैठा था। पूना का परिचित होने के कारण और इस कारण भी कि पूना की मां ने मरने से पहले उसे याद किया था, वह वहां से चले आने की इच्छा रखते हुये भी उठ न सका। पूना को

वार-वार शांत करने की चेष्टा करता था परन्तु पूना के अधैर्य का पार न था।

पूना का मामा भी पास खड़ा था। वह रो चुका था, और अव क्या करना चाहिये, केवल यही सोच रहा था। वोला—'लाला, भुजवल को नयेगाँव छावनी से तुरन्त वुला लेना चाहिये।'

पूना का रुदन तुरन्त वंद हो गया—'नहीं, अभी मत वुलाओ मामा काहे को वुलाते हो?'

'न वुलाऊँगा, तो वुरा मानेंगे। सवेरे दाह होगा। उसमें उनका शरीक हो जाना अच्छा होगा। न वुलाने से वुरा मानेंगे।'

पूना ने क्षीण स्वर में कहा—'मत वुलाओ। कोई अटक नहीं है। दाह करने के लिये गांव-भर है। मास्टर साहव भी हैं ही।'

मामा चुप हो गया।

पूना फिर रोने लगी। घर की औरतें वाहर से ही रो रही थीं। उनकी भीतर आने की इच्छा अवगत करके अजित और पूना के मामा वाहर निकल आये। स्त्रियां पूना को रो-रोकर समझाने-वुझाने लगीं।

[४१]

यद्यपि पूना ने मना कर दिया था, तो भी उसके मामा ने छावनी से भुजवल को वुला भेजा। ललितसेन का वहनोई होने के कारण भुजवल की गणना रिश्तेदारी में वड़े आदमियों में हो चुकी थी।

दाह-संस्कार के लिये सव लोग उसके आने तक रुके रहे।

अजितकुमार को वहाँ देखकर भुजवल को आश्चर्य की अपेक्षा क्रोध अधिक हुआ। परन्तु उसने प्रकट न तो आश्चर्य को ही किया, और न क्रोध को। उपेक्षा करके उससे वोला भी नहीं।

छावनी में भुजवल को मालूम हो गया था कि अजित वुड्ढा को सिगरावन ले गया है। वह इस ओर से निश्चित सा था। जानता था कि वुड्ढा कुछ न कर सकेगा।

उसको अपने मंसूबों के पूर्ण सफल होने में बहुत संदेह नहीं था, परन्तु कुछ अकारण ही अजित का स्मरण उसे कभी-कभी बेचैन-सा कर देता था।

दाह क्रिया से फारिग होने के बाद भुजबल सिगरावन में ही रह गया, और तेरहीं तक वहीं बना रहा। दो-एक मर्तबे छावनी गया भी, तो जल्दी लौट आया।

अजितकुमार एक ही दिन बाद चला गया था। परन्तु बुद्धा की दवा-दारू के लिये वह दिन में एक बार अवश्य हो जाता था। घूमने-टहलने के लिये वह स्थान उसे बहुत भला मालूम हुआ। सिगरावन के तालाब के किनारे और उसके सामने की चकरई पहाड़ी पर बहुधा कुछ देर बैठकर लौट जाया करता था।

बुद्धा की चोटें तो अच्छी हो गई थीं, परन्तु बुखार न टूटा था। अजितकुमार को उसकी चिंता थी। अजितकुमार के पास रुपया-पैसा बहुत कम था, परन्तु किसी का कर्जदार न था। उसी में से वह बुद्धा के लिये खर्च करता था। पैलू और बुद्धा जिस नातेदार के घर ठहरे हुये थे, वह भी एक साधारण दरिद्र किसान था, परन्तु बेमुरव्वत न था, तो भी बिना अजित की सहायता के वह बुद्धा को आश्रय नहीं दे सकता था। पैलू अपने नातेदार को खेती-किसानी में मदद देकर दिन काट रहा था।

तेरहीं हो जाने के बाद भुजबल ने पूना से कहा—उसका मामा भी वहाँ मौजूद था—'तुम हमारे साथ छावनी चलो।' और उसके मामा से कहा—'विवाह का यदि ठीक-ठाक हो गया, तो वहीं होकर हो जायगा। और, यदि यहाँ के लिये इनका मन न बोले, तो मऊ लिवा जायँगे। वहाँ पर सब लोग-बाग हैं।'

'मैं वहाँ नहीं जाऊँगी। मामा के पास बनी रहूँगी। और, यदि मामा कह देंगे, तो मऊ सहानिया चली जाऊँगी।'

पूना की भैंसों और खेती का ख्याल करके मामा ने कहा—'पूना को यहाँ बना रहने दीजिये। हमारे यहाँ जो कुछ रूखा-सूखा है, सो हाजिर है। उसकी खेती और भैंसों का आप इन्तजाम कर दीजिये।'

'मैं वैसे ही बहुत बन्धनों में पड़ा रहता हूँ। आप इसे अच्छा सँभालेंगे।' भुजबल ने उत्तर दिया।

'भांजी के धान्य और लोक-लाज से मैं डरता हूँ। सँभाल करने का बोझ लेने को तैयार हूँ, परन्तु आप निगरानी करते और हिसाब लेते रहना।' उस सीधे-सादे देहाती ने कहा।

भुजबल केवल उसे सम्बोधन करके कहने लगा—'पूना के व्याह की माँ को बहुत चिन्ता थी। अब यह चिंता मुझे लग गई है। ललितसेन का और एक बुड्ढे जमींदार का संदेशा उनके पास आया था, उन्होंने नाहीं कर दी थी। अब योग्य वर की तलाश करनी है।'

पूना वहां से उठकर चली गई। उसके मामा को विस्मय था कि उसी के समक्ष यह चर्चा क्यों की गई।

भुजबल बोला—'आप ललितसेन के लिये राजी होंगे। और तो कोई बात नहीं है, धर्म के विरुद्ध है, और अपनी जाति में ऐसा नहीं होता है।'

'कभी नहीं।' पूना के मामा ने कहा।

'और कोई वर नहीं मिलता। जो मिलते भी हैं, उनसे टीपना का मेल नहीं खाता। एक बड़ी अजीब बात है।'

'क्या ?'

'मेरी टीपना से मिलान मिला है। और माँ ने मरने के पहले जोर भी दिया था। परन्तु उन्होंने तब कहा, जब ललितसेन के यहाँ मेरा विवाह हो चुका था।'

'आप जो कुछ ठीक समझें, सो करें। बस, इतना हो जाय कि पूना को दुःख न झेलना पड़े।'

'इसमें क्या संदेह है।'

उसके साथ भुजबल की और बातचीत नहीं हुई। परन्तु उसी दिन मौक़ा निकालकर भुजबल पूना से अकेले में मिला।

बोला—'पूना, अब तुम सयानी हो गई हो। तुमसे दो बातें करनी हैं।'

पूना सिर नीचा करके खड़ी रह गई। उसने फिर कहा—'तुम्हारे मामा सीधे-सादे किसान हैं। दुनियां का ऊँच-नीच नहीं समझते। समय बुरा है। तुम्हारा यहां अकेले रहना अच्छा नहीं मालूम होता।'

पूना ने धीरे से कहा—'तब क्या करूँ ?'

'हमारे घर चलो। छावनी ठीक न जान पड़े, तो मऊरानीपुर चली चलो।'

'मुझे यहां बना रहने दीजिये। मैं भी किसान की लड़की हूँ। किसानों में मेरा निर्वाह अच्छी तरह हो जायगा।'

'तुम्हारे विवाह की मुझे बड़ी चिंता है। पास रहोगी, तो ज्यादा फ़िक्र बनी रहेगी।'

पूना ने कोई उत्तर नहीं दिया। भुजबल ने कुछ सोचकर कहा—'यदि इस समय तुम्हारी इच्छा यहां रहने की है, तो मैं ज़िद न करूँगा।' फिर कुछ ठहरकर बोला—'ब्याह के विषय में मरने के पहले तुम्हारी माँ ने एक इच्छा प्रकट की थी, तुम्हें मालूम है ?'

पूना सिर नीचा किये खड़ी रही, परन्तु उसका चेहरा लाल हो गया था।

भुजबल ने कहा—'अच्छा, मैं फिर किसी समय शीघ्र ही बतलाऊँगा, मुझे तुम्हारी बड़ी चिंता है।'

पूना ने सिर नीचा किये धीरे से कहा—'आप-जैसा हितू अब मेरा संसार में और कौन है।' और रोने लगी। भुजबल चला आया।

[४२]

एक बार जहां अपनी कार्य-विधि को व्यवहारिक क्षेत्र में अवतरित-भर कर पाया कि फिर भुजबल अपनी आंतरिक शक्तियों को चैन नहीं लेने देता था।

परन्तु सिगरावन से लौटने पर उसे ललितसेन से बातचीत करने के लिये अवसर नहीं तलाश करना पड़ा। दोनों में इस तरह बातचीत चल पड़ी—

'कहो, सिगरावन का क्या हाल है? मां के मरने से लड़की तो बड़ी व्यथा में होगी?'

'सो तो है ही, परन्तु हम लोग उससे अधिक व्यथा में हैं। पूना के विवाह की समस्या बड़ी उलझी हुई मालूम पड़ती है।'

'उसका कोई रिश्तेदार तो है?'

'कई एक हैं। इस समय वह अपने मामा के पास है। सीधा-सादा लट्ठ देहाती आदमी है। आपके लिये राजी नहीं मालूम पड़ता।'

'वह क्या चाहता है?'

'निश्चय-पूर्वक कुछ नहीं कहा। एक बात पूछता हूं।' और फिर हँसकर कहा, 'आपके दर्शन-शास्त्र के लिये मसाला है।'

ललितसेन ने बिना हँसे हुये कहा—'वह क्या है?'

'एक स्त्री के रहते हुये मनुष्य दूसरा विवाह कर सकता है या नहीं?' भुजबल बोला।

ललितसेन ने खूब आँख गड़ाकर कहा—'आपका क्या मतलब है?'

भुजबल ने आँख मिलाये हुये ही जवाब दिया—'कोई विशेष प्रयोजन नहीं है। परन्तु विषय से सम्बन्ध रखता है, इसलिये पूछा।'

'क्या कोई ऐसा वर भी है?'

'जी हां।'

ललितसेन ने क्षुब्ध होकर कहा—'तुम्हारा यह शिवलाल मालूम होता है, अंधा है।'

भुजवल ने हँसकर कहा—'इसमें सन्देह करने के लिये रत्ती भर भी स्थान नहीं, और मेरी चर्चा का कुछ इशारा उस तरफ भी था।'

ललितसेन ने कुछ क्षण बाद गम्भीर होकर—'ऐसे जर्जरतन, कूड़ा-करकट, सड़े आदमी का तो एक भी विवाह नहीं होना चाहिये। अयोग्य मनुष्य का योग्य स्त्री पर अधिकार प्रकृति के नियमों के प्रतिकूल है।'

'यह विलकुल सच है।' भुजवल वोला,—'परंतु मेरे प्रश्न पर यह दार्शनिक सम्मति नहीं फवती मेरा तो सवाल ही दूसरा है। सारे पहलू पर जवाव माँगता है।'

ललितसेन ने कहा—'एक मनुष्य के लिये एक स्त्री, यह एक स्वाभाविक वात मालूम पड़ती है। इसीलिये योरुप के देशों में एक स्त्री के रहते दूसरी स्त्री के साथ विवाह कानून के द्वारा निषिद्ध ठहराया गया है। परंतु यह विधि वहुत सन्तोप जनक नहीं पाई गई है। परम्परा के के भक्त इसके दोषों को दूर करने की फिक्र में हैं। तलाक एक उपाय है, परंतु दवा कभी-कभी मर्ज से भी वुरी हो जाती है। वह विवाह की प्रथा विलकुल ही नीच नहीं है। खास खास कारणों के उपस्थित होने पर कभी कभी यदि ऐसे विवाह हो जायें, तो निंदनीय नहीं है। परन्तु ऐसी हालत में तलाक को भी किसी न किसी रूप में मानना पड़ेगा।'

'यदि आपके लिये पूना का मामा तैयार न हुआ, और कोई उपयुक्त वर न मिला, तो ऐसी अवस्था में या तो शिवलाल को ग्रहण करना पड़ेगा या इससे कोई अच्छा; परन्तु इसी विवाहित श्रेणी का वर पसन्द करना होगा।'

ललित ने तेज होकर कहा—'कदापि नहीं। उस फूल को काँटे की नोक पर नहीं कुतरना चाहिये। उसके विपय में वहु-विवाह-समर्थक भी

कभी यह नहीं कह सकते कि जीवन के आरम्भ से ही सोतियाडाह की आग में झुलसा दी जाय।'

भुजवल ने सोचते कहा—'यथाशक्ति ऐसा न होने पावेगा।'

ललित ने कुछ आकस्मिक वेग के साथ पूछा—'उस लड़की की क्या इच्छा है? वह तो सयानी है।'

'उसकी कोई विशेष इच्छा नहीं है।'

'बिलकुल ठीक मालूम है?'

'हां।'

[४३]

वुद्धा अभी स्वस्थ नहीं हुआ था। अजितकुमार कभी कभी सिंगरावन उसकी दवा-दारू के लिये जाया करता था। यदि उसकी दवा-दारू का विशेष कारण सामने न भी होता, तो इतनी दूर वह वैसे ही अकारण टहल लिया करता था।

उस दिन छावनी छोड़ते ही कुछ दूर से भुजवल भी उसी ओर जाता दिखलाई पड़ा। अजित रास्ता कतराकर जाने लगा, परन्तु कुछ समय के परिश्रम के वाद एक जगह इकट्ठा होने का अनिवार्य अवसर आ ही गया।

भुजवल वोला—'मास्टर साहव, कहां का चक्कर काट रहे हो?'

अजित ने कहा—'यों ही। जरा सिंगरावन तक जा रहा हूँ।'

'आप वुद्धा की इतनी चिंता न करें। वह मरेगा नहीं।'

थोड़ी देर दोनों चुप रहे। भुजवल फिर वोला—'इन छोटे आदमियों को इतना सिर चढ़ा लेने से ही हम लोगों पर तवाही आ रही है।'

'अभी तवाही नहीं आई है, परन्तु यदि इन लोगों के साथ इसी तरह की वेदर्दी का वर्ताव रहा, तो भयंकर फल होगा।' अजितकुमार ने कहा, और मन में वहस न करने का दृढ़ संकल्प कर लिया।

वहस की आकांक्षा भुजवल के मन में भी वहुत फड़का करती थी। परन्तु वह किसी अंध-प्रेरणा के वश उससे बोला—'उस दिन मैंने अपने

गुस्सा बहुत रोक लिया था। मैं अपने काम में किसी का दखल देना नहीं पसन्द करता हूं।'

'और दूसरों के खून में तो शायद बर्फ ही भरी हुई है?' अजित ने कहा—'आप अपना काम देखिये, मैं अपना काम देखूंगा। मेरा आपका मार्ग भिन्न है। रार-तकरार में कुछ लाभ नहीं दिखलाई पड़ता।'

'इसमें क्या सन्देह है?' भुजवल होठ सिकोड़कर बोला—'मदरसे के शिक्षक और गांव के जमींदार की गली न्यारी-न्यारी है, परन्तु इस तरह सिगरावन बहुत जाने के कारण किसी दिन आपको पछताना पड़ेगा।'

अजित ने खूब दृढ़ और तीक्ष्ण दृष्टि से भुजवल की ओर देखा। एक क्षण बाद स्थिर भाव के साथ बोला—'देखा जायगा।' और तेजी के साथ कदम बढ़ाकर भुजवल से आगे जाने की चेष्टा करने लगा। फिर कोई बातचीत नहीं हुई।

थोड़ी देर में गाँव आ गया। जहाँ से गली लालसिंह के मकान की ओर मुड़ी थी, वहाँ से बुद्धा का घर तीस-चालीस कदम के लगभग था। जरा आगे लालसिंह का मकान था। एक लड़की उसी ओर चली जा रही थी। पैर की आहट पाकर उसने पीछे मुड़कर देखा। जरा ठिठकी। कपड़ा खींचा, और तेजी के साथ बढ़ने लगी। ५-६ कदम चलकर फिर रुक गई, और एक ओर खड़ी होकर कभी अजित की ओर, और कभी मकान की दीवार की ओर देखने लगी। अजित ने पहिचान लिया, पूना थी।

जब अजित पास पहुंचा, उसे खयाल हो आया—'इस अनाथ की माँ ने मुझे अपने मरने के पहले स्मरण किया था। न-जाने क्या कहना चाहती थी। बोला—'पूना, अच्छी तरह हो?' खड़ा हो गया।

जाने के लिये उद्यत पूना ने धीरे से कहा—'जी हाँ।' परन्तु मुँह दूसरी ओर किये रही। मालूम होता था, जैसे भागने के लिये कहीं छोटा पतला-सा मार्ग ढूंढ़ रही हो। शरीर उसका कांप-सा रहा था।

इसी समय मोड़ पर भुजवल आ गया। अजितकुमार ने उसे देखकर कहा—'तुम्हारे वहनोई भी आ रहे हैं, उनका आतिथ्य करो। मैं जाता हूँ।'

पूना वहनोई को देखकर सकपका-सी गई। तेजी से जाने के लिये पैर उठाया, परन्तु न उठा। भुजवल पास आ गया, वह खड़ी रही। टकटकी लगाकर अपने वहनोई की ओर देखने लगी।

भुजवल की आँखें उसे भयानक-सी मालूम पड़ीं। कुछ कहना चाहती थी कि भुजवल ने वहुत धीमे, परन्तु जरा तीव्रता के साथ कहा—'चलो, यहाँ खड़ी-खड़ी क्या कर रही हो?' पूना कुछ कहना चाहती थी, पर उसके गले में शब्द रुक-सा गया। भुजवल के पीछे-पीछे चल दी।

घर पहुंचने पर जव भुजवल ने एकांत पाया, तव लालसिंह से कहा—'मैंने आज पूना के लिये निश्चय कर लिया है।'

'क्या?' लालसिंह ने पूछा।

भुजवल ने उत्तर दिया—'पूना की सगाई के विषय में।'

लालसिंह ने फिर वही प्रश्न किया।

कुछ देर सोचने के पश्चात् भुजवल वोला—'फिर वतलाऊँगा। अभी नहीं।'

लालसिंह ने और कुछ नहीं पूछा।

सिंगरावन से छावनी के लिये चलने के समय भुजवल ने पूना को अकेले में वुलाया। वह किवाड़ पकड़ कर मुंह छिपाये हुये खड़ी हो गई।

भुजवल ने धीरे-धीरे कहा—'अगले महीने में विवाह होगा पूना तुम्हारा। तुम छोटी होतीं, तो न कहता। सयानी हो गई हो इसलिये कहा।'

पूना विलकुल चुपचाप खड़ी रही। भुजवल फिर वोला—'किसके साथ तुम्हारा विवाह होगा, यह वतलाने की आवश्यकता नहीं, क्योंकि तुम जानती हो।'

वह विलकुल निष्पंद खड़ी रही। भुजवल ने कहा—'आज से ठीक वीसवें दिन। इसलिये जल्दी है कि दुनियां के ढंग अच्छे नहीं हैं।'

एक क्षण चुप रहने के बाद फिर बोला—'तुम्हारा गांव में इधर-उधर फिरना अच्छा नहीं मालूम होता।'

'कहां ?' पूना ने बहुत प्रयत्न के बाद बहुत क्षीण स्वर में प्रश्न के आवरण में उत्तर दिया।

'कहां ?' भुजबल ने कुछ आश्चर्य और रुखाई के साथ दुहराते हुये कहा—'इन सब बातों पर तर्क करने की जरूरत नहीं मालूम पड़ती। घर का काम देखो, और जो कुछ तुम्हारे बड़े तुम्हारे लिये तय करें, उसे मानो।'

'उसे तो मानती ही हूं।' पूना ने कांपते हुये गले से कहा।

भुजबल नरम होकर बोला—'यह बात ठीक है। अब मैं जाता हूँ। अपनी पूजा-पत्री बराबर करती रहो। तुम्हारी माँ ने मरने के पहले मुझे जो आज्ञा दी, और मैंने उन्हें जो वचन दिया था, उसके निभाने के लिये मैं तैयार हो गया हूँ। कोई कुछ कहे, अब और किसी तरह निवारण होता नहीं दिखता। तुम्हारे लिये सोने के कितने गहनों की जरूरत पड़ेगी ?' अन्तिम प्रश्न करते ही भुजबल के चेहरे पर एक हलकी लालिमा दौड़ गई।

पूना ने साफ गले से कहा—'किसी की नहीं।' और तुरन्त भीतर चली गई।

[४५]

जितनी देर भुजबल सिगरावन में ठहरा, उससे अधिक समय तक ठहरे रहने के लिये अजित को जरूरत नहीं पड़ी। जिस समय वह छावनी जाने के लिये तैयार हुआ, उसको खबर मिली कि भुजबल भी जाने को है।

मार्ग में फिर तर्क-वितर्क न हो, इसलिये उसने एक कोस के चक्कर से उत्तर की ओर तालाब और चकरई की पहाड़ी और नयेगांव ग्राम के पास से होकर तिंदरी और फांटा की पहाड़ियों के निकट जाने का निश्चय किया।

वह इधर से गया, और उधर से पूना तालाब से नहा-धोकर कंधे के सहारे भरा लोटा हाथ की गदेली पर और दूसरे कंधे पर गीली धोती रक्खे हुये आती हुई मिली। तप्त स्वर्ण-सदृश निखरा हुआ रंग और प्रभामय मुख-मण्डल। अजित ने कुछ कौतूहल के साथ देखा। किसी आंतरिक पीड़ा के कारण स्वभाव-सहज उल्लास मुख पर न था। पूना नीचा मुंह किये हुये चली गई। अजित की इच्छा हुई कि कुछ बात करें, परन्तु वेरुख देखकर चुपचाप चला गया। उसे ऐसा मालूम पड़ा, जैसे किसी वन में कुहरे से ढका हुआ गेहूं का खेत आँख के सामने एक क्षण के लिये आकर ओट हो गया हो।

यकायक उदास हो गया। सिर घूमने-सा लगा। जैसे चक्कर आने को हो। पास ही चकरई पहाड़ी और उसके ऊपर प्राचीन काल के बने हुये एक कोठे को देखकर उस पर चढ़ गया। थोड़ी देर के लिये छाया में बैठकर तालाब की ओर रिक्त दृष्टि से देखने लगा। मन में कहा—'इससे अधिक और चाहता ही क्या हूं? कभी दर्शन नहीं होते। न हों। कभी कान में कूज नहीं पड़ती। न पड़े। मेरा शायद ही कभी स्मरण होता हो। न हो। परन्तु मेरे स्मृति-पटल पर से किसकी मजाल, जो उस चित्र को पोंछ सके?' फिर जेब से एक चित्र निकाल कर उसे देखने लगा।

रतन का चित्र था।

मन में बोला—'यह यदि सुखी रहे, तो कोई चिन्ता की बात नहीं। सुखी न होगी? परन्तु यह तो मेरा स्वार्थपूर्ण भाव है। क्यों सुखी न होगी? घर सम्पन्न है! भाई भला आदमी है। यदि भुजबल अच्छा आदमी होता! कैसे क्रूर मनुष्य का साथ हुआ है! परन्तु भुजबल क्या इतना पशु होगा कि ऐसे कोमल, ऐसे सुन्दर कुसुम को जान-बूझकर शीर्ण कर दे? भुजबल का बर्ताव दीन किसानों के साथ जैसा हो, परन्तु उसके साथ ऐसा न होगा। वह गायन-वादन का प्रेमी भी है। उसके हृदय में अवश्य ही एक ललित कोना होगा, जहाँ रतन ने स्थान पा लिया होगा?'

फिर आह खींचकर थोड़ी देर निरपेक्ष भाव के साथ तालाव की ओर देखता रहा। जल की एक बारीक रेखा-मात्र वहां से दिखती थी, परंतु वह उसी को खूब ध्यान लगाकर देख रहा था। थोड़े समय बाद ट्यूशन का याद करके उठ खड़ा हुआ, और चित्र को जेब में रख लिया।

मन में कहा—'मैं भुजवल से कभी नहीं लड़ूंगा। वह मेरे साथ चाहे जैसा बुरा वर्ताव करे, मैं उसको दुखी न करूंगा। भुजवल के दुखी होने पर रतन सुखी न रह सकेगी।'

(४५)

भुजवल की अनुपस्थिति में ललितसेन ने एक दिन लालसिंह को बुलवाया। मैली धोती, होली के दिनों की, रंग के छींटों से रंग-बिरंगी, अँगरखी पहने, और बड़े एहतियात से रक्खा हुआ बिलकुल सफ़ेद साफ़ा बांधे, मोटी लकड़ी हाथ में लिये लालसिंह दरवाजे तक मजे में आ गया। बैठक में घँसने का साहस न हुआ। वहीं से बोला—'मुझे हुक्म हुआ था, सो आ गया।'

ललितसेन उठकर आया, और बैठक में ले जाकर उसे बिठला लिया।

ललितसेन ने बिना भूमिका बांधे हुए कहा—'आप अपनी भाँजी का विवाह करना चाहते हैं?'

'जी हां, उसके लिये तो मारे-मारे ही फिर रहें हैं। लालसिंह ने कहा—'परन्तु वर नहीं मिलता।'

'किसी के साथ टीपना मिली है?'

'जी हां, दो टीपनायें मिली हैं।'

'किसकी?'

'एक तो भुजवल की और एक कोई मास्टर हैं, जो गरीबों की दवा-दारू करते हैं।'

ललितसेन ने कुछ चकित होकर कहा—'भुजवल की?' फिर हँसकर बोला—'यह तो असम्भव है। परन्तु मास्टर कौन हैं?'

लालसिंह ने भोलेपन के साथ कहा—'एक मास्टर यहां छावनी में हैं, जो कुछ पागल या सनकी से सुने जाते हैं।'

'नाम अजितकुमार है ?' ललितसेन ने पूछा।

लालसिंह—'नाम नहीं मालूम।'

ललित—'परन्तु यह आज ही मालूम हुआ कि वह पागल हो गया है।'

इसके एक क्षण वाद ललित ने पूछा—'आपकी इच्छा क्या है ?'

उसने उत्तर दिया—'जो भुजवल जी की इच्छा होगी, और आप चार जनों की मर्जी होगी।'

ललित ने वेधड़क कहा—'मेरी और भुजवल की एक ही इच्छा है। उन्होंने जो कुछ कहा होगा, उससे मैं सहमत हूं।'

लालसिंह नम्रता के साथ बोला—'सो आपकी आज्ञा सिर माथे है। आप तो हम लोगों के सिर-मौर हैं।'

'जन्मपत्री तो वहुत पहले ही मिल चुकी थी। अव कोई और विशेष विघ्न तो है नहीं ?'

'कुछ भी नहीं।'

'इस घर में आपकी लड़की को देवी की तरह रक्खा जायेगा।'

'किस घर में ?'

'इसी में।'

'तो भुजवल जी भऊ न ले जायेंगे। एक जगह रहने में लड़ाई झगड़े का डर रहता है।'

'लड़ाई-झगड़े का डर ! किसके साथ ?'

'भूल क्षमा कीजियेगा। मैं गांव का आदमी हूं।'

ललित ने लालसिंह को अपने शिष्टाचार से प्रसन्न करने के प्रयोजन से कहा—'मैं पान ले आऊं, अभी तो मेरा पान खाने में कोई हर्ज नहीं है। संवंध हो जाने के वाद फिर चाहे न खाइयेगा।'

'फिर क्या हो जायगा ?' लालसिंह ने पूछा।

'यही कि लोग दामाद के यहां का जल भी ग्रहण नहीं करते।' ललित ने उत्तर दिया।

लालसिंह बोला—'आपके साथ संबंध थोड़ा ही होना है।'

और सबसे पहले अब की बार थोड़ा-सा मुस्कराया।

ललितसेन ने इस बात में उस देहाती की सहज-सुलभ मूढ़ता देखकर कहा—'इसका मैं अर्थ नहीं समझा। अभी तो आप कहते थे कि मेरे साथ संबंध करने में आपको उज्र नहीं है।'

'वाह साहब, वाह!' देहाती बोला—'मैंने तो यह कभी नहीं कहा। आप बड़े आदमी होकर ऐसे अधर्म की बात कहते हैं! बहन के साथ क्या इस कलिकाल में भी किसी का विवाह हो सकता है?'

ललित की समझ में अब कुछ आ गया। भौंचक्का-सा रह गया। परन्तु शीघ्र संभलकर बोला—'मैंने यही पूछने के लिये बुलाया था। यदि आपकी इच्छा नहीं है, तो कोई जबरदस्ती थोड़े ही है।' और देर तक चुप रहा। लालसिंह ने वहां अपनी उपस्थिति की उपयोगिता की समाप्ति समझकर उठते हुये पूछा—'तो मैं जाऊं?' ललितसेन ने किसी विचार में गोते खाते हुये अन्यमनस्क होकर कहा—'जी हां।'

[४६]

यद्यपि थोड़े ही दिन पहले निराश होकर बिलोची लोग अपने घोड़े लेकर चले गये थे, और शिवलाल को अपनी गुणग्राहकता प्रकट करने का मौक़ा न मिल पाया था, तथापि शिवलाल के मन में जो बात समा गई थी, उसके अनुकूल परिस्थिति में व्यावहारिक रूप मिल गया। शिवलाल ने दो घोड़ों की एक फ़िटन मोल ले ली।

जमींदारी के किसी काम से लौटकर आते ही भुजबल शिवलाल के पास गया। जुती हुई फ़िटन बाहर खड़ी थी। शिवलाल हवाख़ोरी के लिये जाने को तैयार हो रहा था।

भुजबल को देखते ही आत्मसंतोष के साथ बोला—'सस्ते मोल मिल गई है। घोड़े भी मजे के हैं। चलो, रास्ते में बातचीत होती

चलेगी। आज बदली है। मंद-मंद समीर बह रहा है, कवियों को पुलकित करने वाला।'

भुजबल ने कहा—'मैं साथ न जा सकूंगा।'

'कुछ कहना है, थोड़ी-सी बातचीत करके जाऊंगा।'

थोड़ी दूर हटकर दोनों में बातचीत होने लगी।

भुजबल बोला—'अदालत में साहूकारों का रुपया अब तक जमा नहीं किया? मियाद आजकल में जानेवाली है। यदि मियाद निकल गई, तो सर्वनाश हो जायगा।'

'अजी अभी काफी मियाद है।' शिवलाल ने कहा—'और फिर तुम अपने हथकंडों से और भी मियाद ले लोगे।'

भुजबल तीखेपन के साथ बोला—'अब मुहलत न मिलेगी। मियाद समाप्त होते ही बैनामों की सारी कारवाई मिट्टी में मिल जायगी।'

'क्यों?'

'कानून है। इसी शर्त पर अदालत की अनुमति बैनामा करने को मिली थी। यदि साहूकारों की डिग्रियों का रुपया दाखिल न किया गया तो सब बैनामे कानून के विरुद्ध समझे जाकर नष्ट हो जायेंगे।'

'और जायदाद के मालिक क्या साले साहूकार बन जायेंगे?'

'सो तो नहीं है, परन्तु जायदाद नीलाम हो जायेगी। बाबू ललितसेन का दस हजार रुपया मारा जायगा।'

'मैं तो कहीं भाग नहीं जाऊंगा।'

'परन्तु हम लोगों ने ललितसेन को विश्वास दे रक्खा है कि अदालत में रुपया जमा कर दिया है। वह जब सुनेंगे, तब क्या कहेंगे?'

'कुछ परेशान होने की बात नहीं है, मैं भी इतना कानून जानता हूं कि नीलाम होने के पहले यदि रुपया दाखिल हो जाय, तो जायदाद बच जाती है। फिर मेरी आधी जायदाद तो बची हुई है। बाबू ललितसेन के रुपये की इतनी चिंता न करो।' भुजबल मुंह लटकाकर रह गया। पूछा—'फिटन और घोड़ों में कितना रुपया बिगाड़ा है?'

'बिगाड़ा है' शिवलाल ने नाक सिकोड़कर कहा—'आठ सौ रुपये में ऐसी सस्ती चीज कहीं नहीं मिल सकती थी। एक कर्नल साहब की है। बेचारे विलायत जा रहे हैं। उनकी बात कहां मिलती ? इसलिये ले ली। काम देगी। बहार रहेगी।'

भुजबल दांत पीसकर रह गया। एक क्षण बाद बोला—'और कितना रुपया फूकने से बचा है ?'

शिवलाल हँसकर बोला—'यह लीजिये। अब आप बिगड़ गये। अजी साहब, रुपये की सिर्फ शकल बदल गई है। रुपया न सही, माल तो पास है। कुछ सोने के गहने बनवा लिये हैं। विवाह यदि जल्दी होने को हुआ, तो जेवर का शीघ्र जुटाना लगभग असम्भव हो जाता। बनवा लिया। जल्द काम में आवेगा। घबराइये मत जनाब, जरूरत पड़ने पर गहने के फिर रुपये खड़े किये जा सकते हैं। कर्नल साहब को खुश रखने की नियत से अभी लोग एक हजार रुपया घोड़ा-गाड़ी का दे देंगे। बाकी रुपये अभी रक्खे हुये हैं।'

माथा टटोलने के बाद भुजबल ने कहा—'खूब किया! अच्छा किया! अब देखें, क्या आफत आती है!'

शिवलाल ने टोककर कहा—'तुम तो बुढ़ियों की तरह रोना ले बैठे। कसम जवानी की, यह चर्चा अब और न छेड़ने दूंगा।'

'तब क्या कहूँ, और क्या करूं, कुछ समझ में नहीं आता ?' भुजबल ने निर्बल स्वर में कहा, और उसका मुँह बिलकुल मुर्झा सा गया।

शिवलाल ने उसे उत्साहित करने के इरादे से कहा—'यह बात बहुत हो ली, अब मतलब की बात करो। सगाई-सम्बन्ध की बात किस सीढ़ी पर पहुंची है ?'

'वह नहीं होती दीखती। लड़की की मां के मर जाने से स्थिति में बड़ा परिवर्तन हो गया है। उसका मामा बहुत हठी मालूम होता है।' भुजबल ने उत्तर दिया। शिवलाल उत्तेजित होकर बोला—'उसके

मामा की क्या दम, जो इनकार कर सके ? मैं इतना खर्च कर चुका हूँ। जमींदारी दे चुका हूँ। अब विवाह को क्या कोई रोक सकता है ?'

भुजबल ने कुछ शांति प्राप्त करके कहा—'जमींदारी जैसी दी, वैसी न दी। डिग्रियों का रुपया दाखिल न करने से वह सब देना-लेना बराबर हो जायगा।'

शिवलाल सोचकर बोला—'उसका मामा बड़ा काइयाँ मालूम होता है। जमींदारी को सुरक्षित समझकर शायद मुझे अँगूठा दिखला देगा। मैं तो भाई, रुपये अभी कदापि दाखिल न करूँगा। यह सब विवाह होने के बाद होगा। इसमें तुम्हारे ललित जी चाहे नाराज हो जायें, और चाहे खुश रहें—मैंने तय कर लिया है।'

भुजबल ने अकस्मात अपना भाव बदलकर कहा—'विवाह तो कोई कठिन बात नहीं है।'

'मैं उसके मामा को बात-की-बात में सीधा कर लूँगा, परन्तु जैसे बने, वैसे अदालत में रुपया तुरन्त दाखिल होना चाहिये।'

'तुम्हें याद होगा कि हमने रजिस्ट्री के समय कहा था कि रुपया दाखिल कर दो।' शिवलाल बोला—'परन्तु तुम्हीं ने कहा था कि अभी ऐसी जल्दी नहीं है, छावनी चलकर देखा जायगा। और तुमको स्मरण होगा कि कुछ रुपया तो तुम्हारे ही पास है। उसकी मुझे परवा नहीं, परन्तु यह निश्चय है कि विवाह पहले होगा, रुपया पीछे दाखिल किया जायगा।'

भुजबल ने फिर हठपूर्वक मुस्कराकर कहा—'आप बड़े जिद्दी हैं। यह तो सोचिये कि यदि विवाह हो भी, तो चार दिन में कैसे सब रीतें निभ जायेंगी ? फलदान है, लगन है, और न मालूम कितने नेग और होते हैं।'

'अच्छा, यही सही। फलदान हो जाय, उसके बाद रुपया दाखिल कर दिया जायगा। कब होगा फलदान ?' शिवलाल ने प्रश्न किया।

भुजबल कुछ देर तक सोचता रहा। सोचने के अनन्तर बोला—'परसों।'

बहुत प्रसन्न होकर शिवलाल ने कहा—'भाई, बुरा मत मानना। बात यह है कि तुमने पहले सौदा किया है। तुमने जमींदारी पहले बैंनामा कराई होती, तो मैं यह हठ न करता। अब चलो, घूम आवें।'

'इस समय क्षमा कीजिये। बहुत काम करना है।' कहता हुआ भुजबल वहां से चला गया।

उसके जाते-जाते शिवलाल ने फबती कसी—'जिसके गायन-वादन के सुनने के लिये इतने आतुर होकर चले जा रहे हो, हमें फिर कभी न सुनवाया, देखूंगा।'

[४७]

शिवलाल जब हवा खाकर लौट आया, तो पानी बरसने लगा। खाना खाकर जा लेटा, और शृङ्खला-विहीन विचारों और कल्पनाओं में लतपत होने लगा। पानी रिमझिम बरस रहा था, परन्तु उसके मन में मूसलाधार-सी हो रही थी।

पूना का प्रसन्न वदन, हेम-वर्ण और अंग, विशेषतः लजीले नेत्र, विविध भांति के आकर्षक, उत्तेजक और मोहक रूप धारण कर-करके आंखों के सामने आने लगे, और उसकी असंयत अनिश्चित प्यास को बढ़ाने लगे। विवाह की और विवाहित अवस्था की असंख्य कल्पनाओं में मन को उलझाकर कामियों के कल्पित स्वर्ग का आनन्द लूटने लगा। वर्तमान की वास्तविक वस्तु-स्थिति जब-जब कुछ निराश करती, तब-तब विवाह करने की उत्कट इच्छा को दृढ़ प्रण, कठोर हठ का रूप देने लगा।

परन्तु एक नतीजे पर पहुंचकर मन को विश्रान्ति देना शिवलाल के स्वभाव में न था। कामुकता की लहर में पूना की तुलना न मालूम अपने किस-किस अनुभव के साथ की। परन्तु इन्द्रिय-लोलुप मौजी शिवलाल भी इस तुलना में पूना को उसके लावण्य से अधिक न जाने किस बात में

उसे बढ़ा-चढ़ा हुआ देखने लगा। इतने में किसी समय किसी के मधुर कण्ठ से निकली हुई स्वरावलि की ध्वनि कान में गूंजी; और कोई सुन्दर मुख आंखों के सामने से घूम गया। कई वार चेष्टा की, कई वार प्रार्थना की, परन्तु गले की वह तान फिर न सुनने को मिली, वह दर्शन फिर न हुआ। शिवलाल यह सोचकर व्याकुल हो गया।

मन में कहा—'भुजवल बड़ा स्वार्थी, पामर है। वैसे न-मालूम कहां कहां हमारा साथ किया, परन्तु अपनी स्त्री का गाना उस दिन के वाद फिर कभी नसीव न होने दिया। जैसे होगा, वैसे कल गाना तो जरूर सुनूंगा।' कभी पूना, कभी रतन, कभी घोड़ा-गाड़ी और कभी गहने—इस तरह के ऊट-पटांग खयालों में डूवते-उतराते अन्त में साहूकारों की डिग्रियों की विभीपिका और लापरवाही के निश्चय से उत्तेजना की धारा के परिवर्तन में किंचित् शांति पाकर उखड़ी-पछड़ी नींद में सो गया।

सबेरे उठकर वैठक में गया। उसी समय अजितकुमार आया। नौकर मौजूद थे। उसके आने से वहुत प्रसन्न न होकर शिवलाल वोला—'आज सबेरे ही कैसे तकलीफ की मास्टर साहव?'

अजित ने उत्तर दिया—'आपने एक वार ऋण पर रुपया लेने के लिये इच्छा प्रकट की थी।'

'सो?' नौकरों की उपस्थिति में यह चर्चा सुनकर कठिनाई से अपनी अप्रसन्नता को छिपाकर उसने पूछा।

'ऋण पर नहीं, वैसे ही वहुत-सा रुपया मिल सकता है।' अजित ने मुक्त हास के साथ कहा।

'सो कैसे?' शिवलाल ने अप्रसन्नता कम और विस्मय अधिक प्रकट करते हुये कहा।

'आज सुवह मैं अपने मकान के पीछे के खंडहर में लघुशंका के लिये गया, तो स्वर्ण-मुहरों से भरा हुआ एक घड़ा पानी के प्रवाह के कारण

पृथ्वी में से कुछ उभरा हुआ दिखलाई पड़ा। मैंने उसको उखाड़ लिया। चाहिये हो, तो दे जाऊँ।'

पहले शिवलाल ने सोचा कि किसी ने सुना तो नहीं। नौकर पास ही खड़े सुन रहे थे। बोला—'आप ही क्यों नहीं ले लेते ?'

अजित ने हँसकर कहा—'लावारिस माल है। नाठ का धन। मुझे जरूरत भी नहीं है।'

शिवलाल नौकरों की ओर देखते हुये बोला—'नाठ का धन मुझे नहीं चाहिये। प्रेतात्मा सांप का शरीर धारण करके उसकी रक्षा किया करते हैं। जो इस तरह का धन अपने कब्जे में करता है, निर्वंश हो जाता है। आप ही को मुबारक हो। मैं न लूंगा।'

अजित ने कहा—'पहले मेरी भी इच्छा हुई थी कि आपको न दूं, परन्तु यह सोचकर कि आपको यह संपत्ति कठिनाइयों का सामना करने में सहायता करेगी, और एक बार आपको वचन दिया था, यद्यपि बहुत शिथिलता के साथ, इसलिये कहने आया था। अब जो उसका हकदार दिखलाई पड़ रहा है, उसे जा कर दे दूंगा।'

'किसको ?' शिवलाल ने प्रश्न किया परन्तु बिना उत्तर दिये अजित वहां से चला गया। शिवलाल मन में कभी नौकरों को, कभी धर्म को, कभी अजित को और कभी अपने को देर तक गालियां देता रहा। अजित ने वह सब धन मैजिस्ट्रेट की कचहरी में जमा कर दिया।

[४८]

संध्या का समय था। बदली अब भी छाई हुई थी। कभी-कभी एकाध बूंद टपक जाती थी। अन्धकार व्याप्त न हुआ था। ललितसेन का दरवाजा खुला हुआ था, परंतु बैठक खाली था। भीतर से हारमोनियम पर किसी बारीक मधुर कण्ठ के गायन का शब्द लहरा रहा था। गायन धीमा था और करुण-सा। बदली से छाए हुए नभ में पूर्ण तिमिर के प्रवेश के समय वह तान किसी व्याकुल तंत्री की झनकार जान पड़ती थी।

इसी समय अजित वहां होकर निकला। इस मार्ग से वह बहुत कम आया-जाया करता था। आज ज्यों ही ललित के मकान के पास पहुंचा, त्यों ही दूर निर्झरित स्वर के कान में पड़ते ही इस तरह खड़ा हो गया, जैसे किसी ने पैर थाम लिये हों। 'कोई आ जाय, तो क्या सोचेगा?'

यह प्रश्न मन में उठा, और उसका असुविधा-जनक उत्तर भी मन में आया, परन्तु वहां से जा न सका, कुछ छिपा-सा एक कोने के पीछे खड़ा हो गया।

मकान के सामने सड़क पर किसी की गाड़ी के आने की आहट मालूम पड़ी। वह सटकर खड़ा हो गया, जैसे कोई चोर या अपराधी हो। गाड़ी दरवाजे पर खड़ी हो गई। मेघाच्छादित संध्या के उस निर्बल प्रकाश में अजित ने गाड़ी से उतरने वाले व्यक्ति को पहचान न पाया। अजितकुमार को कुछ अचरज हुआ। उस व्यक्ति ने दरवाजे पर खड़े हो कर झांका। वैठक सूनी थी। भीतर से गाने का शब्द आ रहा था।

गाड़ीवान से उस व्यक्ति ने कहा—'तुम जाओ। मैं आ जाऊंगा। छाता पास है।' गाड़ी चली गई, और वह वैठक में पहुंच गया।

अजितकुमार की इच्छा चले जाने की हुई। परन्तु गायन वन्द न हुआ था। वहां से चले जाने की कई वार इच्छा करने पर भी रुका रहा। करीव आधा घण्टा गाना और होता रहा। इतने में निविड़ अन्धकार हो गया।

गाना वन्द हुआ, और कुछ ही क्षण वाद वैठक के किवाड़ वन्द हो गये, परन्तु वैठक में उजेला न दिखलाई पड़ा।

अजित ने सोचा—'ललितसेन और भुजवल कहां हैं?'

इसके वाद ही उसके मन में तरह-तरह की शंकायें और उनके तरह तरह के समाधान उठने लगे। देर तक कान लगाये रहने के वाद घर के भीतर से कोई आवाज न सुनाई पड़ी। अजित को अकारण भय लगा। इतने में किसी ने कहा—'कौन है? क्यों आये हो? निकलो।' यह रतन का कण्ठ था। उसी वात को एक और स्त्री ने दुहराया।

किसी मनुष्य ने उत्तर दिया—'बाबू ललितसेन से मिलने आया था। उनके दर्शनों की आशा से अँधेरे में ही बैठक में बैठा रहा। इतने में नौकरानी किवाड़ बन्द करके भीतर चली गई। असमंजस में पड़ गया। बैठा रहा। पानी टिपटिपा रहा है। घर दूर है। सवारी पास नहीं। सबेरे चला जाऊँगा।'

तब किसी ने चिल्लाकर कहा—'जाइए, वे लोग यहां नहीं है। जब आ जायँ, मिल लीजिएगा। इस समय आपका यहाँ कोई काम नहीं।'

यह रतन का स्वर था। उस मनुष्य ने इस पर ज़िद करते हुए कहा—'यह तो आपकी बड़ी बेरहमी है। ऐसी अच्छी गलेबाज़ी के बाद ऐसी कठोरता। मैं भुजबलजी का मित्र हूँ। घबराइए नहीं।'

अजितकुमार आपे से बाहर हो गया। किवाड़ पर ज़ोर से दस्तक देकर बोला—'खोल दो। निकाल दो इस बदमाश को, घबराओ मत, मैं आ गया हूँ।'

एक क्षण में नौकरानी ने किवाड़ खोल दिए। लालटेन हाथ में लिए थी। पास ही रतन खड़ी हुई थी। एक ओर जलती हुई सी आँखें निकाले, शिवलाल हाथ में छाता लिए हुए अकड़ा खड़ा हुआ था।

अजित ने गरजकर कहा—'क्यों रे नीच, अधम, यहां से निकलता है या नहीं ? अथवा एक लात में सड़क पर फेकूं ?'

शिवलाल अकड़ा खड़ा रहा, परन्तु खर्राये हुये गले से बोला—'आप अपने पागलपन का नाटक यहाँ भी खेलेंगे ? मैं तो अपने मित्र के घर आया था, पर आप किसके यहाँ आये हैं ?'

अजित ने शोर करते हुये कहा—'निकल ! नहीं तो एक घूंसे से जान ले लूंगा।'

रतन काँप गई।

अजित की आकृति भीषण हो गई। उसकी आँखों की भयानकता ने शिवलाल को बैठक छोड़ने पर विवश किया। धीरे-धीरे चला गया।

जाते समय कह गया—'इस अनाधिकार चेष्टा के लिये तुमको पछताना पड़ेगा। जब मेरे मित्र मुझे मिलेंगे, तब उनसे कहूंगा।'

शिवलाल के चले जाने पर अजित इस बात को शायद भूल गया कि मुझे भी जाना है।

वह कभी खुले दरवाजे की ओर और कभी रतन की ओर देखने लगा।

रतन शिवलाल के इस तरह घुस आने से इतनी भयभीत न हुई होगी, जितनी अजितकुमार के शोर-गुल से डर गई।

एक बार तस्वीर उतारने के बाद ही जब ललित आ गया था—और आज, भय से थर्रा गई।

अजित ने भीख-सी मांगते हुये कहा—'यह अच्छा आदमी नहीं है। नौकरानी की असावधानी से बैठा रह गया। इसे फिर कभी न आने देना।' अजित को प्रतीति थी कि अब भी उपदेश देने का उसको हक प्राप्त है।

नौकरानी ने अपनी सफाई में कहा—'वह सचमुच कोई बदमाश न था। जरूर बाबूजी के कोई मिलने वाले थे। मेरी भूल से बैठक में बैठे रह गये। आपको इतनी हल्लादराजी न करनी चाहिये थी।'

रतन का चेहरा सूखा हुआ था। निर्बल स्वर में बोली—'यदि वह भैया का मिलने वाला न होता, तो ऐसा साहस नहीं कर सकता था। यह सब हल्ला-गुल्ला जब सब लोग सुनेंगे, तो न-जाने क्या कहें-सुनेंगे।'

अजित का कलेजा भीतर धँस गया। कठिनाई से बोला—'मैंने जो कुछ किया, न-मालूम किस प्रेरणा से किया। क्षमा करना। जाता हूँ।' और नीचा सिर कर लिया।

रतन और सहम गई। क्षीण स्वर में बोली—'मास्टर साहब, आप भैया के पास बहुत दिनों से कभी नहीं आते, परन्तु यह जो अभी यहां से चले गये हैं, उनके मिलने-जुलने वालों में से मालूम पड़ते हैं। एक जरा

सी बात के लिये आपको अपने मन में बतंगड़ नहीं खड़ा करना चाहिये था।'

अजित ने नीची आंखें किये हुये ही कहा—'तुम्हारा कहना यथार्थ मालूम होता है। फिर गला साफ करके एक क्षण दवा बोला, 'मैं फिर कभी नहीं दिखलाई पड़ूँगा। परन्तु केवल एक प्रश्न करना चाहता हूँ—'तुम सुखी हो?'

जैसे कंठ को प्रबल शक्ति मिल गई हो, रतन स्पष्ट स्वर में बोली—'यह सब बात करने की आपको कोई जरूरत नहीं है। इस समय न मेरे भाई यहां हैं और न और लोग।' फिर नौकरानी से यह कहकर भीतर चली गई—'किवाड़ अच्छी तरह बंद करके आ जाओ।'

अजित की आँखों में बिजली-जैसी चकाचौंध लग गई। वह बैठक में से चला आया। नौकरानी ने किवाड़ बन्द कर दिये।

उसे उस रात यह अवगत न हुआ कि घर किस तरह जा पहुंचा था।

[४६]

एकाध दिन पीछे थोड़ी रात गये भुजबल और ललितसेन कहीं से घर लौट आये। नौकरानी ने एक-दो बार प्रश्न करके और परिचय पाने के बाद किवाड़ खोल दिये। ललित के चेहरे पर क्षोभ और चिंता की छाप लगी हुई थी, भुजबल भी प्रसन्न न मालूम होता था। एक दूसरे से बिना कुछ कहे-सुने दोनों अपने-अपने शयनागार को चले गये।

रतन अभी सोई नहीं थी। कुछ कहना चाहती थी, परन्तु स्वामी को सुचित्त न देखकर चुप रही।

भुजबल ने क्षणिक विश्राम के बाद कहा—'बड़ी आफ़त में हूँ। कुछ समझ में नहीं आता।'

रतन ने भय-कम्पित स्वर में पूछा—'क्या कोई बात हो गई है?'

'पूना जो मेरी साली है, उसके विवाह की चिंता में जान जा रही है।'

'क्या कोई वर नहीं मिलता?'

'मेरे जमींदार मित्र बाबू शिवलाल से जन्मपत्रिका का कुछ मिलान हुआ था। पूना की मां की तरफ से कुछ सह उसे मिली, तो अपनी जमींदारी का एक खासा भाग उसे दे दिया। वह मरीं और मेरे ऊपर पहाड़ टूटा। पूना का मामा बिलकुल इनकारी हो गया है। इधर बाबू से दस हजार रुपये लेकर जो बैनामे हमारे-तुम्हारे और उनके नाम उन्होंने किये थे, उन बैनामों का रुपया लेकर बाबू शिवलाल ने अदालत में जमा नहीं किया सो उन बैनामों के मंसूख होने की नौबत आ रही है, और दस हजार की बड़ी रकम खटाई में पड़ी जा रही है। इसका तो खैर हम लोग कुछ उपाय कर रहे हैं, परन्तु बूढ़ा शिवलाल व्याह के पीछे बेतरह पड़ा हुआ है। उधर पूना सयानी हो गई है, और वह गांव भले आदमियों का नहीं है। यदि उसका विवाह झमेले में पड़ गया, तो उसके आवारा हो जाने का पूरा डर है।'

'मेरे विवाह होने के पहले पूना के साथ मेरी जन्मपत्री मिल गई थी, इस पर वह बेवकूफ मामा मेरे पीछे हाथ धोकर पड़ा हुआ है कि तुम्हीं पीले हाथ कर दो। तुम्हारे रहते मैं दूसरा विवाह करूं, यह शैतान बात एक क्षण के लिये मेरे मन में नहीं ठहरती। क्या करूं, तुम्हीं बतलाओ।'

रतन ने जरा ठहरकर उत्तर दिया—'आपके रुपये-पैसे और जायदाद के झगड़ों को मैं नहीं जानती, परन्तु मेरे जी में तो यह आता है कि उस लड़की के लिये कोई लड़का शीघ्र ढूंढ़ दो।'

भुजबल जरा झुंझलाकर अपनी बेबसी प्रकट करता हुआ बोला—'इतना कह देना तो बहुत आसान है, परन्तु लड़का ढूंढ़तें-ढूंढ़ते मैं तो आधा रह गया हूँ। या तो उसका विवाह उस बूढ़े शनीचर के साथ होता है, या कुछ दिन बाद वह लड़की बिगड़ती है, और समझ में नहीं आता।' और रतन की ओर देखने लगा।

रतन ने इस घोर समस्या को सुलझाने में अपने को असमर्थ समझकर कहा—'आप जो कुछ ठीक समझें, परन्तु यदि विवाह होने तक पूना को आप यहां बुला लें, तो कैसा हो?'

'तुम्हारी उसकी पट जायगी ?'

'आज तक आपने किसी के साथ मुझे लड़ते देखा ?'

भुजवल ने दुलार के साथ कहा—'यह लो, करने लगीं न उल्टी बातें। लड़ने और न पटने में जरा अन्तर है। वावू न जाने क्या कहेंगे ?'

रतन उत्साहित होकर बोली—'भैया को मैं खूब जानती हूँ। उन्हें पूना के आने से बड़ा हर्ष होगा।'

भुजबल ने धीरे से कहा—'तुम्हें एक बात नहीं मालूम। वतलाता हूँ। किसी से कहना मत।'

रतन के फीके चेहरे पर हलकी-सी मुस्कराहट दौड़ गई। बोली—'मुझे मालूम है।'

भुजवल ने आश्चर्य के साथ कहा—'कैसे ? किसने कहा ?'

फिर हँसकर बोला—'तुम स्त्रियां विचित्र जीव हो। न-मालूम क्या क्या जासूसी वेचारे मनुष्यों की किया करती हो।'

रतन नीची आँखों से ऊँचे देखते हुये मुस्कराती रही। भुजबल ने कहा—'उनकी इच्छा विवाह की थी। परन्तु धर्म-विरुद्ध होने के कारण वह इच्छा पूरी नहीं हो सकती। वह शायद मान गये होंगे, परन्तु पूना के यहां आने पर उनके हृदय को क्लेश होगा। मैंने सोचा है कि पूना को अपने घर भेज दूं।'

'पूना के मामाजी राजी हो जायेंगे ?' रतन ने पूछा।

भुंजवल ने सिर हिलाकर कहा—'सो तो सहज नहीं जान पड़ता। वह वहुत हठी और वेढव है। मैंने कहा था कि विवाह होने तक मेरे साथ छावनी भेज दो, परन्तु बाबू के नाम से ऐसा सनका हुआ है कि किसी तरह मानता ही नहीं है। एक शर्त लगाता है—विचित्र और विकट।'

'कौन-सी ?'

'कहता है कि यदि तुम्हें अपने घर लिवा जाना हो, तो उसके साथ भांवर डाल लो, फिर लिवा जाओ।'

रतन थोड़ी देर चुप रहकर वोली—'कोई वर न मिले, तो ऐसा ही कर लीजिये।' फिर मुस्कराकर कहा, जैसे सूखा फूल खिलने का प्रयास करे 'हम लोग एक से दो हो जायेंगे।' और नीचे देखने लगी।

भुजवल ने उसको सोचने का अवसर न देखकर कहा—'तुमने झटपट कह दिया। यह नहीं सोचा कि लोग-वाग क्या कहेंगे? वावू क्या कहेंगे? और तुम्हें अपना मुंह कैसे दिखलाऊँगा। पूना की रक्षा के लिये यदि मुझे कष्ट उठाना पड़े, तो मैं धीरज के साथ सह लूंगा, परन्तु तुम?'

रतन ने सिर उठाकर खनकते हुये गले से कहा—'मुझे कोई कष्ट न होगा। आपको दुःख न हो, यही चाहती हूँ। परन्तु आप दिल्लगी कर रहे हैं।'

भुजवल ने मुस्कराकर कहा—'अभी तो दिल्लगी ही है, परन्तु संसार में कर्म का विचित्र खेल हुआ करता है। कौन जानता था, कौन कह सकता था कि तुम्हारे साथ मेरा विवाह हो जायगा? भाग्य में जो कुछ होता है, होकर रहता है। न मालूम कव क्या हो जाय?'

'सो तो है ही।' रतन ने भाग्य की अखण्डनीय दलील को स्वीकार करते हुये कहा—'जो कुछ होना होगा, सो तो होगा ही, परन्तु अपनी शक्ति में उस लड़की की रक्षा करने में कोई कसर नहीं लगानी चाहिये।'

'मैं कसर नहीं लगाऊँगा।' भुजवल ने दृढ़ता के साथ कहा, और शांत होकर लेट गया।

रतन कुछ समय से कुछ कहने के लिये, जमुहाइयां ले रही थी। अनुकूल अवसर पाकर वोली—'परसों की वात सुनी है?'

'क्या?'

'आपके जमींदार मित्र संध्या-समय आपसे मिलने के लिये आये। कमरे में अंधेरा था। हम लोग भीतर थे। वह वैठे रहे। नौकरानी अंधेरे में किवाड़ लगा आई। आहट मालूम होने पर हम लोग लालटेन लेकर गये, उन्हें देखकर घवराये। पूछताछ की। इतने में मुझे जो पहले एक मास्टर पढ़ाते थे—नाम याद नहीं आता—किवाड़ों को ठोककर हल्ला

करने लगे। किवाड़ खुलने पर अंड-वंड बकने लगे। आपके मित्र तो चले गये, परन्तु वह बैठक में अचल से हो गये। हम लोगों ने कहा-सुनी की, तब हटे। आप नौकरानी से पूछ लेना।'

भुजबल यकायक उठ बैठा। फिर से सारी कथा को सुनकर बोला—'उस बदमाश, पाजी की यह हिम्मत ! इस कमीने अजितकुमार को पीस डालूँगा, तब चैन लूँगा।'

रतन ने उसे शांत करने की चेष्टा की, परन्तु उस रात भुजबल को नींद आई या नहीं, यह एक कठिन प्रश्न है।

[५०]

सवेरे जब भुजबल और ललितसेन ने बिस्तरे छोड़े, तब एक दूसरे से किनारा काटना चाहते थे, परन्तु नौकरानी ने ललितसेन से कुछ कहा। ललितसेन अपनी बहिन से बात करके बैठक में आया। भुजबल भी आ गया। भुजबल एक पुस्तक के पन्ने लौटने लगा। ललितसेन चुपचाप बैठा सोचने लगा।

निदान ललितसेन बोला—'परसों की बात तुमने सुनी है ?'

भुजबल ने कहा—'हाँ, कुछ आश्चर्य नहीं हुआ। वह आधा क्या पूरा पागल हो गया है। मेरी समझ में उसे तो पागलखाने में भेजने का बन्दोबस्त करना चाहिये।'

'पागलखाना या जेलखाना, इनमें से एक की व्यवस्था अवश्य करनी पड़ेगी।' ललितसेन ने अपनी ठोड़ी पोंछते हुये कहा—'मेरी समझ में नहीं आता कि वह बदमाश शिवलाल यहां क्यों आया था। इस शिवलाल के कारण जितनी परेशानी हुई, उतनी कभी किसी पागल ने किसी को नहीं पहुँचाई होगी।' और, कुपित दृष्टि से एक बार भुजबल की ओर ताक कर दूसरी ओर देखने लगा।

भुजबल ने आत्मरक्षा का पैंतरा बदलते हुये कहा—'वह जैसा पाजी है, यह मैंने अब जाना, और उसके होश ठीक करने के लिये जो कुछ हो सकता है, वह करवा ही आया हूँ, परन्तु इस वनचर को तो देखिये।'

'मुझे तो सब पशु प्रतीत होते हैं।' ललितसेन ने कुछ अधीरता के साथ कहा—'शिवलाल को मैं पहले गधा समझता था, अब कुत्ता समझता हूँ।'

भुजबल क्षोभ का लक्षण न दिखलाते हुये बोला—'हाँ सो तो है ही, परन्तु यह मास्टर मेरी समझ में अच्छी तरह न आया।'

ललितसेन के दिल में यह कुछ गड़ गई। बोला—'मैं उसे खूब समझता हूँ। पागल नहीं है, अहमक है। उसकी पीठ खुजलाती है। दो कोड़े लगा देने से ही ठीक हो जायगा। उसे किवाड़ खुलवाकर शोर करने की जरूरत न थी। परन्तु तुम्हारे उस सनीचर को यहाँ आने की क्या अटक पड़ी थी?'

'उसे तो यह मालूम नहीं था कि हम लोग घर पर नहीं हैं। बहुधा ऐसा होता है कि कोई सीधा या बेवकूफ आदमी कहीं पर जाता है, किसी को उस स्थान पर न पाकर ठिठक जाता है, रह जाता है, और नाहक धक्के खाता है!'

'और उसे चोर समझकर रास्ते से चलने वाला कोई गरीब मास्टर मदद के लिये दौड़ पड़ता है, सब स्वाभाविक है। फिर भी जी को काफी मतलाने वाला है!'

जरा ठहरकर ललित ने कहा—'और जिसके लिये दस हजार नकद रुपये ठगने की क्रिया मालूम है, उसे मिलने के बहाने आकर बैठक का सामान चुराने में कितनी देर लगती है? वाह, कैसे मालिक के आप मुख्तार आम हैं! बड़ी शोभा-प्रतिष्ठा की बात है।'

'यह ताना आपका व्यर्थ है।' भुजबल ने अपने झुंझलाये हुये चित्त को संयत करके कहा—'मैं कौन किसी के भीतर बैठा हूँ? परंतु जो कुछ उसने किया है, वह उसका किया पावेगा। आपसे एक प्रार्थना है।'

ललित ने तीखी मुस्कराहट के साथ कहा—'क्या जाति का कोई और व्यक्ति किसी कर्ज में फँसा है, जिसके बचाने की चिंता में आप घुले जा रहे हैं?'

भुजबल ने अनुनय के साथ कहा—'आप इस समय दिल्लगी मत करिये। अजित के मामले को यों ही छोड़ देने से बदनामी होगी। न-मालूम यह नौकरानी क्या-क्या कहती फिरती होगी। लत्ते का साँप बन जायगा। और हम लोग मुंह दिखाने के लायक न रहेंगे! अजित पर फौजदारी में दावा करना चाहिये।'

'और शिवलाल को कहीं के सिंहासन पर बिठला देना चाहिये।' ललित ने व्यंग्य किया।

भुजबल बोला—'उसका प्रबंध तो हम लोग पहले ही कर चुके हैं। अब इसे देखना चाहिये। मदाखलत बेजा में दावा होगा।'

'करो।' ललित ने कहा—'खूब पीसो उस बेईमान अजित को। पर गवाही कौन देगा? रतन तो कचहरी में जायगी नहीं, चाहे आप मुंह दिखाने योग्य न रहें, और चाहे मैं।'

'कोई जरूरत नहीं।' भुजबल ने कहा—'अकेली नौकरानी की गवाही होगी। आप मैजिस्ट्रेट से जरा मिल लें।'

सोचकर ललितसेन ने कहा—'यह ठीक है। वैसे भी उस राक्षस सर्व-भक्षी शिवलाल के बारे में मैजिस्ट्रेट से कहना-सुनना पड़ेगा। इसके विषय में भी कह आऊँगा। उन दोनों पर दावा करना पड़ेगा। एक पर चोरी का और दूसरे पर मुंहजोरी का।'

ललितसेन कमरे में टहलने लगा। मूछों पर हाथ फेरता हुआ बोला—'क्या बात है! अच्छी जमींदारी मोल ली। दस हजार रुपये पर पानी फिर गया। अब मुकदमेबाजी करने पर उतारू हुआ हूं। एक झांसी में दूसरा छावनी में। मैजिस्ट्रेटों और वकीलों की खुशामद करनी होगी। मुख्तार साहब बाबू भुजबल बहादुर की पग-पग पर राय लेनी होगी। भविष्य बड़ा उज्ज्वल है।'

फिर जरा तड़ककर बोला—'तुमने खूब फँसाया।' फिर यकायक थमकर और धीरे से बोला—'नहीं, आपका कोई दोष नहीं। मैं ही बड़ा गधा हूँ। अपने सदा के निश्चय पर अड़ा रहता, तो यह अवसर न

आता। तुम सचमुच ऐब से पाक हो। मैंने यदि विवाह का निश्चय न किया होता, तो यह ज़िल्लत न उठानी पड़ती।'

भुजवल चुप रहा। ललित थोड़ी देर टहलने के वाद वोला—'मैं न-जाने क्या-क्या कह गया हूँ। भाई, वुरा न मानना, चित्त ठिकाने न था। उस लड़की के विवाह के संवंध में कुछ हुआ? परन्तु तुम भी तो उसी उलझन में अटक रहे हो, जिसमें मैं। तुम्हें क्या पता?'

भुजवल ने मिठास के साथ कहा—'कुछ पता तो है। एक भयंकर विकट समस्या खड़ी हो रही है। जो चाहता है, उसके साथ विवाह नहीं हो रहा है, और जो नहीं चाहता है, उसके मत्थे इस आफत के मढ़े जाने का हठ किया जा रहा है।'

'कौन? कैसा?' ललित ने शान्ति के साथ पूछा।

'आप चाहते थे। शिवलाल चाहता था। लड़की का मामा किसी के लिये राज़ी न हुआ। अव मेरे सिर हुआ है। अचम्भा मत करिये। मैं गाली दे-देकर उसको हटाता हूँ, और मेरे सिर आता है। कहता है—मरने के पहले उसकी माँ कह गई है।'

वहुत देर वाद ललित के चेहरे पर हँसी आई। वोला—'वेशक, इस कुल मामले में काफी मजाक भरा हुआ मालूम होता। मैं तो अव इस तरह के झगड़ों से सदा के लिये हाथ धो वैठा हूँ। मुकद्दमों से फ़ुरसत पाकर तुम उस भोली लड़की के व्याह का कहीं ठीक-ठाक कर दो।'

'मैं इस विषय में वहुत शीघ्रता करना चाहता हूँ।' भुजवल ने उत्तर दिया। फिर माथे पर दोनों हाथ रखकर, आँखें मूँदे हुये वोला—'वड़ी विपत्ति में हूँ। समझ में नहीं आता कि क्या करूँ।'

[५१]

ललितसेन को शांत देखकर भी भुजवल कुछ वेचैन था। कार्य-विधि की कोई अन्तिम कड़ी अनिश्चित और अस्पष्ट भविष्य के धुंधलेपन में उसकी सारी शक्तियों के प्रयोग का आवाहन कर रही थी। परन्तु वह एक आशा पर काम कर रहा था—अन्त में विजय। सफलता के पवन-

यान में वह उड़ता चला जा रहा था। लिहाज, मुरव्वत और विघ्न-बाधाओं का उसे वहीं तक वेखयाल था, जहां तक असफलता के खड्ड में उसे गिराने का बल न रखते हों। अन्यथा उसके चरित्र में इस तरह के अटकाव या उलझाव पर मनोनिग्रह कर लेने के लिये स्थान न था। कानून जहां तक पकड़ न सके, तहां तक उसकी परवा नहीं थी। ललितसेन की किसी विशेष अवसर पर क्या मनोवृत्ति होगी, किसी कंप के समय क्या विस्फोट, क्या गर्जन-तर्जन होगा, उसकी विभीषिका कभी-कभी उसे बेचैन कर देती थी, परन्तु वह अपने मंसूबे में इतना मस्त था, अपनी लगन पर इतना लट्टू था, अपनी आशा में इतना चूर था कि वह विभीषिका एकाध क्षण के लिये ही उसे संतप्त कर पाती थी। उसकी लचीली प्रकृति चोट खाकर फिर यथावत अपने स्थान पर आ जाती थी।

ललितसेन के पास से भुजबल शिवलाल के पास गया। वह बेतावों की तरह मिला। भुजबल के चेहरे पर मुस्कराहट थी।

'क्यों जी, इतने दिन कहाँ थे ? न मालूम कितना तलाश किया।'

'एक काम से बाहर गया था।'

'वह परसों तो निकल गया। अब परसों निकल जाने के लिये आने वाला है ?'

'ये सब बेवूफ पहेलियाँ हैं—सीधी बात यह है कि शादी होगी या नहीं ?'

'होगी।'

'कब ?'

'अतरसों।'

'अब की बार अतरसों ! खैर, आवे और निकल जावे। परन्तु भविष्य की सोच लेना। तुम्हारे कराये सब बैनामों पर पानी पड़ ही जायगा—तुम्हीं ने बतलाया था, और थोड़ा-सा मैं भी जानता हूं।'

भुजबल ने बेफिक्री के साथ कहा—'आपका कहना बिलकुल सही है। रुपया दाखिल कर देना चाहिये, वरना आप भी मुसीबत में पड़ेंगे।'

'मैं अकेला ?' शिवलाल ने अचम्भे के साथ पूछा—'चार हजार रुपये तो तुम्हारे पास रक्खे हैं। उन्हें ही जमा कर दो। इससे मुहलत मिल जायगी। वाकी का इन्तजाम फिर हो जायगा।'

'हां, अच्छी वात है। हो ही जायगा ?'

भुजवल ने जमुहाई लेते हुये कहा—'शादी अतरसों के लिये पक्की है। मैं अभी सिगरावन जाकर प्रवन्ध करता हूँ। मैं अपना कर्तव्य-पालन किये देता हूँ, आप अपना करिये।'

'कौन-सा ?' शिवलाल ने उत्सुकता के साथ पूछा।

'अदालत में जमा करने के लिये कम-से-कम छः हजार रुपये तैयार कर लीजिये।'

'इतना रुपया तो पास नहीं है।'

'तो विवाह न होगा, इसमें जरा भी सन्देह नहीं।'

'परन्तु अदालत में रुपया दाखिल करने के वाद मामाजी की नाहीं का सवाल अवश्य ही फिर पैदा होने का पूरा अन्देशा है।'

'अदालत में दाखिल मत करिये। घर में रखिये। अमानत में किसी के पास भी नहीं। और पक्का वचन दे दीजिये कि आप उस रुपये का अपव्यय न करके व्याह के वाद अदालत में दाखिल कर देंगे।'

'पक्का वचन देता हूँ।'

'यह वहुत सहज है, परन्तु ठोस थैली और घर में रख लीजिये, तव विश्वास होगा।'

शिवलाल के चेहरे पर चिंता की छाया पड़ गई। थोड़ी देर सोचकर वोला—'गहने वनवा लिये हैं। घोड़ा-गाड़ी ले ली है, कुछ नकदी भी है। पूरे छः हजार हो पाना तो कठिन है।'

भुजवल ने कहा—'पांच हजार ही सही।'

शिवलाल ने उत्साह के साथ उत्तर दिया—'वह हो जायगा। यानी जितना हो जायगा, कल तुम्हें दिखला दूंगा।'

[५२]

समय को भुजबल ने अपने कार्य-क्रम में यथोचित स्थान दे रक्खा था। वह जानता था कि योजना की सिद्धि होनी है, तो भली-बुरी जैसी भी परिस्थिति है, इसकी अपेक्षा अच्छी शायद ही कभी उपलब्ध हो। समय थोड़ा और काम बहुत, इस बात का ख्याल करके उसकी प्रेरक शक्ति कुंठित नहीं, किन्तु उत्तेजित हुई।

भुजबल उसी दिन सिगरावन पहुंचा। लालसिंह मिला, उदास था।

भुजबल से बोला—'किसी ने पूना को सताया है।'

'किसने ?' भुजबल ने विस्मय और व्यग्रता के साथ पूछा।

लालसिंह ने उत्तर दिया—'सयाने कहते हैं कि उसकी मां ने सताया है। मरने के ठीक पहले उसने पूना का नाम लिया था।'

भुजबल ने खिसियाकर प्रश्न किया—'आप भी क्या खूब हैं ! बतलाइये तो है क्या उसे ?'

लालसिंह की त्योरी हिली डुली नहीं। जवाब दिया—'देखने में ज्वर है। परन्तु शरीर गरम नहीं है। माथे से पसीना आता है। कभी-कभी अचेत-सी हो जाती है। कई बार बोली—'कहाँ लिये जाते हो ? वह कहाँ है ? मां, ठहरो, मैं भी आती हूँ।'

भुजबल ने एक क्षण ठहरकर पूछा—'कोई दवा दी ?'

'दवा का काम नहीं है। आज रात को पीपल में झिझरी लटका आऊँगा। दुर्गाजी ने चाहा, तो कल चंगी हो जायगी।'

भुजबल ने आराम से सांस लेकर कहा—'तब कुछ चिंता की बात नहीं है। वह मुहूर्त परसों रात तक का बैठता है।'

'परसों रात को ! इतनी जल्दी ! फलदान, लगन, मण्डप, तेल इत्यादि सब एक दिन में कैसे हो जायेंगे ?'

'जल्दी का कारण है। शिवलाल से जो गाँवों का बैनामा कराया था, वह यह भड़ी देकर कि पूना को ब्याह देंगे—आपको शायद मालूम नहीं। मां जी को यह बात मैंने बतला दी थी। यदि अतरसों तक ब्याह

रुका रहा, तो शिवलाल फौज-पुलिस लेकर यहाँ आवेगा, और बड़ी कुगति होगी।'

किसान लालसिंह घबरा गया। बोला—'कहाँ की आफत बिसाई मैंने!'

भुजबल बोला—'कोई आफत नहीं है। बड़ी जाति की लड़की का एक बार ब्याह हो जाने के बाद दूसरी बार फिर नहीं होता। परसों भांवर पड़ जायें, फिर खबर फैलने में देर न लगेगी, फिर कोई पुलिस-फौज बखेड़ा करने न आवेगी। कुंवारी लड़की पर दावा भले ही चल जाय, ब्याही पर थोड़े ही चल सकता है।'

'यह आपको ठीक मालूम है कि शिवलाल कल या परसों ही न आ जायगा?'

'ठीक मालूम है।'

लालसिंह ने कुछ व्याकुलता के साथ कहा—'मैंने जब से यह सुना था कि किसी बाबू ने अपने गाँव पूना के नाम कर दिये हैं, तभी से मैं डर रहा था। अब क्या करूँ? कैसे अपनी आबरू बचाऊँ?'

'डरने की कोई बात नहीं है जी।' भुजबल ने आश्वासन देते हुये कहा—'अतरसों के पहले उसके आने की सम्भावना होती, तो मैं आपसे सबसे पहले कहता, और इस काम को और भी जल्दी कर डालने का आग्रह करता। परन्तु ऐसे कामों में उलझ जाना पड़ा कि किसी तरह से उबर न सका।'

लालसिंह ने डरते हुये पूछा—'क्या वे गाँव वापस नहीं हो सकते? हो जायें, तो सिर से बला टल जाय।'

'मैं तो सब कुछ चाहता हूँ।' भुजबल ने उत्तर दिया—'परन्तु वह राक्षस तो मानता ही नहीं।'

जैसे सहसा कोई सहारा मिल गया हो। लालसिंह बोला—'ललित-कुमारजी को भी न्योते में लेते आइयेगा, और उनके साथ थोड़े-से लठैत। उनके आ जाने से हम लोग निर्भय हो जायेंगे। बड़े आदमी हैं।'

भुजबल ने अवहेलना के साथ कहा—'इस चिन्ता में तुम बिलकुल मत पड़ो। बाबू ललितसेन को बहुत काम है, शायद न आ सकें। तुम घबराओ मत। मेरी तदबीर आदमियों की लाठी के बल से कहीं ज्यादा ताकतवाली है।'

'तो क्या रिश्तेदारों को न बुलाओगे ?'

'जितनों को आसानी से और बिना खबर फैलाये बुलाया जा सकता है, उतनों को बुला लेंगे। भीड़-भाड़ करने से शिवलाल को खबर लग जायगी, तो बंटाधार हो जायगा। बिना किसी घूमधाम के चुपचाप विवाह होगा।'

'बाबू ललितसेन तो न कह देंगे शिवलाल से ?' लालसिंह ने कहा।

'कभी नहीं। परन्तु मैं तो इस तरह से काम करना चाहता हूं कि ललितसेन को क्या, किसी को कानोकान खबर न हो। समझ गये ?'

लालसिंह ने सिर हिलाकर कहा—'हाँ।'

फिर बोला—'आपकी तरफ के ये दो किसान, बुद्धा और पैलुआ, यहाँ पर हैं। कहीं शिवलाल से ये न कह दें ? इन्हें गांवों के देने का हाल मालूम है।'

'वे लोग वहां न जायेंगे—और जायें भी, तो कुछ भय नहीं। यह जाहिर न हो कि मेरे साथ ब्याह हो रहा है।'

यह बात लालसिंह की समझ में न आई। भुजबल समझ गया।

बोला—'अच्छा, उन्हें बुलवा लीजिये। मैं ठीक किये देता हूँ।'

लालसिंह ने नम्रता के साथ कहा—'उन्हें यहाँ मत मारिये-पीटियेगा। बड़े दुखिया हैं।'

'आप बुलाइये तो।' भुजबल ने जरा झुंझलाकर कहा—'मैं कोई मरकहा बैल थोड़े ही हूँ।'

थोड़ी देर में लालसिंह उन दोनों को लिवा लाया। बुद्धा का बुखार छूट गया था, परंतु दुर्बल बहुत था। बुद्धा भयातुर-सा और पैलू निर्भीक गति के साथ आया।

भुजवल ने मुस्कराते हुये मीठे स्वर में कहा—'आओ जी, बैठो। अब लगान कब दोगे भाई ?'

वुद्धा का भय और पूर्व-परिताप शायद चला गया था। नम्रता के साथ बोला—'मालिक देंगे। पर अभी गाँठ में कौड़ी नहीं है। न-जाने कैसे घड़ियां काट रहे हैं।'

पैलू उस मिठास से स्तम्भित हो गया। कुछ कहना चाहता था, परन्तु न कह सका। भुजवल ने कहा—'पैलू हमसे बहुत नाराज हैं। कहो भाई; लगान छोड़ दें, तव तो प्रसन्न होओगे ?'

पैलू ने उत्तर दिया—'न महाराज, एक पैसा मत छोड़ो। कौड़ी-कौड़ी देंगे, परन्तु इस समय नहीं है।'

'नहीं, हमने तुम दोनों का लगान माफ किया। आज ही घर चले जाओ।' भुजवल ने वड़े गौरव के साथ कहा।

वुद्धा बोला—'क्यों न हो। तुम्हीं मारने वाले और तुम्हीं पालने वाले हो।'

पैलू कुछ हिचकिचाहट के साथ बोला—'वैसे तो हमने ठान ली थी कि चाहे प्राण भले ही चले जायें, परन्तु एक कौड़ी न देंगे, और जमीन छोड़कर यहीं पर मेहनत-मजदूरी कर खायेंगे। लेकिन अब कुछ न रक्खेंगे। जहां से वनेगा, देंगे। देंगे कुछ देर में, क्योंकि गांठ में कुछ नहीं है।'

'अव अपने घर जल्दी जाओ।' भुजवल ने कुछ आतुरता के साथ कहा।

पैलू ने आँख का एक कोना वुद्धा की ओर घुमाकर भुजवल से कहा—'चले जायेंगे। जल्दी जायेंगे।' रोज खोदते हैं और पीते हैं। इससे घर अच्छा। जल्दी ही जायेंगे।' फिर दोनों एक चिलम तम्वाकू पीकर वहाँ से चले गये।

वुद्धा कहता गया—'आज शाम को नयेगांव में न्योता है। कल चले जायेंगे।'

[५३]

उस दिन भुजबल छावनी लौटकर नहीं गया। ललित बैठक में अकेला बैठा था। कुछ दिन से दर्शन-शास्त्र के अध्ययन में अरुचि-सी हो गई थी। हारमोनियम को तो छूता भी न था। कुछ सप्ताह से पैर-गाड़ी का शौक लगा था। यद्यपि सवारियों में बिलकुल शुरू-शुरू में, पैर-गाड़ी की सवारी अत्यन्त मनमोहक होती है, तथापि इन दिनों उस ओर से भी जी लौटा हुआ-सा था। बैठक में अकेले बैठे बैठे चित्त उकता उठने के कारण भीतर गया। रतन खाना बना रही थी। जिस ओर से ललित आ रहा था, उस ओर रतन का ध्यान न था।

ललित कुछ क्षण ठहरकर उसकी ओर देखता रहा। कमल की कली बिना खिले ही मुर्झा चली! प्रात:काल होते ही बाल-रवि को कोहरे ने ग्रस्त कर लिया! स्वर की झंकार के साथ ही वीणा का तार टूट गया! सुनहरी हरियाली पर कठोर लू! यज्ञ-मंडप पर वज्र-पात। हास-विलास के स्थान पर पीड़ा का नि:श्वास! पवित्रता की वेदी पर प्रकाश-रश्मि का बलिदान!

पहले भी ललित ने रतन के चेहरे के बढ़ते हुये फीकेपन को लक्ष्य किया था, परन्तु उसकी हीन-क्षीण कांति को देखकर दिल पर जैसी चोट आज लगी, उससे वह कराह उठा।

रतन ने उस ओर आँख उठाई। ललित ने कठिनाई से भावोत्तेजना को रोककर कहा—'रतन, बेटी!' मानो इन दो शब्दों के समुद्र में विमल मधुर प्रेम की धारा समा गई हो।

रतन ने उस मिठास का विशेष प्रयोजन न समझकर कहा—'भैया, क्यों? खाने में अधिक विलंब नहीं है, तैयार है।'

'तुम आज कल कुछ पढ़ा करती हो? क्या पढ़ती हो?'

ललित के कंठ में अब भी कुछ अटका हुआ सा मालूम पड़ता था। रतन ने मुस्कराकर कहा (व्यथा-थकित, अतीत-कालीन दिव्य मुख के फीके मंडल की संकुचित मुस्कराहट संसार की एक दुस्सह दुर्घटना है)—

'एक पुस्तक सतियों के चरित्र पर है, उसे पढ़ती हूँ। उसमें स्त्रियों के कर्तव्य समझाये गये हैं।'

ललित का चेहरा अङ्गारे की तरह हो गया। बोला—'सतियों के चरित्र ! स्त्रियों के कर्तव्य ! यह कलम कुल्हाड़ी न मालूम पुरुषों के पेट को क्यों नहीं फाड़ती ? पुरुषों के कर्तव्य पर तब शायद कुछ लिखा जायगा, जब स्त्रियों का धरती से लोप हो जायगा।'

रतन ने बात टालने के अभिप्राय से कहा—'भैया, आज मैंने एक नया साग बनाया है। खूब पेट-भर न खाओगे, तो मेरा श्रम अकारथ जायगा।'

'खाऊँगा बेटी ! आज हम-तुम दोनों साथ बैठकर खायेंगे। बहुत दिनों से नहीं खाया है।' ललित ने कहा, और साथ ही आँख में आई हुई एक निर्मल बूंद को कठोरता के साथ पोंछ डाला।

रतन ने देख लिया। समझ लिया। कुछ न बोली। फिर खाना बनाने में लग गई।

ललित आँगन में व्यस्त-त्रस्त-सा टहलने लगा। कुछ कहना चाहता था, परन्तु बार-बार कुछ गले में अटक जाता था। थोड़े ही क्षणों में रतन के अध्ययन-काल का चित्र आँखों के सामने घूम गया। भुजबल की भेंट, उसके बाहरी रूप पर मोहित होकर आतुरता के साथ रतन का विवाह कर देना इत्यादि घटनायें रेखा की तरह आँखों के सामने खिच गईं।

मन में कहा—'मैंने ही अपनी बहिन का वध किया है। उस शूकर के गले में दिव्य मुक्ताओं का यह हार ! ओह, क्या से क्या हो गया ! मेरे जैसा दुर्बल पिशाच कोई न होगा।' जरा धैर्य प्राप्त करने पर बोला—'तुम्हें सुखी न देखकर कलेजा छीजता रहता है बेटी !'

रतन ने खाना बनाना बन्द कर दिया। त्योरी चढ़ाकर बोली—'तुम्हें भैया, न जाने क्या हो गया है। जब देखो, तब इसी तरह की बातें किया करते हो। बतलाओ, मुझे काहे का दुःख है ? नित्य सेर-भर खा

जाया करती हूँ। पुस्तकें पढ़ती हूँ। अपना काम देखती हूँ।' और खिलखिलाकर हँस पड़ी।

ललित ने कहा—'बड़ी पागल है। बेटी, हम तुम दोनों अब नित्य साथ ही खाना खाया करेंगे। इस नियम का व्यतिक्रम करोगी, तो मुझे भूखों मरना पड़ेगा।'

रतन की 'हां' सुनकर ललित बैठक में चला गया। मास्टर साहब—अजितकुमार—का ध्यान आया। सोचने लगा—'इससे क्या वह बुरा था? बहुत सुन्दर न था, परन्तु कुरूप भी न था। दोनों एक-दूसरे को अवश्य थोड़ा-बहुत चाहते थे। जाति का था। जन्मपत्री मिलती या न मिलती। उससे क्या होता? इस जन्मपत्री के मिलने पर ही क्या हुआ? उसका दोष क्या था। हाथ से कैसा रत्न खोया! और मैंने उसे अपमानित किया! निकाल दिया! कूड़ा समझा! फिर भी वह उस दिन सहायता के लिये आया! मैंने उस पिशाच शिवलाल की लीला और अजित की वीरता को उस दिन भी न पहचान पाया! दावा दायर कर दिया! अजित चोरी करने आया था! दरिद्र-वेश में वह पुरुषार्थी मेरा अपमान करने आया था!'

फिर यकायक उसके मुंह से निकल पड़ा—'कल दावा खारिज कराऊँगा।'

'क्या खारिज कराओगे भैया?' रतन ने आकर कहा—'खाना तैयार है। चलो, नहीं तो ठण्डा हो जायगा।'

'चलो।' ललित कुछ संकोच के साथ बोला।

रतन के साथ खाना खाते-खाते मन में ललित ने कहा—'इतनी जल्दी दावा खारिज नहीं कराना चाहिये। मैजिस्ट्रेट न जाने क्या कहेगा। जितनी जल्दबाजी दावा दायर करने में की है, उतनी खारिज कराने में नहीं करनी चाहिये। परन्तु अन्त में खारिज कराऊँगा, यह निश्चित है।'

(५४)

एक दिन में इतना शारीरिक और मानसिक काम कर डालने के पश्चात् भुजवल ने अपने को खूब अच्छी तरह सो लेने का अधिकारी समझकर लालसिंह की पौर में विस्तरों का आश्रय लिया। थोड़ी देर तक सोचता रहा—'पूना की तवियत क्यों खराव हो गई?' परन्तु किसी विशेष वीमारी की कोई विषमता न देखकर संतोष कर लिया। अव वह सामने न आवेगी। विवाह के शब्द ने ही उसे लज्जा के वश में कर दिया होगा।

उधर रात होने के वाद लालसिंह झिझरी लेकर गाँव के वाहर तालाव के निकटवर्ती पीपल की ओर चला। मिट्टी की एक वड़ी हाँडी में चारों ओर छोटे-वड़े छेद थे। भीतर हाँडी की तली में थोड़े से गेहूँ, ताँवे का एक पैसा और सिन्दूर रक्खा हुआ था। उस पर तेल का दिया जिसमें रुई की वटी हुई चार मोटी वत्तियाँ। रात विलकुल अंधेरी थी। नीले आकाश में मुकुलित नक्षत्र दमक रहे थे। परन्तु पृथ्वी पर उनके प्रकाश की छाया मात्र थी।

लालसिंह अपनी उस झिझरी को पीपल की शाखा में टाँग आने के लिये डरते हुये जा रहा था। अधमुंदी आँखों से मार्ग टटोलने के लिये केवल पैरों के पास की जमीन को देखता जाता था। एक आध वार दायें-वायें आँख परवश गई भी, तो दिशायें नाचती हुई-सी मालूम पड़ीं। मन-ही-मन दृढ़ता के साथ दुर्गाजी का नाम स्मरण करता चला जाता था, और मजवूती से झिझरी को पकड़े था। एक वार मन में कहा—'यदि वहन का देहांत यहां न हुआ होता, तो कैसा अच्छा होता।'

इतने में पीपल के पास से जाने वाली पगडंडी पर किसी की आहट मिली। दिशायें और वेग के साथ नाचती हुई मालूम पड़ीं। एक क्षण के लिये ऊपर देखा, तो ऐसा आभास हुआ, मानो सम्पूर्ण आकाश खद्योतों से भर गया हो, और तारे टूट-टूट कर इधर उधर पलायमान हो रहे हों। हवा नहीं चल रही थी। सव पेड़ शांत थे। पक्षी नीरव,

केवल झींगुर झंकार कर रहे थे, और पीपल के पत्ते अनन्त स्वर से खड़खड़ा रहे थे।

लालसिंह को पीपल की तिमिराच्छन्न छाया में दो आकार दिखलाई पड़े। बहुत निकट पहुंच गया था, परंतु पहचान न सका। आकार थे, अथवा आकार-सदृश सफेद या घूमरे से।

लालसिंह ने जोर से दुर्गाजी को पुकारना चाहा, परंतु जबान ने नाहीं कर दी। पैर न तो आगे बढ़े, और न पीछे हटे। इतने में उस आकार से चीत्कार निकला—'खा लिया।'

तुरन्त लालसिंह ने चीत्कार किया—'खा लिया।' और साथ ही उन आकारों की ओर झिझारी को फेंककर बेतरह घर की ओर भागा—न कुछ देखा, और न कुछ सुना।

झिझरी उन आकारों से टकराकर टूट गई। एक आकार से जोर का शब्द हुआ—'अरे मार डाला!' और धड़ाम से वहाँ कोई धराशायी हो गया।

दूसरा आकार दो कदम पीछे को हट गया, परन्तु न तो वहां से भागा, और न गिरा। झिझरी की एक बत्ती धूल के एक पतले नुकीले ढेर पर गिरकर जलती रही।

वह आकर कुछ क्षण स्तम्भ की तरह खड़े रहने के बाद धराशायी की ओर बढ़ा। ठिठका और फिर बढ़ा। जलती हुई बत्ती को और चारों दिशाओं में आँख गड़ा-गड़ाकर देखने लगा। कहीं कुछ भी न दिखलाई पड़ा, केवल गाँव की ओर भागते हुये किसी के पैर की आहट सुनाई दी।

धीरे से बोला—'बुद्धा, बुद्धा!'

परन्तु धराशायी व्यक्ति बिलकुल बेहोश था। न बोला।

बतलाने की आवश्यकता नहीं कि दूसरा व्यक्ति पैजू था। वह भी काँप रहा था।

उसने थर्राते हुये हाथ से बुद्धा को लौटा-पौटा। मरा न था, परन्तु मृतक-सा जान पड़ता था।

पैलू ने कठिनाई से उसको कन्धे पर लादा, और बड़ी कठिनाई से वह उसे गांव तक ला पाया। संध्या के उपरांत ही लोग अपने-अपने किवाड़ बन्द करके विश्राम कर रहे थे। कोई भी न दिखलाई दिया। पैलू ने बुद्धा को घर पर लाकर लिटा दिया। जिस घर में ठहरा हुआ था, उसके रहने वालों के प्रश्नों का कोई ठीक उत्तर न देकर या न दे पाकर केवल इतना कहा—'देवता का सताया हुआ है।' पैलू की वह रात बड़ी कठिनता से कटी।

[५५]

प्रातःकाल होने पर बुद्धा को चेत आया। परन्तु उसकी अवस्था बुरी थी। बुखार का मारा हुआ होने के कारण इस दैवी मार से निस्तेज हो गया। आंख फिर फिर जाती थी। दृष्टि बहुत क्षीण हो गई थी। तन पर कपड़े नहीं थे, खाने को अन्न न था। मजदूरी करने जा न सकते थे, जिससे एक बार पेट में डालने लायक अनाज मिल जाता। आशा हुई थी कि भुजबल का कोप शान्त हो गया है, अब शीघ्र घर बार देखने को मिल जायगा। घर पर भी दूध की धार नहीं बहती थी, परन्तु मरने के लिये अपनी जन्म-भूमि तो थी।

दिन चढ़ते-चढ़ते गाँव-भर में समाचार फैल गया कि बुद्धा को देवता ने सताया है। सयाने और नावते आ-आकर तरह-तरह के निदान और उपचार बतलाने लगे, परन्तु सिवा होम की भस्म के और कोई चीज ऐसी न थी, जिसके लिये पैसे कौड़ी की जरूरत न पड़ती हो। भीड़ छँट गई, और लोग अपने-अपने काम में लग गये। लालसिंह को भी बुद्धा का हाल मालूम हुआ। वास्तविक घटना का भी संदेह हुआ, परन्तु यथार्थ तथ्य की ओर ले जाने वाले संदेह को जहाँ का तहाँ सुलाकर लालसिंह ने भी दैवी घटना में विश्वास किया, और अपने आँख-देखे प्रमाण की इस प्रकार मुहर लगा दी—'झिझरी चढ़ाकर जब मैं लौटने को हुआ, तब मैंने भी देवता के दर्शन किये। मेरे घर पर लौट आने के बाद इन लोगों ने देवता का कुछ अपमान किया होगा, तभी यह कष्ट भोगना पड़ा।'

भुजवल ने इस घटना को न तो समझा, और न उस पर विश्वास किया, परन्तु वह वुढ्ढा के पास गया। वोला—'कुछ वात नहीं है जी। यों ही घवरा गये हैं। पैलू, इसे आज ही लहचूरा ले जाओ। मैं तुम्हारा लगान माफ कर चुका हूँ। अव यहां पड़े-पड़े दिन मत खराव करो।'

पैलू वोला—'गाँठ में एक कौड़ी भी नहीं है। इसे बड़े वेग का ज्वर चढ़ा हुआ है, कहाँ ले जाऊँ ? कैसे ले जाऊँ ?'

'मैं तुम्हें एक रुपया दूंगा और वैलगाड़ी। आज चले जाओ।'

'ऐसी अवस्था में तो इसे न ले जाऊँगा।' पैलू ने कहा—'जव अच्छा हो जायगा, तभी हम लोग जा सकेंगे।'

'देर लगाने से लगान की माफी की वात मुझे वापस लेनी पड़ेगी। तुम लोग ऐसे मूर्ख हो कि अपना नफ़ा-नुकसान कुछ भी नहीं समझते।' कहता हुआ भुजवल चला गया।

पैलू ने उसके चले जाने पर इतना कहा—'मैंने लगान की माफा माँगी कव थी ?' और दांत पीसकर रह गया।

जिन लोगों के साथ पैलू और वुढ्ढा ठहरे हुये थे, वे वहुत दरिद्र थे, परन्तु सम्वन्धी थे, और खेतों में घोर परिश्रम करते रहने पर भी उनके हृदय में दया ज्यों-की-त्यों वनी हुई थी। उन्होंने अपना पेट काटकर उन दोनों को खिलाया, क्योंकि वे लोग भी वुढ्ढा की वीमारी के कारण मजदूरी के लिये वाहर न निकल पाये थे।

(५६)

पीपल पर या पीपल के पास झिझरी चढ़ा आने या फोड़ आने के वाद भी पूना को वहुत अस्वस्थ देखकर लालसिंह को चिंता हुई। दुपहरी में भुजवल आभूषण इत्यादि विवाह का आवश्यक सामान लेने का प्रयोजन वतलाकर छावनी चला गया, और उस रात लौटकर नहीं आया।

अँधेरे हो गया था। हाथ में जलता हुआ दीपक लेकर पूना धीरे-धीरे चली। मन्दिर में पहुंचकर देवी की मूर्ति के चरणों में दीपक रखकर

प्रणाम किया। दीपक पास ही था। कम्पित प्रकाश विपण्ण मुख पर और देवी की मूर्ति पर पड़ रहा था। प्रकाश और छाया की वारीक रेखायें कम्पित ज्योति की किरणों में पूना के पीले मुंह को और भी पीतवर्ण प्रदान कर रही थीं। आह भरकर पूना खड़ी हो गई। उस निर्जन अन्धकारमय संसार में भीतर की आँखों से आश्रय-स्थान-सा ढूँढ़ने लगी। कुछ क्षण खड़े रहने के वाद जोर से बोली—'मां! मां!! क्यों विलम्व कर रही हो?'

कोई न बोला, परन्तु हृदय में जैसे किसी ने उत्तर दिया—'आश्रय पास ही तो है। कोई रोकने वाला नहीं।'

पूना रोने लगी। देर तक रोई, खूब रोई। यहां तक कि गले और आँसुओं ने जवाव दे दिया। उधर दीपक का घी समाप्त होने आया। उसके वुझने में देर न थी। हाथ जोड़कर मूर्ति से पूना ने कहा—'कितने वलिदान तुम्हारी वेदी पर हो चुके, परन्तु तुम नहीं हिलीं। मैं अव जाती हूं। कल दीपक धरने न आऊँगी।'

एक वार वेग के साथ दीपक में लौ पैदा हुई। मन्दिर एक क्षण के लिये जगमगा गया। पूना के नेत्र ऐसे जान पड़े, जैसे दो यज्ञ-कुण्ड हों। दीपक वुझ गया। वत्ती के सिरे पर ज्वाला का केवल एक खण्ड टिमटिमाने लगा। मन्दिर निविड़ अन्धकार में समा गया। पूना धीरे-धीरे मन्दिर के वाहर हुई, और तालाव के किनारे पहुंचकर वांध पर खड़ी हो गई।

चारों ओर देखा। निर्मल तारों के क्षीण प्रकाश के नीचे वृक्षों का समूह अन्धकार की झुरमुट-सी जान पड़ता था। धरती का विपम विस्तार समस्थली का एक धूमरा चादर-सा प्रतीत होता था। कान लगाकर चारों ओर सुना। गांव से हलका जन-रव थोड़ा-सा सुनाई पड़ता था, पीपल के पत्तों की खड़खड़ाहट विशेप।

पूना का गात्र कांप रहा था। दृढ़ता के साथ सिर ऊँचा किये तालाव के किनारे अकेली खड़ी थी। नीचे जल-राशि शांत, विस्तृत और

सम्वाद-विहीन। अँधेरे में छिपा हुआ निस्तब्ध, हल्का सफेद जल-भंडार किसी को किसी निस्सहाय का सन्देश ही क्या दे सकता था। कुछ आवाहन भले ही करता हो।

'अब मेरा यहां आश्रय होगा।' पूना ने धीरे-धीरे कहा—'एक लहर, एक शब्द और फिर कुछ नहीं।' फिर आकाश की ओर देखने लगी।

अपने अपने स्थान पर तारे चमक रहे थे। कभी-कभी एक आध नक्षत्र इधर से उधर दौड़ लगाकर आकस्मिक प्रकाश करके विलीन हो जाता था। तारे मानो आपस में कुछ कह रहे थे। पूना की आंख के तारे से एक प्रकाश-पुंज छूटा, और आकाश के प्रकाश ने पूना से मानो कुछ कहा। नीचे अखंड जल-राशि, कठोर तालाब और कठोरतर संसार।

पूना ने कहा—'एक बार इस स्थान में तिरोहित होने के बाद फिर सब बखेड़ा समाप्त हो जायगा, परन्तु मैं तैरना जानती हूँ, इसलिये कार्य की सिद्धि असम्भव हो जायगी। फिर लौटकर इसी निर्मल स्थान पर लौटना पड़ेगा।'

वहां से हटकर पूना पत्थर के एक बड़े ढोंके को ढूंढ़ने लगी। अँधेरे में देर तक ढूंढ़ा, परंतु बड़ी शिला न मिली।

थककर बैठ गई। उसका ध्यान एक बार फिर मन्दिर की ओर गया। बोली—'मां; क्या आज्ञा है?' उसे अपनी जननी का स्मरण हो आया। मन में बोली—'प्राण निकलते थे, और इस अभागिन का उन्हें ध्यान था। कहा था, पूना और—।' पूना खड़ी हो गई। धीरे-धीरे दृढ़ता के साथ बोली—'मैं मरूंगी नहीं। भगवान् की दी हुई देह के साथ आज विश्वासघात न करूंगी। बुलाऊँगी, अपने रक्षक का आवाहन करूंगी। यदि वह कायर निकले, तो मैं कल इसी समय सब पीड़ाओं का अन्त करूंगी।' पूना घर चली गई।

देवी के मन्दिर से लौटकर जब पूना घर की पौर में आई, तब लालसिंह को मिट्टी के तेल की बड़ी बत्तीदार बिना चिमनी की रोशनी में चिट्ठी लिखते पाया। उसे अपने पास खड़ा होता देखकर लालसिंह

ने लिखना बन्द कर दिया। पूना की ओर देखने लगा। दुर्गाजी के मन्दिर से लौटकर आई थी, और आंखों में एक विचित्र आभा-सी दिखलाई पड़ती थी।

लालसिंह को मन में डर लगा। बोला—'मन्दिर में कोई मिला तो नहीं पूना?'

'हाँ' मामा। देवी दुर्गा।'

'तुम जाकर सो जाओ बेटी।' लालसिंह ने घबराकर कहा, और लिखने की सामग्री इकट्ठी करके एक ओर रख दी। अपने आपसे कहा—'कल के दिन देवी और दया करें। कुशल-पूर्वक सब कार्य निबट जाय।'

पूना ने कहा—'इसी समय देवी के दर्शन को कल फिर जाऊँगी।' पूना ने बिना आँख नीची या बन्द किये कहा।

'अवश्य, अवश्य।' तुरन्त लालसिंह ने कहा, और उसके सारे शरीर में रोमांच हो आया।

पूना भीतर चली गई। लालसिंह ने मिट्टी के तेल के दीपक के परे को झाड़ते हुये मन में कहा—'चेहरा कैसा तमतमा रहा था! आँखें कैसी मशाल की तरह जल रही थीं! और कैसी विचित्र चाल ढाल थी! अवश्य देवीजी की सवारी हो रही है। भगवती मुझे अनिष्ट से बचावें, मैंने तो किसी का कुछ बिगाड़ा नहीं है। भुजबल कल आवें, तो उन्हें सब सुनाऊँगा। लक्षण अच्छे नहीं जान पड़ते। और कहीं शिवलाल कल छावनी की फौज-पुलिस ले आया, तो सारा घर-द्वार धूल में मिल जायगा।'

यह सब सोच रहा था कि पूना फिर आई। बोली—'मामा, मैं बुड्ढा को देखने जाती हूँ।'

लालसिंह ने डरते-डरते धीरे से कहा—'रात्रि है, अँधेरा है बेटी!'

'कुछ डर की बात नहीं है। वह सताया हुआ दीन-हीन आदमी है, देखने जाती हूँ। खाने-पीने को पूंछ आऊँगी।' पूना ने कहा।

लालसिंह ने सोचा—'देवी के सताये को देवी देखने जाती है। अब या तो वह अभी मरता है या तुरन्त चङ्गा होता है।' और पूना को अकेले ही जाने की अनुमति दे दी। घर पास ही था। वह साथ नहीं गया।

पूना बुड्ढा वाले घर के द्वार खुलवाकर भीतर गई। दीपक बुझा हुआ था। जला दिया गया। एक टूटी चारपाई पर बुड्ढा पड़ा हुआ सो रहा था। पैलू का विस्तर नीचे था। घर के और लोग भीतर सो रहे थे। पूना ने किवाड़ बन्द कर लिये।'

पैलू ने पूछा—'इतनी रात गये कहां आई तुम बेटी ?'

'बुड्ढे को देखने आई हूँ तथा एक और बड़े आवश्यक कार्य से। इन्होंने आज कुछ भोजन किया ?'

'बहुत थोड़ा, जो कुछ रूखा-सूखा मिला, दे दिया था।'

'मैं इनके लिये अभी कुछ खाना बनाकर भेजती हूँ।'

'अब रात हो गई है।'

'कोई चिन्ता नहीं। हलका, पुष्टिकारक भोजन होगा।'

पैलू बहुत कृतज्ञ दृष्टि से उसकी ओर देखने लगा। परन्तु इस अनपेक्षित सहायता के समझने में उसे कठिनाई हुई।

पूना ने कहा—'तुम अपना उद्धार करो, नहीं तो वह राक्षस तुम्हें खा जायगा।'

'कौन ?' पैलू ने घबराकर पूछा।

'वही, वही खैर नाम पीछे मालूम होगा।' पूना ने रुककर कहा। उसकी तनी हुई आँखों को देखकर गत रात्रि की भयानक घटना पैलू की आँखों के सामने हाहाकार करके नाचने लगी।

'हम यह गांव शीघ्र छोड़ेंगे बेटी।' पैलू ने कहा—'लहचूरा में ही भरना-कटना भाग्य में बदा है। चैन से बैठकर रोटी खाना भाग्य में नहीं लिखा है।' फिर भुजबल के साथ पूना के रिश्ते का ख्याल करके बोला—'भाग्य सब जगह एक-सा ही है। जो यहाँ होना है, वही लहचूरा में

होगा। पर यहां रहते यदि एक-आध फटकार ऐसी और पड़ गई, तो बेमौत मर जायेंगे।'

पूना ने कहा—'तुम्हारे एक सहायक छावनी में रहते हैं। उनका क्या नाम है ? कभी-कभी यहां भी आये हैं।'

'अब भी आते हैं।' पैलू ने गर्व के साथ कहा—'बिलकुल देवता हैं। कल छावनी जाकर बुड्ढा का हाल उन्हें सुनाऊँगा।' फिर हतोत्साहित होकर बोला—'देवता की फटकार की कोई दवा किसी के पास नहीं है।'

'नहीं, तुम उनके पास जाओ, और यह एक चिट्ठी उन्हें देना। उन्हीं को देना, और किसी को नहीं।'

पैलू ने चिट्ठी ले ली। बोला—'मैं इसे यत्न के साथ रक्खूंगा। कल बड़े भोर जाकर दे दूंगा।'

'हां, कल बड़े भोर छावनी में पहुंच जाना। बुड्ढे की चिंता मत करना। मैं इनके खाने-पीने का प्रबन्ध कर दूंगी।'

[५७]

बड़े तड़के उठकर पैलू छावनी गया। बुड्ढा के कष्ट का पूरा विवरण सुनाया। उस रात की घटना के दैवी होने में केवल उसी समय उसे शंका हुई थी। परन्तु दूसरों के विश्वास दिलाने पर जो घटना-स्थल पर मौजूद न थे, उन्हें भी विश्वास हो गया कि घटना के मूल में किसी पारलौकिक व्यक्ति का हाथ था। इस आत्मछलना के आधार पर घटना को खूब बढ़ा-चढ़ाकर पैलू ने अजितकुमार को सुनाया। वह सुनता रहा और अविश्वास की मुस्कराहट मुस्कराता रहा।

पैलू ने अत्यन्त विश्वास-पूर्वक कहा—'आप चाहे मानें, चाहे न मानें, मैंने अपनी आंखों से बड़े-बड़े दांत और बड़े-बड़े नख देखे हैं। आंखों से लौ निकल रही थी।'

'मैं भी उस जगह को वैसे ही अंधेरे में देखूंगा।' अजितकुमार ने कहा—'परन्तु यह ठीक है कि अब तुम लोग ऐसे स्थान में मत रहो, जहां सिवा दुःख के तुम्हें कोई सुख नहीं है।'

'बुद्धा अच्छा हो जाय, तो फिर लहचूरा चले जायेंगे। परन्तु अब की बार वह भुजबल प्राण लेकर ही रहेगा। कहता था कि घर जाओ, लगान माफ कर दिया। मैंने नहीं माना। तन वेचकर लगान दूँगा, क्योंकि उसका ठीक नहीं है, न जाने कब बदल जाय।'

'तुम छावनी में आ जाओ।' अजित ने कहा—'तुम्हारे लिये यहाँ काफी मजदूरी मिलेगी। बुद्धा का यहाँ अच्छा इलाज हो जायगा।'

पैलू बोला—'परन्तु भुजबल भी यहीं रहता है। रोज ही भिड़ा-भिड़ी हुआ करेगी।'

अजित ने कहा—'न हो पावेगी। यहां कानून भी तो है।'

'सो तो कुछ नहीं है।' पैलू ने कहा—'लोग अंग्रेजी से रियासत में अधिक वेरोक-टोक रहते हैं। वहां भुजबल मारपीट करे, तो गांव-भर इकट्ठा हो जायगा। शहर में तो कोई किसी की सहायता के लिये नहीं दौड़ता—आप-सरीखे पुरुषों की बात और है।'

अजित बोला—'मैं तुम्हारे लगान का प्रबन्ध किये देता हूँ। तुम भुजबल को देकर रसीद ले लेना। थोड़े दिन बुद्धा को रखकर यहीं मेहनत-मजदूरी करना। जब अच्छा हो जाय, तब घर चले जाना।'

उस बुड्ढे बड़े किसान की आँख में आँसू आ गये। गद्गद् होकर बोला—'आपसे हम लोग कभी उऋण न होंगे। जैसे बनेगा, वैसे हम आपका रुपया फसल आते ही दे देंगे।'

अजित ने कोमलता के साथ कहा—'इसकी कुछ फिक्र मत करो। मैं दो-एक दिन में ही सिंगरावन आकर तुमको रुपया दूँगा।'

पैलू कुछ स्मरण करके बोला—'आपके लिये एक चिट्ठी लाया हूं, लीजिये।' कपड़े में से खोलकर चिट्ठी अजित के हाथ में दे दी। ऊपर कोई पता न लिखा था। लिपटा हुआ पीले कागज का एक टुकड़ा था।

पैलू ने कहा—'चलना तो आपको आज ही पड़ेगा। बुद्धा की तबियत शायद और न खराब हो जाय। आपके देखने-मात्र से उसे बड़ा धीरज बंधता है।'

अजित ने कोई उत्तर न देकर चिट्ठी पढ़ी। पढ़ते ही तिलमिला उठा। देर तक चुप रहा। पैलू अपनी झोली में से चिलम-तम्वाकू निकाल कर भरने और पीने में लग गया।

अजित ने मन में कहा—'अभी तक दरिद्र किसानों के ऊपर वार होता था, अब दीन स्त्रियों की वारी आई है। जो कुछ बन सकेगा, अवश्य करूँगा। परन्तु मामला वहुत नाजुक है।'

पैलू जब चिलम पी चुका, तव उससे अजित ने कहा—'तुम सिंगरावन चलो, मैं अभी आता हूँ।'

पैलू को वाजार के सौदे के लिये कुछ पैसे देकर विदा कर दिया। उसके चले जाने पर अजित ने वैठे-वैठे सोचा—'भुजवल का अत्याचार वेचारी रतन को दुःख के न-जाने किस गड्ढे में ले जायगा। कितनी दुर्वल और कितनी शुष्क हो गई है! अब वह प्रफुल्लता नहीं रही। क्रूरता के प्रहारों के कारण हृदय की सरसता नष्ट हो गई। मुझे पहिचाना तक नहीं। पहिचान कर भी शायद भूल रही थी। अथवा जान-बूझकर अपमान किया हो। परन्तु मैं मानापमान की परवा नहीं करता। पराई होकर वैसी अवस्था में मेरे साथ और व्यवहार ही वह क्या कर सकती थी?' फिर एक आह भरकर रह गया।

इतने में, अचानक, शिवलाल आ गया। पहले वह कभी उसके पास न आया था। वैठते ही बोला—'मुझे आज रुपये की बड़ी जरूरत है। धन का वह घड़ा यदि आपके पास हो, तो दे दीजिये। लिखा-पढ़ी करा लीजिये, और व्याज लीजिये। आपका रुपया मारा न जायेगा।'

अजित ने कहा—'वह रुपया तो मैं मजिस्ट्रेट की कचहरी में दाखिल कर आया हूँ। पता लगाया जा रहा है कि उसका मालिक कौन है।'

'ऐसा भी कोई कभी करता है?' शिवलाल ने खीझकर कहा—'आई हुई लक्ष्मी को कोई नहीं छोड़ता। उस समय न-जाने धर्म का कौन-सा विश्वास लात मारने को सामने आ गया, जो मैंने इनकार कर दिया। क्या सचमुच आप सरकार में रुपया दाखिल कर आये हैं?'

'जी हाँ।' अजित ने संक्षेप में उत्तर दे दिया।

'खैर, तब बिना रुपये के ही देखा जायेगा।' शिवलाल ने अपने आप कहा, फिर अजित से बोला—'कल शाम को आपको अवकाश मिलेगा?'

'शायद मिल जाय। कहिये, क्या आज्ञा है?' अजित ने पूछा।

शिवलाल ने सोचकर कहा—'सिगरावन में एक जगह मेरा विवाह निश्चित हुआ है। आपको बारात में चलना होगा।'

'इस वय में विवाह!' अजित ने तिनककर कहा—'मैं न जा सकूंगा, मुझे क्षमा कीजिये।'

'जाने दीजिये।' शिवलाल ने मुँह बिचकाकर कहा—'आप समझते हैं कि थोड़ी उम्र में ही सब कुछ हो सकता है, और थोड़ी उम्र वाले ही शक्तिमान होते हैं। मैं इससे उल्टा सिद्ध करने के लिये विवाह करने जा रहा हूँ।'

शिवलाल चुनौती की दृष्टि से उसे देखता हुआ चला गया।

[५८]

शिवलाल घोड़ा-गाड़ी पर चढ़कर आया था, और उसी पर वापिस हुआ। वह थोड़ी-सी दूरी के लिये भी सवारी पर जाया करता था। रास्ते में बाज़ार लौटता हुआ पैलू दिखलाई पड़ा। गाड़ी खड़ी करवाकर उसे पास बुलाया। उससे पूछा—'पैलू, मजे में हो?'

पैलू ने बुन्देलखण्डी शिष्टाचार के साथ उत्तर दिया—'आपके दर्शनों से।'

'बुद्धा अच्छी तरह है?'

'उसे ज्वर आता है।'

'क्या लिये जा रहे हो?'

'यही निमक-मिर्च इत्यादि।'

'कहो, सिंगरावन का क्या हाल है

'कोई खास बात नहीं है।'

'हमारे गाँव पर कव तक जाओगे ?'

'अभी कैसे जाऊँगा ? आपके मुख्तार साहब का लगान चुकता कर पाऊँगा, तव तो घर की देहरी झांक सकूँगा।'

'पैसे-कौड़ी की तकलीफ तो नहीं रहती ?'

'गरीबों को उससे छुटकारा ही कैसे मिल सकता है ?'

'मुझे तुम्हारा हाल मालूम है, और तुम पर दया आती है।' शिवलाल ने कहा, और जेव में हाथ डालकर दो रुपया निकाले। वोला—'यह लो। अभी इतने से काम चलाओ, आगे भी मदद करूंगा। अपने किसानों को भूखों नहीं मरने दूंगा। मैं भुजवल की तरह का आदमी थोड़े ही हूँ।'

पैलू ने रुपये नहीं लिये। वोला, 'आप तो हम लोगों के अन्नदाता हैं। वस, कृपा वनी रहे। अभी जरूरत नहीं है। जव चाहना पड़ेगा, दौड़कर आपके पास आऊँगा।'

शिवलाल ने हठ नहीं किया। रुपये जेव में डाल लिये। गाड़ीवान एक तरफ मुंह करके मन-ही-मन पैलू की वेवकूफी पर तरस करने लगा। शिवलाल ने पूछा—'सिगरावन का कोई ताजा समाचार नहीं है ? भुजवल वहाँ कव से नहीं गये ?'

'परसों ही वहां थे।' पैलू ने उत्तर दिया, 'कल ही नहीं दिखलाई पड़े।'

'लालसिंह के घर का क्या हाल है ?' शिवलाल ने कुछ हिचकिचाकर पूछा।

पैलू ने कहा—'औरतों से सुना है कि वड़ी जल्दी पूना का व्याह भुजवल के साथ होने-वाला है। परन्तु उसकी कोई घूम-धाम नहीं दिखलाई पड़ती है। आप तो जानते हैं कि वाहियात वातें वनाकर खड़ी करने में दुनिया को देर नहीं लगती। वड़ों की वातें वड़े ही जानें।'

शिवलाल के सिर पर जैसे वज्र टूटकर गिरा हो। हाथ-पैर सन्न रह गये। थोड़ी देर तक कुछ नहीं वोल सका। विलम्व होता देख पैलू ने कहा, 'मुझे आज्ञा हो तो जाऊँ। दूर जाना है।'

'नहीं।' शिवलाल ने इस तरह से कहा, जैसे यकायक नींद से जागा हो। 'घर चलो। आगे गाड़ी पर बैठ जाओ। खाना खाकर जाना। मैं भी चलूंगा।'

पैलू ने बहुत भागना चाहा, पर न बचा। उसके साथ जाना ही पड़ा।

[५९]

उसी दिन दोपहर से कुछ पहले ललितसेन पैर-गाड़ी पर बैठकर कचहरी गया। मजिस्ट्रेट का चपरासी झांसी से आये हुये किसी वारन्ट की बाबत उसे इनाम के लालच से कुछ खबर दे गया था।

कचहरी पहुंचकर उसने वारन्ट और पुलिस को अपने साथ लिया, और गाड़ी हाथ में लिये उस मार्ग से आया, जो छावनी से छत्रपुर को गया है। जब उस चौराहे पर पहुंचा, जहां से एक सड़क बिलहरी को गई है, तो एक किनारे पेड़ के नीचे एक आदमी को बैठे देखा। यह पैलू था। शिवलाल ने उसे यहां पहले ही से भेज दिया था, और कह दिया था कि चौराहे से गाड़ी पर बिठलाकर सिगरावन ले चलेंगे। सिगरावन के लिये मार्ग घोड़ा गाड़ी के लिये उपयुक्त न था, परन्तु शिवलाल ने घोड़ा-गाड़ी से जाने का निश्चय कर लिया था। घर से साथ इसलिये न लेना चाहता था कि वह यात्रा के समय तीन आदमियों का एक साथ जाना मनहूस समझता था।

ललित चौरहे से मुड़कर बस्ती में नहीं गया। सामने से शिवलाल की फिटन आती हुई दिखलाई पड़ी। वह पुलिस वालों को लिये हुये एक ओर खड़ा हो गया।

फिटन के पास आते ही सिपाहियों ने हाथ उठाकर आगे बढ़ने का निषेध किया। गाड़ीवान रास खींचकर रह गया। शिवलाल बहुत तड़क-भड़कदार कपड़े पहने हुये एक पोटली गाड़ी में रक्खे हुये था। पुलिस के अफसर ने, जो साथ में था, नीचे उतर आने का आदेश किया।

विलम्ब होता देख पैलू ने कहा—'मुझे आज्ञा हो, तो जाऊँ। दूर जाना है।'

शिवलाल ने अचकचाकर पूछा—'क्या बात है ? क्यों नीचे उतरने को कहते हो ?'

'नीचे आइये, आपसे काम है।' पुलिस अफसर ने कहा—'जल्दी आइये। हम लोगों को देर करने का हुक्म नहीं है।'

शिवलाल धड़कते कलेजे से नीचे उतर आया। नीचे उतरते ही सिपाहियों ने घेर लिया। एक ने हाथ पकड़कर कहा—'हम आपको गिरफ्तार करते हैं।'

दूसरा बोला—'आपकी खाना-तलाशी भी लेना है।' फिर गाड़ी में रक्खी हुई पोटली पर निगाह पड़ते ही एक और सिपाही से कहा—'उस पोटली को उठा लो।'

शिवलाल ने कातर स्वर में कहा—'उसमें मेरे रुपये और जेवर रक्खे हैं।'

अफसर बोला—'वही तो चाहिये। आपके घर में से राख थोड़े ही बटोरनी है।' अफसर ने पोटली उठा ली।

शिवलाल ने बहुत ही करुण स्वर में पास खड़े हुये ललितसेन से कहा—'आप इस शहर के बहुत बड़े रईस हैं। मुझे बचाइये। आपके सामने मेरी इज्जत खराब की जा रही है, और आप खामोश हैं।'

अफसर ने हँसकर कहा—'यह तो आपको बचावेंगे ही, क्योंकि वारण्ट इन्हीं का निकलवाया हुआ है।'

शिवलाल ने रोनी-सी सूरत बनाकर कहा—'कसम खाकर कहता हूँ कि उस संध्या को मैं आपकी बैठक में किसी बुरी नियत से नहीं गया था। अजितकुमार ने नाहक का द्वन्द मचाकर किवाड़ खुलवाये, और फिर मुझे आपके सामने बदनाम करके मेरी यह दुर्गति करवा रहे हैं। मैं आपसे क्षमा मांगता हूँ, मुझे छुड़वा दीजिये।'

ललित ने उत्तेजित होकर कहा—'जी, उस बेचारे ने कभी कुछ नहीं कहा। आपने जो बैनामे दस हजार रुपये लेकर किये थे, और

मुझसे कहा था, कि कचहरी में जमा कर आये, वे असल में जमा न करके खा गये, उसी का वारंट है यह।'

शिवलाल की आँखों से आँसू निकल आये। रोते-रोते बोला—'मेरे पास अभी बहुत जमींदारी है। आप उस सब को ले लीजिये, पर जेल-खाने न भेजिये। मैं आपके पैर पड़ता हूँ। देखिये, मुझे नाहक न मारिये। उन दस हज़ार में से चार हज़ार तो भुजबल के पास रक्खे हैं।'

'भुजबल के पास!' ललित ने चकित होकर कहा—'बिलकुल झूठ। यों ही दूसरों को फाँसना चाहता है।'

'मुझे कोढ़ निकले, यदि मैं झूठ बोलता होऊँ। मैंने छः हज़ार जरूर अपने पास रक्खे, परन्तु चार हजार भुजबल के ही पास हैं।'

ललित को ऐसा भान हुआ, जैसे किसी ने कलेजे में बर्छी छेद दी हो। परंतु क्षण भर बाद किसी तरह अपने को संभालकर बोला—'जो कोई जैसा करेगा, वैसा पावेगा चाहे कोई हो।'

इतने में पुलिस-अफसर ने तलाश करने के लिये गठरी खोली। उसमें दो हजार नकद रुपये थे, और अनेक बहुमूल्य आभूषण।

ललित ने कहा—'मेरा नुकसान पूरा हो जायगा, परन्तु इन्होंने जो कुछ किया है, कानून उसका दण्ड देगा।'

शिवलाल के जी में एक आशा उदय हुई। उसी के भरोसे घिघिया-कर बोला—'जब आपका नुकसान यों ही पूरा हो जायगा, तब मुझे जेल में सड़ाने से आपको क्या मिलेगा? इनमें से कुछ जेवर उन्हीं छः हजार रुपयों में से बने हैं, और बहुत से मेरी पत्नी के हैं, जो उसे मेरे पिता ने दिये थे। न-मालूम कितनी मुश्किलों से लाया हूँ, आपको दस हजार से ज्यादा इन सबसे वसूल हो जायगा। मुझे छुड़वा दीजिये। मैं एक बात और बतलाता हूँ, आपका जन्म-भर का सुख-दुख उस समाचार पर निर्भर है।'

ललितसेन ने बिना किसी कौतूहल के पूछा—'क्या?'

पुलिस-अफसर बीच में पड़कर बोला—'यह यों ही बकवाद किये चला जायगा आप अपने घर जाइये हम इसे हवालात में लिये जाते हैं। कल की ही गाड़ी से इसे माल-समेत झांसी भेजना पड़ेगा।'

शिवलाल ने व्याकुल होकर कहा—'देखिये, मुझे छुड़ा लीजिये। मैं आपको यह समाचार देकर आपका बड़ा काम कर रहा हूँ।'

पुलिस वाले धकियाकर ले जाने को हुये।

ललितसेन ने उसकी आवाज में सचाई की खनक सुनकर जरा उत्सुक होकर अफसर से कहा—'एक मिनट ठहर ही जाइये, कुछ हर्ज तो है नहीं। आखिर अभी तलाशी तो बाकी है। वह इसके सामने ही होनी चाहिये।'

'इसे कुछ सिपाहियों के साथ हवालात में भेजे देते हैं फिर तलाशी लेते रहेंगे। उस समय इसकी उपस्थिति के बिना भी हम काम निकाल लेंगे।'

शिवलाल ने कहा—'भुजबल आज या कल में सिगरावन की एक पूना-नामक लड़की के साथ व्याह करने वाले हैं। उसे रोक लीजिये, अन्यथा आपकी बहिन जन्म-भर रोयेगी। मुझे निश्चय मालूम है।' और फिर बहुत दीनता के साथ बोला—'देखिये अब छुड़वा दीजिये। मैं न बतलाता, तो आपको पता भी न लगता।'

ललित के चेहरे पर हवाइयाँ उड़ने लगीं। मुश्किल से बाइसिकल का सहारा लेकर थम सका। क्षीण स्वर में बोला—'दरोगाजी, इसे ले जाइये।' पुलिस शिवलाल को घसीट ले गई। कुछ सिपाही अफसर के साथ मकान की तलाशी के लिये दूसरी ओर चल दिये।

शिवलाल ने जाते-जाते पास खड़े हुये पैलू से कहा—'जैसे बने, इस व्याह को रोकना पैलू।'

[६०]

शिवलाल की गिरफ्तारी के समय एक हजूम इकट्ठा हो गया था। शिवलाल ने जाते-जाते पैलू से जो कुछ कहा था। उसे ललितसेन ने भी

अपनी उस बदहवासी में सुन लिया था। कुछ पुलिस वाले शिवलाल के मकान की तलाशी लेने बस्ती में चले गये। ललित पैलू के पास पहुंचा। पूछा—'तुम कौन हो ?'

'पैलू भयभीत हो गया। शरीर से पसीना छूट गया। उसने सोचा कि यह भयंकर मनुष्य अब मेरी गर्दन नापने आया है। बोला—'मैं बहुत गरीब आदमी हूँ। इस मामले में कुछ नहीं जानता।'

ललितसेन ने तीव्र स्वर में कहा—'अबे, मैं जो पूछता हूँ, वह बतला, तुझे फांसी न लगेगी।'

पैलू ने हाथ जोड़कर कहा—'अन्नदाता, मैंने कुछ नहीं किया है। मैं तो मजदूर आदमी हूँ। कुछ नहीं मालूम।'

ललित गरम होकर बोला—'अबे उल्लू के पट्ठे, मरा क्यों जाता है ? मैं कौन तेरी जान लेने आया हूँ। कहां का रहने वाला है ?'

'लहचूरा का सरकार !'

'लहचूरा का ! सिगरावन में नहीं रहता ?'

'सिगरावन में मेरा क्या काम ?' केवल वहाँ रिश्तेदारी है। रिश्तेदारी में आया हूँ। अभी हाल में।'

'जब तक तुम्हारी खाल नहीं खरोंची जायगी, तुम कोई बात ठीक नहीं कहोगे। बोलो, कितने दिन से सिगरावन में रहते हो ?'

'अभी हाल ही में आया हूँ।'

'झूठ बोलता है बेईमान। शिवलाल को जानता है ?'

'नहीं जानता हूँ—जी, इतना ही जानता हूं कि उनकी जमीदारी लहचूरा में है, जो किसी ने अब खरीद ली है। न जाने एक कोई है, जिन्होंने ले ली है।'

'तू ठीक-ठीक बात नहीं करता है। किसी सिपाही को बुलाऊँ, तब चेत में आवेगा।'

'इतने ही में वहां अजितकुमार आ गया। उसको देखकर पैलू की जान में जान आई। ललित की आकृति पर व्याकुलता और क्रोध का

राज्य-सा मालूम पड़ता था। शिवलाल की गिरफ्तारी का समाचार गाँव-भर में फैल गया था। अजित ने भी सुन लिया था, परन्तु कारण न मालूम था। ललित को पैलू पर क्रोध करते हुये देखकर अजित को आश्चर्य हुआ।

अजित ने पैलू से कहा—'क्या बात है पैलू ?'

'कुछ नहीं बाबूजी। आप जानते हैं, मैं गरीब किसान हूँ। किसी का कुछ नहीं लिया दिया, और न किसी के झगड़े-फसाद में हूँ। यह व्यर्थ बिगड़ रहे हैं।'

अजित ने ललित के मुख की ओर देखा।

अजित के आने पर ललित का क्रोध तो कम हो गया, परन्तु ग्लानि और व्याकुलता बढ़ गई।

फटे हुये गले से ललित ने कहा—'यह आदमी एक बात जानता है, वही इससे पूछना चाहता हूं।'

तमाशा देखने वाले तितर-बितर न हुये थे। पैलू को किसी झंझट का केन्द्र समझकर उसके आस-पास इकट्ठे हो गये।

अजित ने विनयपूर्वक सबको अपने-अपने घर चले जाने के लिये कहा, परन्तु हुल्लड़बाज लोग ऐसे समय और ऐसी अवस्था में अपनी उपस्थिति बहुत आवश्यक समझते हैं, और उनकी धारणा होती है कि हमें ज्ञेय और अज्ञेय, सब कुछ जान लेने का हक है। उन्होंने अजित की विनय पर कोई ध्यान नहीं दिया। तब ललित ने जरा कड़ककर कहा—'आप लोग जाइये। हम अपनी कुछ निजी बात कर रहे हैं।' तब वह भीड़ वहाँ से अनिच्छापूर्वक हटी।

अकेले रह जाने पर अजित ने कहा—'मैं इस आदमी को जानता हूँ। दरिद्र किसान है। शिवलाल की यह किसी भी बात में शरीक न रहा होगा, मुझे इसकी पूरी प्रतीति है।'

'मुझे भी विश्वास है।' ललित ने क्षुब्ध स्वर में कहा—'परन्तु मैं इससे कुछ और ही बात पूछ रहा था, जो जान पड़ता है, इसे मालूम है, परन्तु छिपा रहा है।'

अजित ने कहा—'आप पूछिये, इसे मालूम होगा, तो अवश्य बतलावेगा। डरा हुआ है, इसीलिये ठीक उत्तर न दे पाया होगा। पैलू! जो कुछ जानते हो, कहो।'

पैलू ने शान्त होकर कहा—'मैं क्या बतलाऊँ? शिवलाल से मेरा कोई सम्बन्ध ही नहीं है।'

ललित ने कहा—'भुजबल को जानते हो? कहां हैं?'

'सिगरावन में हैं।' पैलू ने बेधड़क कहा—'आज सिगरावन में ही होंगे।'

'वहां किसी का विवाह हो रहा है?' ललित ने अजित की ओर बिना देखे थर्राये हुये स्वर में प्रश्न किया। अजित सड़क के दोनों ओर के वृक्षों को देखने लगा।

पैलू ने उत्तर दिया—'मुझे अधिक तो कुछ नहीं मालूम, परन्तु सुनता हूं कि लालसिंह की भांजी का विवाह होने वाला है।'

'किसके साथ?' ललित ने कष्ट के साथ पूछा।

अजित बोला—'यह इसका उत्तर शायद ही जानता हो और यदि जानता भी होगा, तो आप सुनकर ही क्या करेंगे?'

'मास्टर साहब—बाबू अजितकुमार, मैंने आपका अपमान किया था। आप भूले न होंगे', ललित ने कराहते हुये कहा—'और मैंने आपके ऊपर मैजिस्ट्रेट की कचहरी में अनधिकार-प्रवेश का दावा भी किया है।'

'पहली बात स्मृति से पीछे रह गई है, और अगली का कुछ भय नहीं है।' अजित बोला—'यदि मैंने कोई अपराध किया होगा, तो उसे रत्ती-भर नहीं छिपाऊँगा।'

ललित की दृष्टि उदासी का घर बन गई। बोला—'तुम्हें दुखाने के के लिये यह सूचना नहीं दी है। अपनी गलती पर जो परिताप हो रहा है, उसी को प्रकट कर रहा हूँ। मैं यदि मर गया होता तो अच्छा था।'

अजित ने ललित के कंधे पर हाथ धरकर कहा—'ऐसा मत कहिये।'

ललित ने तुरन्त कहा—'मालूम नहीं, मैं अब कितने दिन और जिऊँगा। मुझे क्षमा कर दोगे?'

अजित की आँखों में आँसू आ गये। परन्तु ललित के नेत्र बिलकुल शुष्क थे।

अजित ने कहा—'आप घर जाइये। आपकी तबियत बहुत खराब मालूम होती है।'

'अजित—अजित—' ललित से और कुछ नहीं बोला गया। नीचा सिर करके खड़ा रह गया।

अजित ने कहा—'घर जाइये। देखिये, आपका बहुत बड़ा दायित्व है। आप जानते हैं कि संसार में आप अकेले नहीं हैं।'

ललित की आँखें पागलों जैसी हो गईं। दाँत पीसकर बोला—'मैं देखूंगा! देखूंगा, कपटी, कुटिल, नीच, उस पिशाच को। हरे-भरे उद्यान को वह खाक करने जा रहा है।' फिर रुककर कुछ धीमे होकर बोला—'क्या तुम्हें भी मालूम है? क्या यह बात सच है? क्या यह संभव है?'

अजित ने एक क्षण सोचकर कहा—'मुझे ठीक-ठीक कुछ नहीं मालूम। सिगरावन जा रहा हूँ।'

'अजित, छिपाओ मत। एक घड़ी पीछे सब अपने आप प्रकट हो जायगा। विस्फोट होगा, और होगा एक न एक हताहत।' ललित ने ने कहा।

अजित आश्वासन देता हुआ बोला—'मैं सिगरावन इसी प्रयोजन से जा रहा हूं। मुझे आशा है कि आपको जिस घटना के घटित

होने का भय है, वह असम्भव हो जायगी। आप और अधिक न तो सोचिये और न कहिये।'

ललित ने आशा की निगाह से अजित की ओर देखकर कहा—'रोक दो अजित, मैं कभी एहसान न भूलूंगा। तुम सहृदय हो, प्रबल हो, कर सकते हो।'

'प्रयत्न करूँगा।'

'मैं तुम्हारे साथ चलूँ?'

अजित ने सोचकर कहा—'आप मत चलिये, आपके चलने से खरावी पैदा होगी। यदि भुजबल वास्तव में उत्पात पर उतारू हुये हैं, तो आपके वहां जाने से खुले खजाने निर्लज्जता के साथ मनमानी करने की चेष्टा करेंगे। यदि मैंने इस सम्भावित कृत्य को रोक लिया, तो बात ढकी-मुंदी रह जायगी, और आंख की शरम के कारण वह भविष्य में अपने को सुधारने की कोशिश करेंगे।'

'असम्भव।' ललित ने तेजी के साथ कहा—'वह कूड़ा-कर्कट का ढेर है, उसमें चिनगारी कहां से आवेगी?' फिर एक क्षण बाद बोला—'मैं अवश्य तुम्हारे साथ चलूँगा। तुम्हें सहायकों की जरूरत पड़ेगी।'

पैलू की ओर संकेत करके अजित ने कहा—'यह काफी है। दल की जरूरत नहीं है।'

ललित अवहेलना के साथ बोला—'यह बिलकुल बोदा और डरपोक है।'

'किसान डरपोक नहीं होते।' अजित ने कहा—'कुव्यवहार के कारण ये लोग बोदे जरूर मालूम होते हैं।'

'मैं अवश्य चलूँगा।' ललित ने हठ-पूर्वक कहा।

'आप न जा सकेंगे।' अजित ने उतने ही हठ के साथ कहा—'आपके जाने से समस्या की गुत्थी बहुत उलझ जायेगी।'

'बला से उलझे।' ललित ने आवेश के साथ उत्तर दिया—'मैं उस पिशाच को उसकी राक्षसी लीला के बीच में ही कुचलना चाहता हूं।'

'तव मैं न जाऊँगा।' अजित ने विना क्षोभ या क्रोध के कहा— 'आपके वहाँ जाने से मामले का नष्ट होना अनिवार्य सा मालूम होता है। मैं आपको विश्वास दिलाता हूँ कि वहां आपके जाने की विलकुल जरूरत नहीं है।'

'पूरी जरूरत है। तुम अकेले खतरे में पड़ जाओगे, और जिस वात को रोकना चाहते हो, वह रुकेगी नहीं।' ललित दृढ़ता के साथ वोला।

अजित ने कहा—'वह लड़की उनके साथ विवाह करने को राजी नहीं है। उस समस्या में यही एक आशाजनक वात है। आप विश्वास रक्खें।'

ललित आह खींचकर वोला—'सयानी लड़कियों के मन की वात को कोई पूछता कव है? मैं इस निर्वल आधार पर आशा को आसरा नहीं देता। चलिये, देर हो रही है। मैं इसी तरह अभी आपके साथ चलूँगा।' और उसने सिगरावन की ओर चलने के लिये वाइसिकल सँभाली।

अजित ने जरा झुझलाये हुये स्वर में कहा—'यदि आप विश्वास नहीं करते, तो देखिये, यह उस लड़की का पत्र है।' और एक कागज का टुकड़ा जेव से निकालकर ललित के हाथ में दे दिया। ललित ने पढ़ा। उसमें लिखा था—

'आप दीनों की सहायता करते हैं। मैं विलकुल निस्सहाय हूँ। मेरे वहनोई भुजवल आज जवरदस्ती व्याह करके मेरा जन्म नष्ट करना चाहते हैं। मेरी रक्षा कीजिये। मुझे उवारिये। यदि मेरी रक्षा न की गई, तो मैं आज ही अवश्य अपना प्राणांत कर दूंगी। मैं अनाथ हूं। शरण दीजिये।'

ललितसेन कुछ क्षण निष्पंद खड़ा रहा। दुवारा चिट्ठी पढ़कर अजित को दे दी।

लम्वी सांस भरकर वोला—'मेरा वहां न जाना ही ठीक है।' फिर कुछ देर तक सोचने के पश्चात् वोला—'मेरे वहां जाने से कदाचित् यह

समस्या घोरतर रूप धारण करले। परन्तु अजित, तुम अकेले कैसे इतनी बड़ी विपद का सामना कर सकोगे ?'

अजित ने ऊपर की ओर देखकर कहा—'मेरा बल वह है। परमात्मा में विश्वास होने से फिर और किसी आधार की आवश्यकता नहीं रहती।' ललित की आँख पर अविश्वास की त्यौरी चढ़ती हुई देखकर क्षीण मुस्कराहट के साथ अजित ने कहा—'बहस का विषय नहीं है, और न उसका समय। मुझे आज्ञा दीजिये। दिन ढलने में बहुत अधिक समय नहीं है।'

'जाओ भाई।' ललित ने आँख के पलक ढालकर कहा—'मुझे शीघ्र सूचना देना।'

और वहाँ से नीचा सिर किये धीरे-धीरे घर चला गया।

[६१]

दिन अस्त होने के पहले अजित और पैलू सिगरावन पहुंच गये। अजित ने सबसे पहले बुद्धा को देखा। पहले से उसकी हालत अच्छी थी। पैलू ने जो प्रेत-लीला छावनी में अजित को सुनाई थी, उससे कहीं ज्यादा उसका उग्ररूप—आरम्भ से लेकर अपने अचेत होने के पूर्व तक का—बुद्धा ने सुनाया। अजित ने बहुत-सा युक्तियां प्रेतों के अनस्तित्व के समर्थन में बतलाई, परन्तु उन लोगों ने सब सुनकर अंत में सिर हिला दिया।

अजित ने कहा—'संध्या होने में देर नहीं है। प्रेत को मैं चुनौती देकर उसी स्थान पुर बिलकुल अंधेरे में जाऊँगा, जहां तुम कहते हो कि तुम्हें उसने दे मारा था। वहां से लौटकर सही-सलामत आ जाऊँगा, तब तो मानोगे।'

बुद्धा ने अजित के पैर पकड़ लिये। घिघियाकर बोला—'आप कदापि न जाना। हमारे एकमात्र सहारा आप ही हैं। आपको कुछ हो गया, तो हम बेमौत मरेंगे।'

अजित हँसने लगा। इतने में लालसिंह के दरवाजे से बाजे और स्त्रियों के गाने का शब्द सुनाई पड़ा। अजित कान लगाकर सुनने लगा।

पैलू ने कहा—'वही बात है बाबूजी। आज व्याह हो रहा है। स्त्रियां मङ्गल-गीत गा रही हैं।

'पूना तभी आज बड़े पुण्य में लगी है।' बुद्धा ने बुद्धमानों जैसी गम्भीरता के साथ कहा—'आज वह मुझे अच्छा भोजन दे गई थी। लड़की बड़ी सुशील है।'

पैलू की ओर देखते हुये अजित बोला—'बारात का कुछ चिन्ह नहीं मालूम होता है।

'कौन बड़े आदमियों की बातों में पड़े।'

पैलू ने कहा—'जल्दी-जल्दी व्याह होना है तो बारात कहां से सजकर आवेगी ?'

'मैं जानना चाहता हूँ।' अजित ने गुनगुनाते हुये कहा, परन्तु पैलू ने सुन लिया।

वह बोला—'आप कहें, तो चुपचाप देख आऊँ क्या हो रहा है।'

अजित उठ खड़ा हुआ। बोला—'तुम नहीं। अभी यहीं बैठो, जरूरत पड़ने पर बुलाऊँगा, तब आना। मैं खुद जाकर देखता हूँ।'

बुद्धा ने कहा—'मैं हाथ जोड़ता हूं, रात के समय पीपल के पास मत जाना।'

अजित दरवाजे तक पहुंच गया। जाते-जाते बोला—'वैसे चाहे न भी जाता, परन्तु तुम्हारे मन का भूत भगाना है। जब तक वह नहीं भगेगा, तब तक तुम्हारी तबियत बिलकुल अच्छी नहीं होगी। मैं अवश्य जाऊँगा। देखें, वह पाजी भूत मेरा क्या बिगाड़ता है।' और हँसता हुआ चला गया।

बाहर निकला ही था कि सामने लालसिंह दिखलाई पड़ा। खड़ा था। किसी की बाट-सी जोहता था। आंखें किसी अज्ञात भय में सनी सी थीं। जैसे चाहती हों कि कोई उसके पास न आवे, परन्तु ऐसा

भयावह आगंतुक की प्रतीक्षा भी साथ ही कर रही हों। अजित को देखते ही घबरा गया। मन में भागने की इच्छा हुई, परन्तु जकड़ा हुआ सा खड़ा रह गया।

अजित ने पास पहुंचकर पूछा—'आज यह सब काहे का आयोजन है ?' और द्वार की ओर एक बार झांका।

'जी जी, यह है।' कहकर लालसिंह यकायक चुप हो गया।

'कोई उत्सव है।' अजित ने गम्भीरता के साथ कहा।

लालसिंह संभल गया, या उसने संभलने की चेष्टा की। पूछा—'आप छावनी से अभी आ रहे हैं ? कैसे आये ?'

'बुद्धा की बीमारी का हाल सुनकर आया हूँ। उसकी हालत जरा खराब है।'

'हां, जी हां। किसी की झाय-झरवट हो गई। जिस जगह हुई थी, वहां रात को कोई नहीं जाता।'

'यहां से किस ओर है ? कितनी दूर है ?'

लालसिंह ने यथाशक्ति ठीक-ठीक पता बतलाया। उत्तर पाकर भी अजित ठहरा रहा। शायद वार्तालाप बढ़ाने के लिये किसी विषय की मन में खोजकर रहा था कि लालसिंह ने पूछा—'क्या छावनी से कोई और आ रहा है।?'

'मुझे तो नहीं मालूम।' अजित ने कहा, 'आपने किसी को बुलाया है?'

'क्या बतलाऊँ ! जी, जी नहीं।' लालसिंह ने घबराहट के साथ उत्तर दिया। परन्तु उसकी कल्पना थी कि अजित परोपकारी चित्त का आदमी है। कुछ सनकी भले ही हो, पर काम पड़ने पर आड़े आवेगा। बोला—'आप तो हमारी जाति के लोग हैं। अच्छा हुआ, आ गये। कुछ जलपान के लिये लाऊँ ?'

'मैं जलपान कर आया हूँ। जिस समय जरूरत होगी, निवेदन करूँगा।' अजित ने कहा, और सहज-साधारण तौर पर दरवाजे की ओर फिर झांका, परन्तु वहां कोई न दिखलाई पड़ा।

लालसिंह ने पूछा—'आप अभी तो छावनी न लौट आयेंगे ?'

'नहीं, कोई ऐसी जल्दी नहीं है।' अजित ने उत्तर दिया।

लालसिंह उत्साह की हँसी हँसकर बोला—'देखिये, लोग न-जाने क्या-क्या बकते हैं। कहते हैं, आप पागल हैं। आप जैसा सत्पुरुष तो ढूंढ़े भी न मिलेगा। आइये, बैठिये न ?' दोनों चबूतरे पर बैठ गये।

संध्या का समय आने को हुआ। दिया-बत्ती की तैयारी होने लगी। देहाती बाजे, जो बहुत धीरे-धीरे बज रहे थे, जरा जोर से बजने लगे। स्त्रियों का गान—परन्तु स्त्रियों के एक छोटे समुदाय का गान—अधिक स्पष्ट सुनाई पड़ने लगा।

अजित ने उपयुक्त अवसर समझकर पूछा—'किसी का ब्याह है, क्यों साहब ?'

'जी हां।' लालसिंह ने छिपाने और प्रकट करने की एक ही साथ चेष्टा करते हुये उत्तर दिया—'मेरी भांजी का ब्याह है।'

'हां-हां, ठीक है।' अजित ने बहुत थोड़ा कौतूहल दिखलाते हुये कहा—'शायद वही लड़की है, जिसे मैंने उसकी मां के देहान्त के समय देखा था।'

'आपको तो मेरी बहिन जानती थीं।' लालसिंह जरा आजादी के साथ-साथ सांस लेकर बोला—'उन्होंने मरने के समय आपको पहिचान लिया था। मास्टर नाम लेकर पुकारा था। बड़ी पुण्य वाली भी थीं। मरते दम तक उन्हें होश था।'

'मुझे याद है।' अजित ने कहा—'परन्तु आपने ब्याह में बड़ी जल्दी की। किसी को मालूम भी नहीं पड़ा। पिछले एक ब्याह में तो आपके यहां बहुत-से सम्बन्धी न्योते में आये थे। ललितकुमार भी छावनी से बुलाये गये थे।'

निःश्वास त्याग कर और विह्वल दृष्टि से रास्ते के दोनों सिरों की ओर देखते हुये लालसिंह ने कहा—'अब की बार कुछ ऐसा ही कारण

हो गया है। मजबूर हो गया हूँ। क्या करूँ? जरा बाधा पड़ गई। किसी को खबर भी नहीं दे पाया। किसी को मालूम भी न होगा?'

अजित ने लापरवाही के साथ कहा—'लोग अपने-अपने, काम में व्यस्त रहते हैं, किसी को किसी की खबर की क्या पड़ी? देखिये न, हम लोग इतने पास छावनी में रहते हैं, और कुछ पता नहीं। बुद्धा को देखने के लिये पैलू आज मुझे छावनी लाने गया, उसने भी कोई जिक्र नहीं किया। सब लोग अपने-अपने सुख-दुख में डूबे हैं। किसी को किसी की क्या पड़ी?' फिर यकायक चिहुंककर बोला—'मैं आपके किसी कार्य में बाधक तो नहीं हो रहा हूं? यदि जरा भी हर्ज हो रहा हो, तो बतला दीजियेगा, चला जाऊँगा। बुद्धा की देख-रेख आज मुझे रात-भर करनी पड़ेगी। उसकी हालत नाजुक है।'

'नहीं, आप यहां से न जाने पावेंगे।'

लालसिंह ने बड़ी आव भगति के साथ कहा—'आपको मेरा निमंत्रण है।'

अजित ने हर्ष के साथ कहा—'निमंत्रण तो मुझको माथे के बल स्वीकार है, परन्तु यह तो बतलाइये कि बारात कहाँ से आ रही है? आ गई है, या अभी नहीं आई है?'

लालसिंह का सिर नीचा हो गया। माथा सिकोड़कर सिर नीचा किये हुये ही बोला—'बारात कहीं से आने को न थी। दूल्हा मौजूद है। आपसे क्या छिपाना है, आप तो हम लोगों के हितचिंतक हैं, और पुण्यात्मा हैं। आज दस बजे रात का मुहूर्त भाँवर का है। भाँवर पड़ जाय, और मैं आफ़त से छुटकारा पा जाऊँ।'

'क्यों? इसमें क्या विपद् है?'

अजित ने सहानुभूति के साथ पूछा,—'यदि मेरे लायक कोई काम हो, तो मैं सिर के बल करने को तैयार हूं। कोई काम दीजिये, बैठे-बैठे क्या करूँगा।'

'आप यहीं बने रहिये।' लालसिंह ने बड़ी लालसा के साथ कहा—'आप यहाँ से जाइयेगा नहीं।'

'बात क्या है ?' अजित ने साधारण तौर से पूछा।

'बात कुछ नहीं है—कुछ नहीं है।' लालसिंह ने उत्तर दिया, और खाँसने लगा। खांसकर चुप हो गया।

अजितकुमार थोड़ी देर चुप रहा। धीरे से बोला—'दूल्हा कौन है, यह तो कम-से-कम बतलाइये। आपने मुझे निमंत्रण दिया है कन्या-पक्ष की ओर से, मैं इस अवसर पर सम्मिलित हो रहा हूँ। पर दिल्लगी यह कि वर का नाम तक नहीं मालूम।'

लालसिंह ने दूसरी ओर मुंह फेरकर कहा—'भुजबल।'

'छावनी वाले ? ललितसेन के बहनोई ?'

'जी हां, वही। पर मैं क्या करता ? मेरी बहिन अपने मरने से पहले सब पक्का कर गई थीं। मैं तो उनकी आज्ञा का पालन-मात्र कर रहा हूँ।'

'उनकी पत्नी तो अभी जीवित है ?'

'परन्तु क्या किया जाय ? पूना के लिये कोई वर न मिलता था। सयानी बहुत हो गई। मेरी बहिन भी कह मरी है। लाला ने सौगन्ध खाकर कहा है, इसलिये उन्हीं के साथ हाथ पीले कर रहा हूँ।'

अजित चुप हो गया। एक प्रश्न उसके जी में उठा, गले तक आया, फिर वहीं रुक गया। कलेजा धड़क रहा था। उसे स्थिर करने के लिये दो-एक बार धीरे-धीरे गहरी सांस ली। बोला—'एक बात पूछना चाहता हूँ।'

'कहिये।' लालसिंह ने सतर्कता के साथ कहा।

'वह लड़की इस सम्बन्ध से सहमत है ? आपने खूब सोच लिया है कि उसे इस विवाह के कारण आजन्म कष्ट तो न भोगना पड़ेगा ?'

'खूब सोच लिया जनाब।' नीम के पीछे से निकलकर भुजबल ने कड़ककर कहा—'खूब सोच लिया है कि आपको हर किसी के काम में दखल देने का मर्ज हो गया है। आपको मालूम है कि आपकी यहाँ पर

कोई आवश्यकता नहीं है ? मान न मान, मैं तेरा मेहमान ! उठिये मामाजी, यहाँ से जाइये भीतर, और देखिये अपना काम। जाइये ! जाइये।'

मामा लालसिंह की वही हालत हुई, जैसी रेलगाड़ियां लड़ने पर सोते हुये रेल-बाबू की जाग पड़ने के बाद अपनी गफलत पर होती है। इतना घबरा गया कि गिर पडता, परन्तु भुजबल की कई बार की कड़क ने उसे अचेत होने से बचा लिया। वह धीरे से उठकर भीतर जाने लगा। अजित उसी तरह आसन जमाये डटा रहा।

बैठे-बैठे बोला—'मैंने एक साधारण-सी स्वाभाविक बात पूछी थी, आप न जाने क्यों इतना नाराज हो गये। यदि मैं जानता कि आप यहाँ खड़े-खड़े सुन रहे है, तो न पूछता। इसके सिवा मैं इस चबूतरे पर बिना बुलाये आया भी नहीं हूं।'

इतने में पौर में से लालसिंह ने किसी से कहा—'कहाँ जाती हो बेटी ?'

किसी लड़की के कण्ठ ने उत्तर दिया—'देवी के मन्दिर में।'

'अभी न जाओ, भीतर चलो।' फिर अजित ने कुछ नहीं सुना।

भुजबल अप्रतिभ होकर खड़ा रह गया। केसरिया बाना पहने था। ब्याह के अवसर की पगड़ी सिर पर थी। पैरों में महावर था, और उस अंधकार में, यदि कोई देख सकता तो, ईश्वर की दी हुई उसकी सुन्दर आकृति भयानक हो रही थी।

इस समय आकाश में छोटे तारे न दिखलाई पड़ते थे। दो-एक बड़े-बड़े ही दिखलाई पड़ रहे थे। अजित उनकी ओर देखने लगा।

भुजबल ने खड़े-खड़े ही अपने साधारण स्वर में कहा—'आप जाइये।'

'मैं कन्या-पक्ष की ओर से आमन्त्रित हूँ।' अजित ने बिलकुल शांति के साथ कहा—'वर पक्ष की ओर से नहीं।'

भुजबल ने चिल्लाकर कहा—'मामाजी, यहां आइये।'

वह बाहर नहीं आया।

'तव मैं ही देखता हूँ।' भुजवल ने सोचा। अजित से वोला—'देखिये, इस वहाने यदि आप वखेड़ा खड़ा करने यहां आये हों, तो विश्वास रखिये, आपकी हड्डी-पसली का पता न चलेगा। आप जानते हैं कि यह गाँव हम लोगों का है, और इस व्याह में गाँव भर शामिल है?'

अजित कुछ सोचकर खड़ा हो गया। दरवाजे पर रोशनी करने और व्याह का तमाशा देखने के लिये कुछ लोग अपनी-अपनी लाठियाँ लिये हुये इधर-उधर से आये।

अजित ने धीरे से कहा—'मुझे कोई झगड़ा-वखेड़ा नहीं करना है। आपके मामाजी ने वुलाया था, इसलिये आ वैठा। जाता हूँ। मैं तो वीमार और निस्सहाय की सेवा के लिये आया था, सो यथासमय करूँगा।'

अजित वहाँ से चला गया। जाते समय उसने मन में सोचा—'क्या यहां की जनता की आत्मा मर गई है?'

अजित के जाते ही लोग-वाग भुजवल के पास आये। पूछा—'क्या था लालाजी?'

'कुछ नहीं। एक वकवादी पगला है, यों ही उलझ रहा था। वात कुछ नहीं है।' कहकर भुजवल पौर में चला गया।

[६२]

जिस घर में पैलू और वुड्ढा थे, अजित वहीं गया। घर के और लोग भोजन की चिंता में थे क्योंकि थोड़ी ही देर में व्याह का तमाशा देखना था। इस समय गाँव वालों को इस अचानक व्याह की समालोचना करने और तमाशा देखने की उत्कंठा लग रही थी। उनके मन में और कुछ नहीं था।

अजित ने पैलू से कहा—'अभी हम लोगों को क्या करना है, जानते हो?'

'मैं तो कुछ नहीं जानता।' उसने उत्तर दिया'

बुद्धा ने लेटे-लेटे कहा—'मेरी तबियत अच्छी होती, तो मैं भी तमाशा देखने जाता।'

अजित बोला—'चुपचाप सुनो, जो मैं कहता हूँ। यह विवाह नहीं है, एक बड़ा भारी पाप-कर्म है। जो लोग इसमें भाग लेंगे, पाप कमायेंगे।'

पैलू ने कहा—'हम लोग न जायँगे, परन्तु औरों को तो रोक भी नहीं सकते।'

'इससे पाप बचेगा नहीं?' अजित बोला।

'तब क्या करें बाबूजी?' पैलू ने पूछा। 'बात ठीक नहीं हो रही है, यह तो मेरी भी आत्मा कह रही है।'

'इस ब्याह को रोकना चाहिये।' अजित ने दृढ़ता के साथ कहा।

पैलू उत्तेजित होकर बोला—'मुझे आज्ञा हो, तो भुजबल का खोपड़ा भुरकस कर दूं। लेकिन वह लड़की बेचारी बड़ी भोली-भाली है, उसका जन्म अकारथ जायगा।'

अजित ने कहा—'किसी का सिर फोड़ने की गरज नहीं है। ब्याह रोक देने से उस अनाथिनी का जन्म भी अकारथ न जायगा। जिसने चाहा, वह इस संसार में कभी कुआँरा नहीं रहा। गाँव में तुम्हारे-सरीखे और कितने आदमी हैं?'

पैलू ने माथा टटोलकर उत्तर दिया—'छोटा-सा गाँव है। मिहनत-मज़दूरी करने वाले गरीब किसान बसते हैं। सीधे हैं। हमारा साथ देने लाठी लेकर कोई न आवेगा।'

'क्यों?' अजित ने कहा—'उन्हें जब यह बतलाया जायगा कि उस लड़की की मर्जी भुजबल के साथ ब्याह करने की बिलकुल नहीं है, और उसने मुझे इसी विपद् के निवारण के लिये बुलाया है, तब क्या अनेक लोग हमारा साथ न देंगे?'

'कह नहीं सकता।' पैलू ने कहा—'लालसिंह से न कहा जाय?'

'इस समय उससे कहने में कोई सार नहीं।'

अजित वोला—'वह एक सीधा-सादा अनिश्चयी आदमी है। परन्तु वेईमान नहीं मालूम होता। तुम अच्छी तवियत के लोगों में जरा जाकर इसकी चर्चा तो करो।'

पैलू ने कहा—'मैं जाने को तैयार हूं, परन्तु कह नहीं सकता कि लोग मानेंगे या नहीं। यह और वतला दीजिये कि लड़ाई के लिये कहना पड़ेगा या नहीं ?'

'विलकुल नहीं।' अजित ने कहा।

पैलू वोला—'लड़ाई के लिये कोई तैयार भी न होगा। तव क्या कहूंगा उन लोगों से ?'

'जव मेरा रुख देखें, सिर्फ हल्ला करने के लिये तैयार रहें,' अजित ने कहा।

पैलू वोला—'मैं जाता हूँ। देखूं, तैयार होते हैं या नहीं। यदि उनके मन में उत्साह देखूंगा, तव तो चर्चा छेड़ूंगा, नहीं तो कुछ न कहूँगा। काहे को अपनी जवान डालूं ? यदि कोई न मिला, तो मैं अकेला प्राण लेने और देने को तैयार हूँ।'

अजित थोड़ी देर कुछ सोचता रहा। सोचकर पैलू से पूछा—'यह देवी का मन्दिर कहां है ?'

'वही तो है, जहाँ वुद्धा को देवता ने झाम वतलाई थी। तालाव के किनारे है।'

'अच्छा, तो मैं तव तक वहीं जाता हूँ। किसी से मेरे वहाँ जाने के विषय में चर्चा मत करना। मैं थोड़ी देर में लोट आऊँगा।'

'वहाँ मत जाइये।' पैलू ने कहा।

'वहां मत जाइये।' वुद्धा ने भी कहा।

'मैं वहां अवश्य जाऊँगा।' अजित वोला—'वैसे तुम्हारे भय का भूत मन से जायगा ही नहीं।'

'तव मैं आपके साथ चलूंगा।' पैलू वोला।

अजित ने कहा—'नहीं, मैं अकेला ही जाऊँगा। तुम्हें जो काम सौंपा है, उसे करो।'

पैलू हठ न कर सका। अजित निहत्था था। पैलू ने उससे लाठी साथ ले जाने को कहा। अजित ने इनकार कर दिया। पैलू अपनी लाठी लिये एक ओर चला गया, और अजितकुमार दूसरी ओर निहत्था। किसी ने देखा नहीं।

[६३]

चौराहे पर से लौटकर ललितकुमार धीरे-धीरे घर चला गया। पैर-गाड़ी हाथ ही में लिये था। बहुत से लोग मामले की बातें व्याख्या के साथ सुनने के इच्छुक थे, परंतु निरंतर नीचे मुख किये जाने वाले ललितसेन से बात करने की हिम्मत न पड़ी।

घर पहुँचकर ललित भरभरा कर एक चारपाई पर जा लेटा। देर तक वह इसी तरह अकेला पड़ा रहा।

संध्या से जरा पहले रतन उसके पास आई। इस तरह से पड़ा हुआ देखकर बोली—भैया, ऐसे क्यों पड़े हो?'

कई बार पूछने पर भी ललित ने उत्तर नहीं दिया।

रतन ने और पास आकर पूछा—'भैया, बोलते क्यों नहीं हो? क्या बात है?'

ललित ने कहा—'मैं न जाने अब क्या देखने के लिये जीवित हूं?'

'आप सदा इसी तरह की बातें किया करते हैं, न जाने क्या हो गया है?'

'रतन, तेरा भाई यदि कोई और अधिक बुद्धिमान् मनुष्य होता, तो अच्छा होता। मूर्ख ही होता, परन्तु उसके आंखें तो होतीं।'

'खाने का समय हो गया है। उठिये, हाथ-मुंह धोकर भोजन कीजिये। आपने उस दिन कहा था कि भाई-बहन नित्य साथ बैठकर खाया करेंगे।'

ललित उठ बैठा। बोला—'तुम्हें कुछ मालूम है बेटी?'

'चलिये, संध्या हो रही है। हाथ-मुंह धोइये।'

'न बताओगी? न बताओगी, मैं जानता हूं, तुम्हीं यदि कुछ रौद्र प्रकृति की होतीं, तो आज यह नौबत क्यों आती। तुम लोगों की

आदर्श पूजा ने ही बहुत से पुरुषों को नरक का कीड़ा बना रक्खा है। मालूम है, आज क्या होने जा रहा है?'

रतन चुपचाप खड़ी रही।

'हां! सब मालूम है। पहले से जानती हो। और, मुझे आज तक नहीं बतलाया। इस आग को चुपचाप अकेले ही कलेजे के भीतर धधकने दिया! मालूम है, क्या परिणाम होगा?'

रतन ने कुछ कहने के लिये सिर उठाया। उस स्थान पर कुछ अंधेरा था, और ललित की आंखें धुंधली-सी हो रही थीं, इसलिये उसने देख नहीं पाया। वह ऐसी भासित हो रही थी, जैसी झाड़-झंकाड़ से ढकी हुई देवी की खंडित प्रतिमा।

'परन्तु जिसे मैंने अपमानित किया था, और जिसे कुचलने के षड्यन्त्र में मेरा हाथ इस समय भी है, वही मेरी सहायता करने गया हुआ है। मैं कैसा मूढ़ हूं! सोचकर कलेजा जलकर राख हुआ जाता है!' ललित ने कहा।

क्षीण स्वर में रतन ने कहा—'किसे?'

'किसी को नहीं।' ललित ने कहा—'कैसा दाह हो रहा है! तबियत चाहती है कि गोली मार दूं!' रतन कांप गई।

कोमल कातर स्वर में बोली—'किसे?'

'उसी को, उस राक्षस को, जिसने मेरी मां की बेटी की यह दुर्गति की, जिसने मेरे मां-बाप की महिमा को पैर के तले रौंदा।' ललित ने रुंधे हुये गले से कहा।

'यह आप कुछ न कहें।' रतन में अकंपित स्थिर स्वर में कहा—'आपके मां-बाप की महिमा को कोई पैर तले नहीं रौंद सकता। आपकी कीर्ति कभी मिट्टी में न मिलेगी। हमें केवल अपने गौरव की रक्षा का अधिकार है। वही हमारा धर्म है। वही हमारा सत्य है। उससे कम और उससे अधिक हमारा कुछ नहीं। आपके मुंह से ऐसी कड़वी बातें शोभा नहीं देतीं। चलिये, उठिये।'

ललित को एक क्षण के लिये ऐसा जान पड़ा, मानो वह अँधेरा स्थान किसी अप्रत्यक्ष, किसी अलौकिक आभा से आलोकित हो उठा हो। बैठ गया।

एक क्षण के लिये स्तम्भित हो गया। परन्तु इस तरह से प्रभावित होना उसके स्वभाव में बहुत न था। बोला—'रतन, तू देवी है। हम लोग मनुष्य हैं। देवी का अपमान मुझसे न देखा जायगा, मैं सिगरावन जाता हूँ।'

'आप न जा सकेंगे, मेरी सौगन्ध है।'

'तेरी सौगन्ध, मैं अवश्य जाऊँगा। पहले ही बहुत विलम्ब हो चुका है।'

ललित उठ खड़ा हुआ, और जाने के लिये तैयार। रतन ने कहा—'तो आप मेरे साथ भोजन न करेंगे?'

सोचकर ललित ने कहा—'करूँगा, पर बहुत थोड़ा और बहुत जल्दी।'

भोजन करने के उपरान्त जब ललित बाहर जाने को तैयार हुआ, तब रतन ने फिर रोका। उसकी कल्पना थी कि भोजन में कुछ समय लगने से भाई का ख्याल बदल जायगा, परन्तु ऐसा न हुआ।

ललित ने जाने के लिये तैयार होते हुये कहा—'मैंने जाने का निश्चय कर लिया है।'

'तब एक बात सुने जाइये। आप नहीं मानते हैं, तो सुनिये।'

'क्या है?' ललित ने कोमल स्वर में पूछा।

'मैं भी अपने बाप की बेटी और अपने भाई की बहिन हूं, यह आप जानते हैं?'

ललित ने विस्मय की दृष्टि से रतन की ओर देखा।

'यदि किसी की जान पर आ बनी, तो आप मुझे मरा हुआ पावेंगे। इसमें किसी तरह का सन्देह न करना।'

वह क्षीण, दुर्बल स्त्री देवी की विशाल मूर्ति की तरह ललित को जान पड़ी।

कुछ क्षण तक ललित स्तब्ध खड़ा रहा। जाते समय वोला—'मैं तुम्हारी सौगन्ध खाता हूँ, सिवा निषेध के और कुछ न करूँगा। अपने जीते-जी तुम्हें मरा हुआ देखने का मौका कभी न आयेगा।' अंधेरा हो चला था, और सिंगरावन का मार्ग पैर-गाड़ी के लिये उपयुक्त न था, इसलिये ललित हाथ में लकड़ी लेकर अकेला ही चल दिया।

(६४)

अनुमान से मार्ग खोजते-खोजते अजितकुमार तालाव के पास पहुंच गया, और कुछ कठिनाई के वाद उसने मन्दिर भी ढूंढ़ लिया। वहाँ विलकुल अन्धकार था।

विलकुल पास तालाव था। वाँध के किनारे टहलने लगा।

पश्चिमी क्षितिज के ऊपर हलकी लाल-पीली रेखा थी। अन्धकार मण्डल वाँधकर प्रवेश कर चुका था। भूमि की समता और विषमता विलकुल विलीन न हुई थी, परन्तु पेड़ों के वड़े-वड़े समूह और टौरियों को छोड़कर धरातल एक फैली हुई दूर्वास्थली-सदृश भान होता था। नक्षत्र चमक रहे थे, अपने क्षीण प्रकाश से तमोराशि का छेद-भेद करने में विफल-प्रयत्न हो रहे थे। तालाव की लम्वी चादर के सिरे तिमिर-मंडल में विलकुल लुप्त नहीं हो पाये थे, परन्तु उसकी सीमायें अँधेरे की कोर में दव गई थीं। पैरों से थोड़ी ही दूर तक का कुछ कुछ दिखलाई पड़ता था, परन्तु और आगे की वस्तुओं पर तो निशा वरस-सी रही थी। उस एकांत में वह स्थान शांत और विश्राममय जान पड़ता था। पीपल के पत्तों की रह रहकर होने वाली खरखराहट सुनसान अँधेरे को कभी-कभी आंदोलित कर देती थी। दूर पर स्यारों के फेकरने का शब्द उस सन्नाटे को और भी गंभीर वना रहा था। एक ओर चकरई की टौरिया, दूसरी ओर सिंगरावन की पहाड़ी का वक्राकर सिलसिला और जल-राशि तथा झाड़ी की स्पष्ट सीमाओं ने उस स्थान को एक वड़े

आंगन का रूप दे रक्खा था। उस निश्चेष्ट, निश्शब्दप्राय, आलोक-रहित स्थान में अजित को केवल अपने पैरों की आहट सुनाई पड़ रही थी। गांव में जो कुछ थोड़ी सी चहल-पहल थी, वह इतनी प्रबल न थी कि यहां पर स्पष्ट सुनाई पड़ती।

'ललित को साथ लेता आता, तो कुछ हानि न होती।' अजित ने मन में कहा—'गांव वाले नाहक का झगड़ा मोल लेने को शायद ही तैयार हों। इतना अवश्य है कि कहने-सुनने से उनका हृदय भलाई की तरफ हो जायगा, और अवसर पड़ने पर वे लोग बुराई का साथ न देंगे। परन्तु इस समय और अधिक क्या किया जाय इसका निर्णय कठिन हो रहा है। ललित आ जाता, तो निश्चय ही भुजबल को अपना हठ पूरा करने का साहस न होता; परन्तु मैल की गांठ भी इतनी कड़ी बँध जाती कि बेचारी रतन का कष्ट अनंत हो जाता। यदि योजना सफल हो गई, तो भी ललित का उद्धत स्वभाव एक-न-एक दिन भुजबल को अपनी करतूत की याद दिलावेगा, और जिसका भय है वह होकर ही रहेगा। तो भी बहुत सी कटुता बच जायगी। कटुता भले ही बच जाय, परन्तु और अगणित कठिनाइयों का सामना अवश्य ही करना पड़ेगा। उस अनाथिनी का बचाव कठिन मालूम पड़ता है। अब जो हो, एक बार प्राणप्रण से चेष्टा तो अवश्य करूंगा। यदि असफल भी हुआ, तो यथाशक्ति अपनी मूर्खता को असफलता का कारण न बनने दूंगा।'

टहलते-टहलते जब अजित को कुछ विलंब हो गया, और कहीं किसी ओर से किसी के आने की आहट न सुनाई पड़ी, तब अपने आप कहा—'उसने मन्दिर की ओर जाने के लिये पौर में कहा था, यदि आ जाती, तो रक्षा का कार्य सरल हो जाता।'

थककर बांध पर बैठ गया, और धीरे-धीरे हिलने वाली जलराशि की ओर देखने लगा। मऊ-सहानिया की फांटा पहाड़ी वाली झील इससे कहीं अधिक स्पष्ट थी, कहीं अधिक स्मृति को चंचल करने वाली। 'मेरे लिये कोई स्थान नहीं।' फिर एक धीमी आह मुंह से निकली।

सोचा—'उस दिन भाव कैसा गम्भीर था ! और कितना क्लांत। कली खिलने के पहले ही मुर्झा गई ! पेड़ में लगी-लगी भले ही समाप्त हो जाय, परन्तु उनके अभिमान की नोक सीधी ही रहेगी। भुजवल का यदि विवाह रुक जाय, तो एक दिन उसे अपनी अतीत लोलुपता पर पछताकर विवश सीधी राह पर आना पड़ेगा। और, यदि विवाह न रुक सका, तब न-मालूम कितनों के लिये प्रलय-सी मच जायगी।'

और उसने अचानक पीछे मुड़कर मन्दिर की ओर देखा। एक क्षण के लिये मन्दिर में प्रकाश दिखलाई दिया, और फिर तुरंत लोप हो गया। झप-सी लग गई।

(६५)

वैसे अजित के मानसिक संगठन में भय के लिये स्थान न था, परंतु देवी के मन्दिर में प्रकाश के आकस्मिक आविर्भाव और उसके तत्काल लुप्त हो जाने पर शंकित हो गया। तरह-तरह की धारणायें उठने लगीं। कदाचित् वह लड़की ही हो, परंतु आने की कोई आहट नहीं सुनाई पड़ी थी, मार्ग पास से ही गया था। आई होती, तो सुनाई पड़ता। फिर मन्दिर में प्रकाश किसने किया ? सहवर्गियों ने ? अजित ने मन में स्थिर किया—'दैवी घटना तो यह है नहीं, और कदाचित् हो, तो भय की कोई बात नहीं। मानवीय घटना हो, और कोई और ही मन्दिर में आया हो, तो मुझे यहां इस तरह अकेला पाकर न-मालूम क्या सन्देह करेगा।' बांध पर खड़ा होकर, टकटकी लगाकर मन्दिर की ओर देखता रहा, परन्तु न तो कोई शब्द सुनाई पड़ा, और न फिर प्रकाश ही दिखलाई पड़ा।

अजित ने चुपचाप मन्दिर के निरीक्षण करने का निश्चय किया। एक पेड़ से दूसरे पेड़ की छाया में होता हुआ पीपल की छाया में पहुंच गया, जैसे अंधेरे के भीतर अंधेरा घूम रहा हो। बहुत धीरे-धीरे मार्ग टटोलता हुआ मन्दिर के द्वार पर पहुंच गया। छोटा-सा मन्दिर था। एक ही द्वार। खुला हुआ-विना किवाड़ों का। पास पहुंचकर मन्दिर

की दीवारें और बीच में दरवाजा दिखलाई पड़ा। वहां पहुंचते ही जले हुये घी की महक आई, और भीतर किसी के साँस लेने का शब्द सुनाई पड़ा। अजित सिमटकर दीवार के सहारे दरवाजे के निकट खड़ा हो गया। कुछ ही देर खड़ा रहा होगा कि ऐसा जान पड़ा, मानो कोई सिसक रहा हो।

'माँ!' अजित ने किसी को रुँधे हुये गले से कहते हुये सुना—'माँ, अनाथों का इस संसार में कोई नहीं है। न सही, परन्तु उस संसार में तो है। वहां भी कोई न हो, तो अब और किस कामना के लिये जिऊँ?'

फिर अजित को शब्द रुँधा हुआ कम और अकंपित स्पष्ट अधिक सुनाई पड़ा—'यदि मैं अपने निश्चय को कल ही पूरा कर लेती, तो एक दिन-रात की इतनी व्यथा से बच जाती। तुम्हारे राज्य में शिलाओं की कमी है, तो पेड़ों की डालियों की तो कमी नहीं है। सवेरे लोग तमाशा देखेंगे! देखें, मुझे थोड़े ही देखेंगे। मिट्टी को भले ही देखते रहें। फिर वह राक्षस अपनी इस करतूत पर भी जी भरकर सुखी हो ले।'

थोड़ी देर बाद अजित ने और सुना—'तुम कायर हो। आये, और कुछ भी न कर सके। परन्तु जब भगवान् ही रूठे हैं तब किसी को क्या कहूँ।' फिर स्वर जरा तीव्र हुआ 'हाय! मैंने चिट्ठी लिखकर बहुत बुरा किया। व्यर्थ अपनी लाज गँवाई।'

फिर अजित ने कोई बात नहीं सुनी। किसी के हिलने-डुलने का शब्द सुना। एक क्षण में कोई बाहर आया। मन्दिर-स्थित मूर्ति की ओर सम्मुख होकर फिर उसने कहा—'मां, मैं जाती हूँ। मेरे किये-न-किये पाप क्षमा हों। यदि हृदय में तुम्हारी और अपने देव के सिवा किसी और की मूर्ति हो, तो तुम साखी हो।'

अजित ने उस अंधकार में भी समझ लिया कि कोई स्त्री है। धीरे-धीरे, परन्तु दृढ़ता के साथ पैर रखते हुये वह स्त्री मन्दिर से नीचे

उतरी। अजित थोड़ी देर के लिये किं-कर्तव्य-विमूढ़ हो गया। शायद कोई और स्त्री हो—पूना न हो! क्या करूँ?

परन्तु क्षण-क्षण में वह स्त्री अन्धकार में विलीन होती जा रही थी। एक ही दो क्षण बाद कदाचित् सम्पूर्ण लौकिक प्रयत्न व्यर्थ हो जायें, यह सोचकर अजित ने धीरे से साहस के साथ कहा—'पूना'!'

तुरन्त उस स्त्री ने जरा-सा चीत्कार किया, परन्तु तुरन्त ही सँभलकर बोली—'दूर-दूर, दुष्ट अब पास मत आना, दुर्गा मेरी सहायक हैं। तेरी इच्छा पूरी न हो सकेगी। खबरदार, पास मत आना।'

'मैं अजितकुमार हूँ।' अजित ने बेधड़क कहा—घबराओ मत, शत्रु नहीं हूं। दुर्गा ने ही तुम्हारी सहायता के लिये मुझे यहां भेजा है।'

'ओह! दुर्गा! मां—कौन?'

'मैं आया।' और तुरन्त अजित अँधेरे को चीरता हुआ उस स्त्री के आकार की ओर लपका। बोला—'डरो मत। मैं अजित हूँ। पहिचान लो।' परन्तु उसे कोई उत्तर नहीं मिला। वह स्त्री अचेत होकर अजित की बाँहों में गिर पड़ी। अजित ने सँभाल लिया, और उठाकर पानी के पास ले गया।

जल के छींटे देने और कुछ समय तक अपनी धोती के छोर से हवा करने के कारण उस स्त्री को चेत आ गया। वह पूना थी।

अजित उसे अपना सहारा दिये था। पानी के किनारे तारों के प्रकाश के निविड़ अन्धकार में भी और स्थान की अपेक्षा अच्छा दिखलाई पड़ता है। अजित ने कहा—'देखो, मैं और कोई नहीं हूँ। अजितकुमार हूँ।' फिर हँसने की चेष्टा करके बोला, 'वही, जिसने मऊ-सहानिया में हारमोनियम बजाकर रासधारी की पदवी पाई थी। याद है पूना! लो, अब डरो मत। देखो मैं भुजबल नहीं हूं।'

'मुझे बैठ जाने दो।' पूना ने कांपते हुये कहा!

'गिर पड़ोगी। अभी नहीं। पहले बिलकुल स्वस्थ हो जाओ।' अजित बोला।

'मैं बिलकुल स्वस्थ हूं।' पूना बोली। अजित ने छोड़ दिया। वह पास ही बैठ गई। बैठकर रोने लगी। देर तक रोती रही।

अजित ने कहा—'रोओ मत पूना, रोने का समय गया। तुम अब स्वतंत्र हो। देखो, रोओगी, तो शोर सुनकर कहीं भुजबल पता लगाता हुआ इसी तरफ आ पहुंचेगा।'

पूना ने रोना बन्द कर दिया। अजित के पास सिमट आई। बोली—'मुझे अब कोई डर नहीं है। माँ ने मेरा रक्षक पहुंचा दिया है।' फिर एक क्षण बाद बोली—'मां के देहाँत के समय पास खड़े थे, कुछ सुना था, याद है?'

'याद है।' अजित ने उत्तर दिया—'मुझे उन्होंने पहिचान लिया था।'

'न।' पूना बोली—'वह देख कुछ नहीं रही थीं, देख सकती भी न थीं। उनके मन में जो कुछ था, सो उन्होंने कहा था।'

'मुझे उन्होंने देखा नहीं था? क्या उस समय उनके देखने की शक्ति जाती रही थी?' अजित ने कुछ स्मरण करके पूछा।

पूना ने उत्तर दिया—'कई घण्टे पहले उनके आँखों की ज्योति जाती रही थी, परन्तु सोचने-समझने की शक्ति उनमें बहुत देर तक बनी रही थी।'

अजित चुप हो गया। देर तक चुप रहा।

'मैं अब कहाँ जाऊँगी?' पूना ने धीरे से प्रश्न किया।

'यही मैं भी सोच रहा था।' अजित ने कहा।

'सोच रहे थे!' पूना ने सांस भरकर कहा।

अजित बोला—'तुम कहाँ जाना चाहती हो पूना?'

'कहाँ बतलाऊँ!' वह बोली—'संसार में कौन बैठा है? इस जल-राशि में ढकेल दो।'

'हैं!' अजित ने आश्चर्य के साथ कहा—'मैं इसके लिये थोड़े ही यहाँ आया था, पूना!'

'तब काहे के लिये आये थे ?' उस लड़की ने कहा—'मुझसे पूछते हो कि मैं कहाँ जाऊँ ?'

अजित की समझ में जो बात शंका के रूप में बहुत पहले से उपस्थित थी, अब वह विश्वास के रूप में परिवर्तित हो गई। बोला—'पूना, तुम्हें यह मालूम है कि तुमने इस विवाह की अपेक्षा आत्मघात क्यों पसन्द किया ?'

'तुम्हीं उत्तर दे लो।' उसने कहा।

'मैं ही बतलाता हूँ।' अजित बोला—'भुजबल विवाहित है, इसलिये तुम्हें इतनी भीषण अरुचि हुई।'

'और !' पूना ने कहा—'कहो न।'

'मैं विवाहित नहीं हूँ।' अजित बोला—'पर हृदय का बल खो चुका हूँ।'

'मुझे यह सब सुनने की और जानने की कोई आवश्यकता नहीं है।' पूना ने कहा, 'यदि तुम मेरी रक्षा नहीं कर सकते हो, तो यह जलराशि तो मुझसे मुंह मोड़ेगी नहीं।'

इतने में गांव में शोर सुनाई दिया, और कुछ अधिक प्रकाश दिखलाई दिया।

अजित ने कहा—'तुम्हें मेरा यह इतिहास असह्य तो नहीं है ?'

पूना ने उत्तर दिया—'मैं यह सब कुछ नहीं समझती, कुछ नहीं जानती।'

फिर दोनों थोड़े समय तक चुप रहे।

अजित ने कहा—'पूना, तुमने कभी सोचा था कि तुम और रासधारी कभी इस तरह से बातचीत करेंगे ?'

पूना ने सिर नीचा कर लिया। एक क्षण बाद बोली—'क्या कहा ?'

इतने में गांव के एक खुले हुये सिरे पर कुछ लोग मशाल लिये इधर-उधर दौड़ते हुये जान पड़े।

पूना ने कहा—'मुझ को ढूंढ़ रहे हैं। मुझे इसी तालाव की तली में सरक जाने दो। मेरे लिये अब और कष्ट न करो।' और वह हिली।

अजित ने तुरन्त हाथ पकड़कर कहा—'तुम्हारी सदृश देवी जिस भाग्यवान् के पास हो, उसे कभी कष्ट हो नहीं सकता, परन्तु ऐसा न हो कि पीछे पछताओ।'

पूना ने जरा तेजी के साथ कहा—'बार-बार मुझसे मत कहो। मुझे तो अब यहीं समाप्त हो जाने दो।'

'नहीं, कभी नहीं।' अजित ने कहा।

मशाल का प्रकाश उसी दिशा में आता दिखलाई दिया।

अजित बोला—'यहाँ से किसी और सुरक्षित स्थान पर चलो।'

पूना जरा अधीर हो उठी, परन्तु प्रयत्न करके स्थिरता के साथ बोली—'मेरे लिये इससे बढ़कर सुरक्षित स्थान और कोई नहीं है। वरुणदेव मेरी भली भांति रक्षा करेंगे।'

'मां का आदेश भूल गईं ?' अजित ने मन्दिर की ओर बढ़ते हुये प्रकाश को देखकर आतुरता के साथ कहा।

'मैं ?' पूना ने आश्चर्य के साथ पूछा।

'मैं तो मां के आदेश को मानता हूँ।' अजित ने कहा, और हाथ पकड़कर पूना को उठाने लगा।

'मैं इस तरह नहीं मानती।'

पूना ऊपर की ओर दृष्टि करके बोली—'प्रतिज्ञा करो कि कभी शरण से दूर न करोगे ?'

'प्रतिज्ञा करता हूँ।' अजित ने धीरे से, परन्तु उतावली के साथ कहा, फिर अजित और पूना चकरई पहाड़ी की ओर जल्दी-जल्दी चले गये।

[६६]

जिस समय अजितकुमार सिंगरावन में आ गया था, पूना उसी समय से मन्दिर जाने के लिये उत्कंठित हो रही थी। अपनी इच्छा

उसने प्रकट की, तो रोक दी गई। परन्तु अंत में अकेली निकल आई। कोई स्त्री प्रेतों के डर के मारे उसके साथ जाने को तैयार न होती—उसने किसी को साथ चलने के लिये कहा भी नहीं। आंख बचाकर निकल आई।

उसे घर से गये हुये विलंब हो गया था। टीके की तैयारी हो रही थी, और भुजवल ने ऐसा प्रवंध किया था कि टीके के वाद दूसरी रीति-रस्में वहुत थोड़े समय में निपटाकर १०–११ वजे रात को भाँवर पड़ जायँ। पहले तो पूना को लोगों ने घर में ढूंढ़ा, फिर आस-पास के घरों पर पूछने के लिये गये। वुद्धा के घर में जाकर तलाश किया।

वुद्धा ने कहा—'यहाँ तो वह सवेरे हाल पूछने आई थी, फिर नहीं आई।'

खोज करने वालों को मन्दिर की वात याद आई, तव उनके पैर फूल गये।

भुजवल निडर था, परन्तु दूल्हा होने के कारण खुद न गया। लालसिंह से कहा। लालसिंह डरपोक था, परन्तु पूना पर उसकी ममता थी, इसलिये मशाल जलवाकर पहले तो इधर-उधर भटका, इसके वाद मन्दिर गया। वहां घी का दिया वुझा हुआ पड़ा था, पर उसमें घी वाकी था—जान पड़ता था कि समझ-वूझकर वुझा दिया गया है। पूना कहाँ गई? क्या कोई देवता उसे उठा ले गया?

इस तरह की शंका होने पर एक किसान ने कहा—'लड़की की इच्छा भुजवल के साथ व्याह करने की नहीं है।'

'कैसे मालूम हुआ?' लालसिंह ने उससे पूछा।

'वात ठीक है।' वह वोला—'पैलू ने कहा है, और लोगों ने भी कहा है।'

तव लालसिंह को डर लगा कि ऐसी हालत में कहीं तालाव में न डूव गई हो! इस शंका के उठते ही वह वेचारा भय और ग्लानि के मारे

काँपने लगा। तालाब के पास जाकर भी ढूंढ़ा, परन्तु वहाँ भी कोई पता न लगा।

तब सब लोग फिर घर को लौट गये। लालसिंह की दशा बड़ी दयनीय हो रही थी। भुजबल भी चिंता में था, क्रोध में और क्षोभ में। ऐसी अवस्था में उसे अजित का ध्यान आया। वह अपनी प्रस्तुत वेदना का कारण तर्क या कुतर्क से अजित को ही स्थिर कर रहा था। शायद उसी ने बरगलाया हो। इस धारणा के होते ही उसने अजित की खोज करवाई। बुद्धा से पूछा।

उसने उत्तर दिया—'वह तो छावनी चले गये।'

'पैलू कहाँ गया ?' प्रश्न किया गया।

'मुझे नहीं मालूम।' बुद्धा ने उत्तर दिया।

भुजबल का जी चाहा कि बुद्धा को टुकड़ों-टुकड़ों में कतर डालूँ, क्योंकि उसी की मारपीट के कारण अजित को सिगरावन में आने का अवसर मिला था। न इस बदमाश को ठोकता, और न अजित कभी सिगरावन आता !

इस गड़बड़ को मानो खूब बढ़ाने के लिये लालसिंह के दरवाजे पर बहुत खासी भीड़ जमा हो गई। औरतें, बच्चे, मर्द—सभी मनमानी बक-झक रहे थे।

पैलू को इसी भीड़ में देखकर, भुजबल ने नीम के पास, चबूतरे पर खड़े होकर, डपटकर कहा—'क्यों बे, तू कहां था ?'

'यहीं तो।' पैलू ने स्वर को नम्र बनाने की चेष्टा करते हुये कहा।

भुजबल इस समय केसरिया बागा, जो पैर की एड़ी तक लटक-लटक कर लहरा रहा था, पहिने था, और सिर पर पगड़ी में जकड़ा हुआ मोर-मुकुट बांधे था—टीके की रस्म की पूरी तैयारी थी।

बागे की आस्तीन से ढकी हुई मुट्ठी को हवा में तानकर भुजबल ने कड़ाके के साथ कहा—'जिन लोगों ने लड़की को छिपाया है, उन पर कल मुकद्दमा चलेगा, और सबको कालापानी होगा।'

एक किसान बोला—'काऊ खाँ बिटिया के छिपावे की का अटक परी ?'

'अबे, सब बात भूल जायगा, कल जब पुलिस का जूता बरसेगा। पैलू देखो, कल तुम्हारी क्या गति होती है।'

दूसरा किसान बोला—'काये, पैलू भैया ने का करो ? ऊ तो हम सब जनन नों बैठो तो। काये खाँ बिरथां प्रान साँसें डारत ?'

पैलू बोला—'ए तो तुम खां जो दिखायँ, सो कर लेओ। फांसी दुआ दयी।'

'साले, हरामजादे।' भुजबल ने अपनी आवाज की दून में कहा—'तेरी बोटी-बोटी कुत्तों से न नुचवाई, तो मेरा नाम भुजबल नहीं।'

लालसिंह रोकर बोला—'मैं यह नहीं जानता था। हाय, उस फूल-सी लड़की को अपने प्राण गँवाने पड़े ! हत्यारे तालाब ने बेचारी को ग्रस लिया।'

भुजबल ने निष्ठुरता के साथ कहा—'चुप रहो, तुम अपना रोना-धोना किसी और समय के लिये रख छोड़ो। वह कदापि नहीं मरी है। छावनी से जो वह गुण्डा आया था, उसी ने इस पैलुआ की शरारत से लड़की को कहीं छिपा दिया है।'

एक क्षण बाद जरा नम्र स्वर में बोला—'औसान मत बिगाड़ो। ढूँढ़ो, नहीं तो भाँवरों की सायत निकल जायगी।'

'जरूर-जरूर। देखिये सायत न निकलने पावे।' किसी ने भीड़ के पीछे से कहा—'वाह, क्या छवि है ! क्या हुलिया है !!'

सबने उस ओर देखा। भुजबल की दृष्टि भी उस ओर गई। कानों ने जिस बात का विश्वास न किया था, आँखों ने उसी को ठीक तौर पर देख लिया।

'छावनी का एक गुण्डा और हाजिर है।' ललितसेन ने भीड़ में से निकलकर कहा—'मुझे भी आज्ञा हो, किसकी खोज करनी है ?'

भुजबल के होंठ से होंठ मिल गये, और गाल दाँतों से चिपट गये, भौंहें सिकुड़ गईं, जैसे शिकारियों से घिर जाने पर जंगली जानवर बचाव का मार्ग न देखकर आक्रमण की योजना करता है, उसी तरह सीने पर हाथ बाँधकर, गर्दन अकड़ाकर भुजबल चुपचाप खड़ा हो गया।

ललित ने व्यंग्य का प्रणाम करके कहा—'अरे यह तो आप हैं। नहीं, नहीं, मैंने पहिचानने में गलती की है। यह लम्बा बागा! यह पगड़ी! यह मुकुट! क्या आज यहाँ कोई स्वाँग भरने के लिये पधारे हैं? कोई नाटक कीजियेगा? अरे, आप तो कुछ बोलते ही नहीं हैं!'

ललितसेन लालसिंह के घर न्योते में कुछ महीने पहले ही आया था। बड़ा आदमी समझा जाने के कारण सिगरावन के लोग उसे खूब अच्छी तरह बार-बार झाँक-झाँककर देख चुके थे। पहिचानते थे। बहुतेरों को उसका और भुजबल का परस्पर सम्बन्ध भी ज्ञात था।

जिन किसानों के हृदय में पूना के साथ होने वाले इस विवाह के सम्बन्ध में प्रतिवाद और विरोध की भावना उत्पन्न हो गई थी, और जो उसको सक्रिय रूप में प्रकट करने के लिये हीन-क्षीण और असमर्थ दिखाई पड़ते थे, उन्हें मानो एक बड़ा सहारा मिल गया।

पैलू बोला—'अब इनसे नईं कात बनत आय कछू। हम खाँ मुराएँ डारत ते!'

एक किसान बोला—'ऐसो नईं होत आय संसार में। जबरदस्ती बिझाऊ मचाएँ फिरत।'

लालसिंह ने रोकर कहा—'मैं नहीं जानता था।'

'क्या नहीं जानते थे!' ललित ने पूछा। 'बोलिये, कहिये।'

भुजबल ने कुछ कहने के लिये मुंह खोलना चाहा, पर सफल न हुआ। लालसिंह ने सिसककर कहा—'मैं नहीं जानता था कि लड़की राजी नहीं है।'

'ओ हो ! यही तो इस नाटक की सुन्दरता है।' ललित ने पूर्ववत् व्यंग्य के साथ कहा—'वाह, क्या बात है दूल्हा महाराज, जमींदारी, रुपया, व्याह, सब एक ही हथकण्डे में।'

भुजबल की आंखें फिरीं, कंधे हिले और वह धड़ाम से नीम से टकरा कर जमीन पर जा पड़ा।

ललित ने वैसे ही खड़े रहकर व्यंग्य के साथ कहा—'यह दूसरा अभिनय है। देखिये, कैसा बढ़िया नाटक है ! बारात, टीका, कन्या-लोप और भांवर के समय शयन ! कोई पास मत जाओ। दूल्हा के शरीर में हाथ मत लगाओ।' परन्तु व्यंग्य की गति आगे न चल सकी। भुजबल के मुंह से फेन आने लगा। ललित रुक गया।

पैलू ने कहा—'अब रान दो भैया साव।'

ललित ने धीमे स्वर में, परन्तु बिलकुल फटे हुये गले से कहा—'लालसिंह, यदि तुम्हारे दिमाग में कुछ अकल अब भी बच रही हो, तो इसे चारपाई पर लिटा दो। पानी के छींटे दो, और हवा करो।'

ललित के तीव्र वाक्य से लालसिंह सजग हो गया, और देहाती मदद के लिये चबूतरे पर चढ़ आये। भीतर ले जाकर चारपाई पर लिटा दिया, और चेत में लाने के उपचार करने लगे।

ललितसेन बाहर ही रहा। पैलू को पास बुलाकर उसने कहा—'तुम उतने बोदे नहीं हो, जितना दोपहर के समय तुम्हें मैंने समझा था। वह कहां है ?' पैलू को बुलाते ही बहुत से गांव वाले ललित के पास आ खड़े हुये।

पैलू ने कहा—'यहीं हैं, परन्तु ठीक स्थान नहीं बतला सकता।'

ललित बोला—'वह कहां हैं, ठीक-ठीक नहीं बतला सकते ?'

'जी नहीं।' पैलू ने उत्तर दिया।

'लड़की सुरक्षित है ?'

'मैं यह भी ठीक-ठीक नहीं बतला सकता। मालूम नहीं है।'

'जाते समय तुम्हें कोई ठौर-ठिकाना बतला गये थे ?'

'मन्दिर की ओर जाने की बात कह गये थे।'

'और लड़की भी मन्दिर की ओर गई थी?'

'नहीं कह सकता।'

'जाते हुये देखा था या नहीं?'

'नहीं।'

ललित ने एक क्षण ठहरकर कहा—'हूं।'

'लड़की बिलकुल सुरक्षित है। तुम लोग या जो कोई उस पर तालाब में डूब मरने का संदेह करते हो भ्रम में हो।' इसके बाद वह भुजबल के पास गया। पौर में काफी प्रकाश था।

भुजबल अचेत था, और ललितसेन के चेहरे से ऐसा भासित होता था कि एक ही दिन में बीस बरस और अधिक आयु का हो गया है।

[६७]

जिस समय मशाल लिये हुये लोग मन्दिर की ओर बढ़े थे, अजित पूना के साथ चकरई पहाड़ी की ओर चला गया था। उससे कुछ कदम आगे बढ़ गया। यहाँ छोटी जरियों की घनी झाड़ी थी। बीच में फूस का एक टपरा सूखी लकड़ियों के सहारे, जो लोगों ने बरसात की ऋतु में बनाया होगा, खड़ा था। दोनों उसमें जाकर बैठ गये। उस सघन अंधकारमय टपरे में तारों के क्षीण प्रकाश के लिये भी स्थान न था।

तरह तरह की मानसिक पीड़ाओं से मथी हुई पूना बिलकुल थक गई थी। सुरक्षित स्थान में संकट से अपने को दूर पाकर उद्धार के हर्ष के उल्लास में अधिक समय तक चंचल न रह सकी। अपने घुटनों पर शिथिल सिर को रखकर निद्रित हो गई। अजित अब तक किसी सोच-विचार में डूबा हुआ था। विचार-सागर में डूबते-उतराते उसे देर में यह सुध आई कि पूना पास में बैठी हुई गठरी-सी बनी पड़ी है।

उसके सिर पर हाथ रक्खा। जब वह न चौंकी, तब धीरे से हिलाया। जाग पड़ी। पूछा—'नींद आ रही है?'

अर्द्ध-जाग्रत्, अर्द्ध-सुषुप्त पूना ने कहा—'हाँ।' और अजित की ओर किसी ऐसी प्रेरक शक्ति के वशीभूत होकर वढ़ी जिसका उसे ध्यान ही न था। अजितकुमार ने तुरन्त उसे साध लिया और सिर अपने कन्धे पर रख लिया। पूना गहरी नींद में सो गई।

अजित ने सोचा—'रतन एक कष्ट से तो वच गई, परन्तु आगे उसके अदृष्ट में क्या वदा है, सो नहीं कहा जा सकता। भुजवल का कुछ ठीक नहीं कि इतने ही से शांत हो जायगा या नहीं। मुझसे जहाँ तक और जव तक वनेगा, उसके कष्ट के निवारण की चेष्टा करूँगा, परन्तु अव मैं उसके लिये शायद ही कुछ कर सकूँ। पूना को भविष्य में कदाचित् मेरी योजना पसन्द न आवे। जो कुछ इसे अच्छा न लगेगा उसको मैं न कर सकूँगा—कभी किसी अवस्था में भी नहीं। कितनी उदार और कितनी मुक्त है। जव सुचित्त होगी, तव मैं अपने हृदय को उसके सामने खोलकर रख दूंगा।' फिर थोड़ी देर वाद विचारधारा दूसरी ओर वह उठी। सोचने लगा—'कल पैलू और वुद्धे के लगान का रुपया देने की सवसे पहले चिन्ता करनी होगी। जो कुछ माल-असवाव है, सव वेच-वाचकर उसको भुजवल के भय से छुड़ाना पड़ेगा।' फिर सोचा—'पैलू क्या सोचेगा? लोग क्या कहेंगे? जव देखेंगे कि पूना के साथ अखण्ड सम्वन्ध स्थापित करने जा रहा हूं। अव कोई कुछ कहे। एक वार अंगीकार किया, तो सदा के लिये किया। भगवान् जानते हैं कि मैंने कभी इस तरह की वात को हृदय में स्थान नहीं दिया। लोग दिल्लगी उड़ायें, भले उड़ा लें—परन्तु आज से, इस समय से, पहले मेरे मन ने कभी पूना के विषय में और वात नहीं सोची।' फिर मन में कहा—'यहां तक तो पूना की रक्षा हो गई, परन्तु अव वहुत कठिनाइयों का सामना करना पड़ेगा।'

इतने में पूना ने स्वप्न में स्पष्ट कहा—'मैं नहीं जाऊँगी, मुझे छोड़ नहीं सकोगे।'

'मत जाना; न छोड़ूँगा।' अजित ने उसे कन्धे से लगाये हुये, काँपते स्वर में, आश्वासन दिया।

परन्तु वह सो रही थी। उसने नहीं सुना।

[६८]

लालसिंह उस रात बराबर जागता और रोता रहा। कभी भुजबल की सँभाल, तो कभी पूना की याद उसका कलेजा घोटती रही। अचेत भुजबल की चारपाई के चारों ओर गांव के लोग बैठे रहे। ललित कुछ देर के लिये सो गया था।

बड़ी सुश्रुषा के उपरान्त चौथे पहर रात में भुजबल को चेत आया। जब आँखें खोलीं सबसे पहले ललित की तलाश की, फिर मूंद लीं।

लालसिंह ने ललित को जगाकर विनयपूर्वक कहा—'अब उन्हें चेत आ गया है, उठ बैठिये—परन्तु अब और कुछ न कहियेगा।'

ललित ने आंगन के दरवाजे से सुसज्जित, किन्तु उजड़े हुये मंडप और वितान की ओर देखते हुए कहा—'बड़ा अच्छा हुआ, चेत आगया। तुम देखे रहना, मैं अब लड़की की खोज करता हूँ।'

पैलू वहीं पड़ा-पड़ा सो गया था। उसे जगाकर ललित ने अपने साथ लिया, और बाहर निकल आया। बाहर आकर पैलू से बोला—'मैं भीड़ साथ नहीं ले चलना चाहता हूँ। यदि कोई साथ लगे, तो मना कर देना।'

पैलू ने कहा—'लोग थके-मांदे हैं, साथ न आयेंगे।'

'तुम नगर और देहात की बोली एक-सी आसानी के साथ बोल लेते हो! कहां सीखी थी? क्या अजितकुमार तुम लोगों में बैठकर यही सब किया करते हैं?'

'अजितकुमार ने हम लोगों के प्राण बचाये, और आबरू रख ली।'

'इतने सब आदमी अजित के साथ हो गये! किसान तो बड़े दलिद्दर होते हैं।'

'किसानों को कोई अंक दे, तो इस गरीबी और लाचारी में भी वे अपने को अपने हितू के लिये होम सकते हैं।'

ललित के 'प्रबल के अवशेष' के शास्त्रीय मत में यह बात ठिकाने से नहीं बैठती थी, पर आंखों देखे प्रमाण को अस्वीकृत नहीं कर सकता था। किन्तु मन में तर्क-वितर्क करने का समय न था। बोला—'अजित छावनी तो गये नहीं होंगे, मन्दिर के आसपास किसी स्थान में होंगे? उन्हें तलाश करना चाहिये।'

पैलू ने कहा—'चलिये। मैं स्वयं यही सोच रहा था, परन्तु उनकी बीमारी की चिन्ता में किसी से कुछ कह न सका था।'

[६९]

चकरई पहाड़ी के निकटवर्ती टपरे में अजित को भी देर तक इधर-उधर की सोचते-सोचते नींद आने-जाने लगी। प्रातःकाल होने के पहले वह चेतन हो गया। सूर्योदय होने के बाद कहां जायगा, पूना को किस स्थान पर आश्रय देगा, इस नवीन परिस्थिति में क्या कार्य-क्रम होगा, इन सब उलझनों में वह चक्कर खाने लगा।

धीरे से पूना को जगाया। काफी सो चुकी थी। जल्दी सतर्क हो गई। अपने को अजित के कन्धे से सटा पाकर लज्जा से सिमट गई। बोली—'क्या मैं बड़ी देर से इसी तरह पड़ी हुई थी?'

'क्या मालूम?' अजित ने उत्तर दिया—'मैं खुद सो रहा था। अभी-अभी मेरी आंख खुली है।'

'तुम रात-भर जागे हो। सवेरा होने वाला है, अब कहां जाओगे?'

'बस, यहीं इस तरह सदा-सर्वदा बैठे रहेंगे। क्या हानि है?'

पूना उठ खड़ी हुई।

'कहाँ जा रही हो?'

'जहां आज्ञा होगी। मैं क्या बतलाऊँ?'

'चकरई की पहाड़ी पर प्राचीन काल की एक कोठरी बनी है। वहीं चलो। तुम्हें वहां बिठलाकर मैं पैलू को लेकर अभी आता हूँ। उसे लाने पर आगे का निश्चय करूँगा।'

दोनों उस टपरे से बाहर निकल आये। रात के पहले भाग में, जब इस समय से अधिक अन्धकार प्रतीत होता था, दोनों कंकड़ों और कांटों की कुछ भी परवा न करते हुये बेधड़क चले आये थे, परन्तु अब उसी स्थान को सावधानी के साथ देखते हुये, और मार्ग की कठोरता से बचने की चेष्टा करते हुये चकरई की पहाड़ी पर चढ़ने लगे।

चकरई की पहाड़ी छोटी-सी है, परन्तु मैदान के बीच में है, और चारों ओर से बहुत ऊबड़-खाबड़ है। एक-एक पत्थर और एक-एक कंकड़ को बारीकी के साथ देखते और फूँक-फूँककर पैर रखते हुये अजित पूना को चकरई की पहाड़ी पर ले गया।

जब दोनों ऊपर पहुंचे, पूर्व दिशा में प्रभा का रेखा-जाल बुना जाने लगा। पूर्व में एक बड़ा तारा ऊँचा उठ आया था। उस दिशा में क्षितिज के ठीक नीचे से प्रकाश का एक मार्ग-सा उस तारे तक खिचा हुआ था। और नक्षत्र फीके नहीं पड़े थे, परन्तु पूर्व क्षितिज उद्वहित तथा शुक्र-तारा तक प्रसरित प्रकाश धारा के प्रभाव में उनकी जगमगाहट पीली पड़ चली थी। एक भी पक्षी का कलरव आरम्भ नहीं हुआ था। उल्लासमय समीर अवश्य एक नूतन आगमन की सूचना देने लगा था। उसी दिशा के एक छोर में स्थित मऊ-सहानिया की फांटा पहाड़ी की चोटी को हलके कुहरे की पतली चादर अंशतः ढके हुये थी। ऊपर के थोड़े-से भाग को छोड़कर बाकी फांटा पहाड़ी नीली जान पड़ती थी। एक ओर क्षितिज से झरती हुई श्वेत प्रकाश-धारा और दूसरी ओर पर्वत-श्रेणी की नीलिमा। दिव्य शुभ्रता और पवित्र महिमा का संयोग!

अजित ने पूर्व दिशा की ओर लक्ष्य करके कहा—'यह क्या है?'

'मैं क्या जानूँ?' पूना ने उस ओर देखकर कहा।

'यह मेरी देवी है।'

'मैं इतनी बातें नहीं जानती।'

'इसको ऊषा कहते हैं।'

पूना इस तरह से उस प्रकाश-रेखा का अवलोकन करने लगीं, जैसे उसमें कोई अक्षर—'ऊषा'—अंकित हो। बोली—'थोड़ी देर में दिवाकर का उदय होगा।'

अजित को अपने कर्तव्य का स्मरण हो आया। बोला—'तुम्हें यहाँ डर लगेगा ?'

'नहीं, मुझे अब किसी का डर नहीं है।'

अजित और कोई उपाय न देखकर अकेला चकरई पहाड़ी से नीचे उतरकर तालाब की ओर आया। सोचा—'अब बहुत सावधानी के साथ काम करने की बारी आई है।'

उसी समय किसी ने मन्दिर की ओर से पुकार लगाई—कहाँ हो ?'

अजित कान लगाकर सुनने लगा। कई बार पुकार को ध्यानपूर्वक सुनने के बाद उसे निश्चय हो गया कि पैलू का स्वर है। अजित ने उत्तर दिया—'यहां—आया।'

[७०]

थोड़ी देर में अजित हर्ष, चिंता और उद्विग्नता के बीच में झूलता हुआ पैलू के पास पहुंचा। पास ही एक और आकार को देखकर निर्भीक चित्त होने पर भी जरा सकपका गया। एक क्षण के लिये सन्नाटे में आकर चुप खड़ा हो गया। चाहता था, पैलू पहले चर्चा छेड़े।

ललित ने आगे बढ़कर कहा—'अजित, मैं तुम्हें बधाई देता हूँ।'

'बधाई! मैंने तो कर्तव्य-पालन किया, परन्तु आपकी आवाज से जान पड़ता है कि यह रात आपके लिये बहुत बुरी गुजरी है।' अजित बोला। पास जाकर देखा, तो ललित के चेहरे पर हर्ष का कोई चिन्ह न था।

'अंत भला, सो भला।' ललित ने कहा—'मेरा ख्याल छोड़ दो। मुझे शायद जन्म-भर दुर्घटनाओं से लड़ते ही बीतेगा। लड़की सुरक्षित

है ?' ललित का गला भर्राया हुआ था, और अजित को जान पड़ा, जैसे शब्दों पर किसी वेदना की छाप हो।

अजित ने उत्तर दिया, 'जी हाँ, अर्थात् ऐसी दशा में जितना यत्न रक्षा का किया जा सकता था, किया। आप उसे देखना चाहते हैं? पास ही है।'

'अभी नहीं।' ललित बोला—'पहले गांव चलिये।'

अजित ने पैलू से पूछा—'गाँव का क्या हाल है ?'

'सब लोग सचाई के पक्ष में हैं। काम पड़ता, तो सब-के-सब लाठियां बरसा डालते।' पैलू उत्साह के साथ बोला।

'छिः छिः !' ललित ने तमककर कहा—'कमजोर किसान जिस लाठी को हाथ में लिये रहते हैं, उसमें भी कोई जान नहीं मालूम पड़ती। मैं न आता, तो ये लोग कुछ भी नहीं कर सकते थे।' फिर अपनी ही बात पर लज्जित-सा होकर बोला—'मैंने आकर कुछ भी नहीं किया। अजितकुमार को सारा श्रेय है।'

पैलू बोला—'अजित बाबू के लौट आने पर हम लोग मजा दिखला देते। उनका जहां पसीना बहता, हम लोग अपना खून बहाते।'

'जो लोग अपनी बात के लिये खून बहाना जानते हैं, वे तुम लोगों की तरह तुच्छ, निर्बल नहीं होते।' ललित के भर्राये हुये कण्ठ से क्रुद्ध शब्द निकले।

अजित पैलू की तत्परता को अपमानित नहीं होने देना चाहता था, परन्तु अवसर बहस के लिये उचित न देखकर अजित ने विषयांतर करते हुये कहा—'बिलकुल आकस्मिक घटनाओं के संयोग से आज यह सब हुआ है। आपके आने से हम लोगों को बहुत बल प्राप्त हुआ। पैलू इत्यादि लोगों की सक्रिय सहानुभूति के बिना भी कुछ न हो पाता, परन्तु अब कार्य बड़ा कठिन मालूम होता है।'

पैलू बोला—'अब कठिन क्या है ? भुजबल अचानक बीमार होकर पौर में पड़े हैं। लालसिंह लड़की के लिये हाय-हाय करके रो रहे हैं। सारी गुत्थी गुलझी हुई रक्खी है।'

'ललित ने अजित के कंधे पर हाथ रखकर कंपित स्वर में कहा—'भाई अजित, तुमने मुझे पूर्व-कृत अपमान के लिये क्षमा कर दिया या नहीं—हृदय से उसे धो दिया या नहीं ?'

'मैंने उसके विषय में कभी अपने मन को दुखी नहीं होने दिया।' अजित ने उत्तर दिया—'आपको क्या ज्वर हो आया है ? सारी देह जलती-सी मालूम हो रही है।'

'कुछ चिन्ता मत करिये, चलिये। आज बहुत काम करना है।' ललित बोला।

चलते-चलते अजित ने जरा संकोच के साथ मंतव्य प्रकट किया—'लड़की बड़ी कुशाग्र बुद्धि मालूम होती है।' अपनी असंगत और असंबद्ध बात पर अजित लज्जित हुआ।

ललित ने जरा हँसकर कहा—यह हँसी उस रात-दिन में उसे पहली बार ही आई थी—'कुशाग्र-बुद्धि का परिचय तो उस चिट्ठी से ही लग गया था, जो उसने आपके पास भेजी थी।'

अजित गड़-सा गया। फिर कोई बात नहीं की। एक घड़ी पश्चात् ये तीनों गाँव में पहुंच गये।

पूर्व दिशा में लाल-पीली बारीक चादर से अपना दिव्य मुख-मंडल छिपाये ऊषा का अवतरण हो रहा था। चिड़ियां चहकने लगी थीं। भुजबल को बिलकुल चेत हो आया था, परन्तु सिर में बड़े जोर का दर्द था। सबसे पहला काम जो उसने पूरे चेत में आने पर किया, वह दूल्हा के बागे को उतारकर फेंक देना था। उठकर कहीं भाग जाना चाहता था, परन्तु शरीर में इतना बल नहीं था कि उठकर खड़ा हो सके—पड़ा रहा।

पौर में पहुंचकर ललित ने लालसिंह को बुलाया। भुजबल के होश में आने के बाद रोने-धोने की थकावट के मारे वह दीवार के सहारे झपकी ले गया था। ललित के पुकारने पर चौंककर खड़ा हो गया।

ललित ने कहा—'तुम्हारी भांजी मिल गई।'

सुनते ही लालसिंह हर्ष-विह्वल हो गया। फिर रोने लगा, और पूना के लिये कहने लगा—'लक्ष्मी थी! देवी थी!'

इस समाचार को सुनकर भुजवल ने एक वार आंख खोलकर फिर वन्द कर ली।

लालसिंह ने पूछा—'कहाँ है?'

'इतनी उतावली नहीं।' ललित ने कहा—'थोड़ी देर में आई जाती है। तुम्हारा मंडप फिर आवाद हुआ जाता है।'

भुजवल जरा हिला, परन्तु उसने और अधिक विषय-रुचि का लक्षण प्रकट नहीं किया। अजित पास ही खड़ा था। सन्देह की दृष्टि से ललित की ओर देखने लगा।

ललित ने कहा—'लड़की की माँ की विवाह के विषय में क्या इच्छा थी?'

'कोई विशेष इच्छा नहीं थी।' लालसिंह ने उत्तर दिया।

अजित कुछ कहना चाहता था, परन्तु गले से शब्द न निकला।

ललित ने तुरन्त पूछा—'यह नहीं हो सकता। मरने के पहले कुछ कहा था?'

'पूना का नाम ले रही थी, कुछ और तो याद नहीं पड़ता। यह मास्टर साहव भी तो अकस्मात् आ गये थे, पास खड़े थे। हाँ, याद आ गई। इनका नाम-मात्र लिया था, पर कुछ कहा नहीं था। इनको पहिचानकर इनका नाम लिया था।' लालसिंह ने उत्तर दिया।

अजित केवल इतना वोला—'हाँ मुझे उन्होंने याद किया था।'

ललित ने लालसिंह से फिर पूछा—'यदि थोड़ा-सा होश वाकी हो तो याद करो कि लड़की की माँ मरने से कितनी देर पहले अचेत हो गई थी।'

लालसिंह जरा तिनककर बोला—'सो तो वह मरते-मरते तक चेत में थी।'

'अब तुम्हारी समझ में आया, उनकी क्या इच्छा थी?' ललित ने पूछा—'तुम्हरी समझ में न आया हो, तो मैं बतलाता हूँ।'

विनय के स्वर में लालसिंह ने कहा—'आप ही बतलाइये, जैसा आपने समझा हो, परन्तु यह बिलकुल निस्संदेह है कि नजदीक की रिश्तेदारी में ब्याह किसी तरह नहीं हो सकता, चाहे बहिन की कुछ भी इच्छा क्यों न रही हो।'

ललित ने जोर से हँसकर कहा—'तब तो कुछ गाँठ की बुद्धि रखते हो।' फिर शांत होकर गम्भीरता के साथ बोला—'तुम्हरी बहिन की इच्छा उस लड़की को अजितकुमार मास्टर के साथ ब्याहने की थी! मरते समय वह चेत-अचेत दोनों थीं। परन्तु जिस समय उन्होंने वे शब्द मुँह से निकाले थे, तब वह सार्थक बात कर रही थीं।'

लालसिंह ललित के मुंह की ओर देखने लगा। अजित ने सिर नीचा कर लिया।

ललित बोला—'अब और अधिक विलंब मत करो। विवाह की सब सामग्री प्रस्तुत है। दूल्हा पौर में खड़ा है। मंडप दूल्हा-दुलहिन का आह्वान कर रहा है। हम और पैलू बराती हैं तुम कन्या-दान करो। लड़की को बुलवाओ। इसी समय विवाह होगा।'

लालसिंह ने प्रसन्न होकर कहा—'आपकी आज्ञा सिर-माथे। मास्टर साहब का घर भी लड़की के लिये बहुत अच्छा निकलेगा।' फिर जरा संयत होकर बोला—'लड़की सयानी है। मालूम नहीं, कहीं वहाँ आकर फिर किसी कुआँ-बावली की तलाश कर उठे!'

ललित बोला—'यह न होगा। मैं सौगन्ध दे सकता हूँ। विवाह की तैयारी करो। देर मत लगाओ।'

लालसिंह तैयारी में लग गया। स्त्रियों ने जब यह सब समाचार सुना, तब उनके आनन्द का ठिकाना न रहा। भुजबल ने चुपचाप सुन लिया।

पैलू और उसके किसान भाई-बन्द खुशी के मारे नाच उठे।

ललित बोला—'आप मास्टर साहब—मैं अब आपको उसी पुराने नाम से पुकारूंगा—पैलू के घर में जाकर बैठें। डरिये मत आपकी सम्पत्ति अक्षुण्ण और अखंड है। हम, पैलू और लालसिंह लड़की को लेने जाते हैं। भाँवर के समय तक अब आपको उसके दर्शनों का अधिकार नहीं है। जिस समय लड़की अपने मंडप के नीचे पहुंच जायगी, हम और पैलू वरातियों की गिनती में आ जायेंगे।'

अजित नीचा सिर किये चुपचाप पौर से निकल आया। ललित ने जाते समय भुजवल की ओर संकेत करते हुये उपस्थित किसानों से कहा—'अभी यहीं रहना। इनकी तबियत अच्छी नहीं है। देखभाल और संभाल किये रहना।'

रात भर के जागे हुये किसानों ने मुंह से तो कोई उत्तर नहीं दिया, परन्तु सिर हिलाकर अपनी अदम्य प्रण-पालकता को दर्शित कर दिया। ललित, लालसिंह, और पैलू पौर के वाहर निकल आये। अजित के पास जाकर ललित ने पूना का पूरा पता-ठिकाना पूछ लिया।

[७१]

चकरई पहाड़ी से कुछ दूरी पर वे सब लोग रुक गये। ललित ने कहा—'पैलू, तुम अकेले जाओ। रात की घटना संक्षेप में समझा दो, और कह दो संकट नहीं है। फिर हम लोगों को बुला लेना।'

पैलू 'वहुत अच्छा।' कहकर चला गया। थोड़ी देर बाद उसने पहाड़ी पर से इन दोनों को बुला लिया।

जव ये लोग पहाड़ी पर पहुंचे, सूर्योदय हो आया था।

लालसिंह उसके सामने पहुँचते ही रोने लगा, और ललित के पीछे खड़ा होकर बोला—'बेटी, घर चलो, अब कोई भय नहीं है।'

ललित ने कहा—'पूना, तुम मेरी धर्म की वहिन हो। डरो मत। तुम्हारी सब संकट बाधा टल गई। सूर्योदय के साथ ही हर्ष का दिन निकला है।'

सामने से सूर्य की कोमल किरणें झुण्ड बांधे चली आ रही थीं, पूना नीचा सिर किये दूसरी ओर मुंह मोड़े खड़ी थी। आंखों में आंसू टपक रहे थे—रश्मि-रचित मार्ग पर मोती-से।

पूना ने क्षीण स्वर में केवल इतना कहा—'चलिये।'

जिस समय पूना कंकरीले-पथरीले मार्ग पर होकर चल रही थी, उसका शरीर कांप रहा था। घर की ओर जाने के लिये पैर थर्राते थे। लोग देखेंगे, तो क्या कहेंगे? अब क्या होगा? इत्यादि प्रश्न पूना के मन में उठ रहे थे। परन्तु पैलू ने उससे एक बात अपने पहुंचने पर कह दी थी, जिससे वह निर्भय थी।

पूना के कोमल, गौर पद सिरे पर महावर से रंगे थे। जिस समय कंकड़ों में निहित होते थे, ऐसा जान पड़ता था, मानो गुलाब के फूल बिखेर दिये गये हों, और दिवाकर की रपटती हुई किरणों की आभा उनसे आलोकित-सी हो उठती थी।

जब पूना देवी के मन्दिर के सामने होकर निकली, नीची गर्दन ऊँची करके साथ वालों से आँख चुराकर नत-मस्तक हो गई। उस समय उन आँखों में कृतज्ञता का गौरव झलक आया था।

जब पूना गाँव में पहुंची, स्त्रियाँ घूंघट काढ़े किवाड़ों के पास से अपनी प्रच्छन्न मुस्कराहट द्वारा आशीर्वाद-सा बरसा रही थीं। इधर-उधर लाठी लिये गाँव वाले उस महिमा की रक्षा के लिये सन्नद्ध-से जान पड़ते थे।

परन्तु पूना लाज में डूबी-सी जा रही थी। मुख अरुण और पसीने में लतपत। चमकती हुई धूप में मुंह पर स्वेद-बिन्दु मुक्ता-मणि-से जान पड़ते थे।

पौर में होकर जब पूना आंगन में गई, तब उसने भुजबल की चारपाई की ओर दृष्टिपात नहीं किया। उसके भीतर चले जाने पर भुजबल एक बार कराहा, परन्तु उस निःशब्द, निःश्वास को सिवा उसके हृदय के और किसी ने नहीं सुना। पूना के भीतर पहुंचते ही स्त्रियाँ उसके गले लिपट गईं, और सब मिलकर देर तक रोईं।

ललित बुढ्ढा के घर पर अजित से मिला। इस समय ललित के सूजे हुये चेहरे और धँसी हुई आँखों में एक आभा दमक रही थी।

बोला—'भाई साहब, बागा आपका कहाँ है ?'

पैलू चटपट बोला—'भुजबल ने अपना उतार कर डाल दिया है। ले आऊँ ?'

'नहीं।' ललित ने तुरन्त उत्तर दिया—'उस जूठन से ये सीधे-सादे कपड़े लाख बार अच्छे। पैलू हल्दी लाओ। मैं अजित को सच्चा दूल्हा बनाऊँगा।'

अजित ने हाथ जोड़कर ललित से निस्तब्ध प्रतिवाद किया।

'नहीं, आज मेरी इच्छा का इस संसार में कोई अवरोध न कर सकेगा। पैलू, लाओ।'

बुड्ढा पैलू उछलकर भीतर गया, और एक बड़े कटोरे में ढेर-भर हल्दी पानी में घोलकर ले आया। अजित ने बहुत विनय-प्रार्थना की, पर एक न चली। एक-एक करके सब कपड़े पीले कर दिये। तर कपड़े निचुड़कर अजित के शरीर पर पतली, मोटी, पीले रेखायें बनाने लगे।

ललित बोला—'अब चलो, बरात तैयार है। पैलू चल। इनाम मिलेगा।'

पैलू की आँखें तर हो गईं, और कंठ गद्‌गद्। बोला—'आज आँखें सिरा जायेंगी। अब मर जाऊं तो कुछ बुराई नहीं।'

अजित बोला—'बड़ा भद्दा मालूम होता है। लोग क्या कहेंगे !'

ललित ने गम्भीर होकर कहा—'यह बात उस समय सोच लेनी चाहिये थी, जब चिट्ठी पाते ही यहां आग्रह के साथ चल दिये।' तुरन्त हँसकर बोला—'तभी तो मुझे साथ नहीं ला रहे थे। चलो, चलो, विलंब का समय नहीं है।' और उस धँसे हुये चेहरे पर किसी आनन्द के उन्माद की मुद्रा-सी अंकित हो गई।

'अभी भुजबल की तबियत अच्छी नहीं है !' अजित ने कहा।

एक क्षरण के लिये ललित की आँख चिनगारी की तरह भासित हुई। आनन्द की मुद्रा अन्तर्धान हो गई।

फिर फौरन शान्त होकर दृढ़ता के साथ बोला—'यह सब दलील बिलकुल लचर है।' तब आगे-आगे अजित और पीछे-पीछे दोनों बराती लालसिंह के मकान पर पहुंचे।

ललित जबरदस्ती घसीट कर अजित को ढकेलता हुआ भीतर ले जाना चाहता था, परन्तु स्त्रियों ने न करने दिया। पहले टीके की रस्म पूरी की गई। और रस्में भी शीघ्रता-पूर्वक निबटाकर मण्डप के नीचे अजितकुमार ललितसेन के साथ पहुंचा।

पुरोहित बुला लिया गया था। पाणिग्रहण और अग्नि-प्रदक्षिणा हो गई। पूना ने उस दिन नीचे से ऊँची गर्दन नहीं की। स्त्रियाँ तरह-तरह के गीत गाती रहीं, और उन सब में सबसे अधिक पूना के मामा की लड़की ने गाया, जो उस दिन संसार में अपने को सबसे अधिक सुखी समझ रही थी। जिस समय भाँवर पड़ रही थी, भुजबल पौर में आँखें बन्द किये न-मालूम क्यों कराह रहा था।

भांवरों की समाप्ति पर ललित ने कहा—'जो दो गाँव शिवलाल नाम के एक आदमी ने पूना को लगाये थे, वे अदालत के जरिये बैनामा मंसूख कर दिये जाने के कारण निकल गये थे, मैंने उन्हें अपने लिये फिर नीलाम में खरीद लिया था। वे दोनों मैं पूना को देता हूँ, और रहने के लिये छावनी का एक मकान।'

अजित कुछ कहना चाहता था, पर यह न जानता था कि क्या कहूँ? कुछ न कह सका। संपूर्ण अंगों में असमर्थता भान हो रही थी।

पैलू ने कहा—'वाह बाबू साहब, धन्य हो!'

'धन्य है वह, जो इस स्निग्ध, अखण्ड और विशाल विभूति का स्वामी हुआ है। गाँव तो इन दोनों की न्यौछावर है।' ललित ने कहा।

अजित ने एक बार विवाह-वेदी की ओर देखा। उसका मुख ऐसा जान पड़ा; मानो संपूर्ण गंगा-जल के गौरव से धोया गया हो। फिर पौर

में आकर ललित ने अपने भाव की तीव्रता को छिपाये हुये भुजवल से कहा—'जो कुछ हुआ, उसे भूल जाओ, और आगे सावधान होकर चलो। तुम्हारे लिये संसार में किसी चीज की कमी नहीं है। तुमने यह सब क्यों किया, यह तुमसे कभी आगे न पूछा जायगा।'

भुजवल ने करवट लेकर हाथों में मुँह छिपा लिया। यह किसी ने न देख पाया कि व्यथा की दारुणता या पछतावे की करुणा, इनमें से किसकी छाप उसके चेहरे पर अधिक थी।

ललित बोला—'बैनामे अदालत ने मंसूख कर दिये थे, यह तुम्हें मालूम है, परन्तु मैंने दुबारा नीलाम में उन्हें फिर खरीद लिया है, यह तुम्हें नहीं मालूम। अब की बार जो पाओगे, वह पास से न जायगा।'

भुजवल ने कुछ उत्तर न दिया। इस पर ललित ने लापरवाही के साथ कहा—'मैंने जो कुछ उचित समझा, किया; यदि तुम्हारी जाँच में उल्टे मार्ग ही सरल और सीधे ठहरें, तो तुम्हारी मर्जी।' और अधिक कहना ठीक न समझकर ललित बोले—'तुम्हारी तबियत जरा अच्छी हो ले, तब घर ले चलूंगा। ऐसी हालत में तुम्हें देखकर और लोगों की भी हालत खराब हो जायगी। मैं आज छावनी जाकर कल फिर आऊँगा।'

[७२]

उसी दिन छावनी की कचहरी में जाकर ललितसेन ने अजित के विरुद्ध जो इस्तगासा दायर किया था, खारिज करा लिया।

मैजिस्ट्रेट अँगरेज था। बोला—'अजितकुमार ने यह जुर्म न किया होगा। सच्ची बात क्या थी?'

लोगों के भीतरी मामलों का परिचय प्राप्त करने की वासना मैजिस्ट्रेटों में न होनी चाहिये, परन्तु नयेगांव छावनी-सरीखी आधी रियासत और आधी अँगरेजी जगह के अँगरेज मैजिस्ट्रेट भी इस तरह के कौतूहल से वर्जित नहीं होते।

ललित के अभिमानी मन में जल्दी नव जाने की आदत न थी। बोला—'जब मैं मुकदमा ही खारिज करा रहा हूँ, तब किसी तफसील के बतलाने की आवश्यकता नहीं जान पड़ती।'

मैजिस्ट्रेट चिढ़ गया। प्रबल जाति के हाकिम के सामने दुर्बल कौम के आदमी का यह घमण्ड! तमककर उसने कहा—'अभी न बतलाओगे, पीछे हाथ जोड़कर बतलाना पड़ेगा, जब अजितकुमार मानहानि का दावा हमारे यहाँ तुम्हारे ऊपर करने आवेगा।'

'जब आवेगा, तब भुगत लूंगा।' ललितसेन ने बिना किसी अनुनय के कहा।

'ओह! तुम जानते हो, वह कोई कमजोर आदमी नहीं है। कमजोर आदमी को चाहे तुम दबा लो, धमका लो, पर वह भी बड़ा आदमी है। कभी दबाव में नहीं आवेगा। तुम्हें नीचा दिखाकर रहेगा। कानून उसकी मदद करेगा। वह कोई कुली-कबाड़ी नहीं है।' मजिस्ट्रेट बोला।

दफ्तर के लोग जो आस-पास के कमरों में काम कर रहे थे, डरते डरते इन बातों को रुचि के साथ सुनने लगे।

अदम्य ललित ने कहा—'न्याय बड़े-छोटे में अन्तर नहीं करता। मुझे कोई भय नहीं है।'

मजिस्ट्रेट दांत पीसने लगा—'सरकार में उसकी बहुत इज्जत होगी। सच्चा और ईमानदार है। उसे जितना खजाना मिला था, सब हमारे यहाँ दाखिल कर दिया। हमने उसे आधा खजाना दिये जाने का हुक्म दिया है। अब वह तुमसे ज्यादा धनी और प्रबल हो जायगा। तुम उसके सामने कोई चीज नहीं हो।'

ललितसेन मुस्कराकर बोला—'सच मानिये, इस समाचार को सुनकर जितनी खुशी मुझे हुई, उतनी आपको नहीं हो सकती।'

मजिस्ट्रेट धृष्ट मुस्कराहट और धृष्टतर संभाषण के कारण जल उठा। बोला—'जाओ, तुम्हारा काम हो गया, अब यहाँ ठहरने की कोई जरूरत नहीं। जाओ, अभी जाओ।'

ललितसेन की आँखें एक क्षण के लिये पागलों-जैसी हो गईं, परन्तु कुछ न कहकर चुपचाप कचहरी के बाहर निकल आया।

जब क्रोध कुछ शांत हुआ, तब उसने मन में सोचा—'कितना दंभी और निष्ठुर है। शिष्टाचार तो छू तक नहीं गया है। क्या शासन-सत्ता का वर्ताव इस अभद्रता के साथ होना चाहिये?' तब उसे प्रबल बनाम निर्बलवाद-सम्बन्धी दर्शन-शास्त्र का स्मरण हुआ। एक आह के साथ मुंह से निकला—'प्रबल का आतंक निर्बल पर स्वाभाविक है।'

परन्तु उसके इस तत्त्व का साथ उसके अभिमान ने न दिया। एक क्षण बाद उसने मन में कहा—'निर्बल प्रबल हो सकते हैं, और होंगे। और एक दिन वह सारी ऐंठ खाक में मिल जायगी।'

परन्तु कौन कह सकता है कि इस छोटी-सी घटना ने ललितसेन के प्रबल बनाम निर्बल दर्शन-शास्त्र में स्थायी उलट-फेर किया या क्षणिक ही।

[७३]

कचहरी से लौटकर ललित ने रतन से बात करने में शांति पाई। सिगरावन जाने के समय से अब तक के घण्टे रतन के लिये महीनों-सदृश बीते थे।

ललित ने सारी घटनायें रतन को सुनाईं, परन्तु भुजबल के अचेत होकर गिर पड़ने का हाल नहीं बतलाया। रतन ने कुछ विश्वास और कुछ अविश्वास के साथ सब बातें सुन लीं।

दूसरे दिन ललितसेन भुजबल को छावनी लिवा लाया। उसका गार्हस्थिक जीवन इन घटनाओं के उपरांत किस तरह बीता, और उसके चलते हुये दिमाग ने क्या-क्या किया, वह सब किसी पर प्रकट नहीं हुआ।

ललितसेन ने अपने वचन के अनुसार दो गांव पूना को लगाये, और छावनी का एक मकान उन पति-पत्नी के रहने को दे दिया। यह भेंट अजित को अनिच्छा-पूर्वक और जबरदस्ती स्वीकार करनी ही पड़ी।

अजित ने जो खजाना सरकार में दाखिल किया था, उसका आधा उसे मिला। पैलू, वुद्धा और उन लोगों-सरीखे निस्सहाय लोगों की सहायता में वह रुपया और अन्य सम्पत्ति लगती रही।

शिवलाल को धोखा देने के अपराध में कई वरस की कैद हुई। उस मुकद्दमे में भुजवल के कारनामों को उसने खूब खोल कर रक्खा, परन्तु उसके ऊपर आरोप न होने और ललितसेन के प्रमाण न देने के कारण वह न फँस सका। लोग आश्चर्य करते थे कि ऐसा धूर्त और पाजी आदमी कैसे वच गया! सिगरावन में उसके सिर में जो चोट लगी थी, वह वहुत दिन उसे अपना स्मरण कराती रही।

ललितसेन का स्वास्थ्य, नहीं मालूम क्यों, उन दिनों के पीछे फिर वढ़ती पर न देखा गया।

पूना और अजित ललितसेन [illegible] यहाँ कभी-कभी आया-जाया करते थे।

एक दिन रतन ने ललितसेन के [illegible] अजितकुमार से कहा—'मास्टर साहव, मेरे उस दिन के कहे [illegible] भूल गये या नहीं?'

अजित वोला—'कोई दुःखदायक [illegible] मुझे कष्ट नहीं पहुँचा सकता।' और उसने अपनी जेव से [illegible] चित्र रतन के हाथ में देते हुये हँसकर कहा—'यही [illegible] मूल कारण है।' रतन ने चित्र पहिचान लिया। उसी क[illegible] एक क्षण के लिये भ्रकुटी संकुचित हुई। फिर जरा मुस्कराकर उस चित्र को एक कोने में फेंक दिया। वह क्षीण मुस्कराहट किसी अनन्त युद्ध पर प्राप्त किसी अनन्त विजय की ध्वस्तप्राय ध्वजा-सदृश जान पड़ती थी।